श्रीकमलमणि-ग्रंथमाला—१४

इरावती

उपन्यास

लेखक

व्रजरत्नदास बी० ए०, एल० एल० बी०

प्रकाशक

श्रीकमलमणि-ग्रंथमाला-कार्यालय

सुँडिया, काशी

प्रथम संस्करण] सं० २००४ [मूल्य २॥)

भूमिका

उपन्यासों में भूमिका लिखने की प्रथा बहुत कम है और जब कभी कहीं इसके विपरीत भूमिका लिखी मिलती है, तो वह किसी विशेष कारण ही से लिखी गई होती है। ऐतिहासिक उपन्यासों में भूमिका की आवश्यकता इस कारण विशेष रूप से होती है कि जिस ऐतिहासिक वृत्त के आधार पर उनका निर्माण होता है वे प्रायः जन साधारण में सुलभ नहीं होते और इतिहास का पठन-पाठन भी उतना अधिक प्रचलित नहीं है, जितना उपन्यासों का। ऐसी अवस्था में आरंभ में संक्षिप्त ऐतिहासिक इतिवृत्त दे देने से पाठकों को उस उपन्यास के पढ़ने तथा समझने में अधिक सुविधा हो जाती है। उपन्यास की घटना कितनी प्राचीन है, उस समय का रहन-सहन, सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति क्या और कैसी थी इन सब पर वे ध्यान रखते हुए जब उपन्यास का पारायण करते हैं तब अपने समय की स्थिति से उसमें कुछ वैचित्र्य या पुरानापन पाने पर वे विचलित नहीं होते। ऐसी ही कुछ धारणा के कारण इस उपन्यास की भूमिका में चेदि तथा जुझौती के राजवंशों का तथा मत्तमयूर शैव-संन्यासियों का अत्यंत संक्षिप्त इतिवृत्त संकलित किया गया है। इन सब को पढ़ लेने से पाठकगण यह भी समझ सकेंगे कि शुद्ध इतिहास की घटनावली में कितना हेरफेर कर इस उपन्यास का कथावस्तु संगठित किया गया है।

हैहय-वंश

एक ताम्रलेख में लिखा मिलता है कि भगवान विष्णु के नाभि-कमल से ब्रह्मा पैदा हुए, उनसे अत्रि और इनके नेत्र से चंद्रमा उत्पन्न हुए। चंद्र-पुत्र बुध का सूर्य-कन्या इला से विवाह हुआ, जिनका पुत्र पुरुरवा था। इसीके वंश में शताधिक अश्वमेध यज्ञ करनेवाला भरत हुआ, जिसका वंशज कार्तवीर्य माहिष्मती का राजा था, जो अपने समय का अत्यंत प्रतापी नरेश था। इसीसे हैहय-वंश चला।

इसी हैहयवंश का दूसरा नाम कलचुरी-वंश कहा जाता है पर कलचुरीवंश का पुनरुत्थान तथा उसका शृंखलाबद्ध इतिहास वि० सं० ६२० के लगभग से मिलता है। बीच का कोई सुशृंखलित इतिहास नहीं मिलता। वि० सं० ६२०–९६० तक चेदि-नरेश कोकल्लदेव के राज्य का समय लेखों से निश्चित होता है। इसकी एक रानी महादेवी चंदेल राजकुमारी थी। इसका बड़ा पुत्र मुग्धतुंग इसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके दो पुत्र बालहर्ष तथा केयूरवर्ष (युवराज देव) क्रमशः इसके बाद चेदि की गद्दी पर बैठे। केयूरवर्ष ने अपने राज्य का विस्तार किया और अपना प्रभुत्व बढ़ाया। इसका पुत्र लक्ष्मण इसके अनंतर गद्दी पर बैठा, जो प्रतापी राजा था। इसके दो पुत्र शंकरगण और युवराजदेव द्वितीय हुए, जो क्रमशः गद्दी पर बैठे। युवराजदेव के बाद उसका पुत्र कोकल्ल द्वितीय गद्दी पर बैठा, जिसका पुत्र गांगेयदेव बड़ा प्रतापी हुआ। इसने अनेक राज्य विजय किए और विक्रमादित्य नाम धारण किया। चंदेल नरेश विजयपाल से युद्ध में यह हारा था। सं० १०९४ के बाद इसकी मृत्यु प्रयाग में हुई। इसीका पुत्र प्रबल प्रतापी कर्णदेव हुआ।

कर्णदेव का राज्य उत्तर में काशी तक फैला हुआ था और इसे लेखों में काशिराज लिखा भी है। काशी में कर्णमेरु नामक मंदिर भी इसने बनवाया था, जिसका खंडहर आदिकेशव के पास अब भी वर्तमान है। कर्णदेव ने अड़ोस-पड़ोस के सभी राज्यों से युद्ध किए और उन्हें परास्त भी किया, जिनमें पांड्य, वंग, कलिंग आदि के राजे भी थे। मालवेश का राजधानी को भी लूट लेने का उल्लेख प्रबंधचिंतामणि ग्रंथ में मिलता है। विल्हण-कृत बिक्रमांकदेव चरित तथा प्रबोधचंद्रोदय नाटक से पाया जाता है कि राजा कर्णदेव तथा कालिंजराधिप कीर्तिवर्मा के बीच युद्ध हुए थे। पहिले कर्णदेव सफल हुए और उन्होंने कालिंजर राज्य पर अधिकार कर लिया परंतु उसके बाद दूसरे युद्ध में कर्णदेव पराम्त हो गए और उन्हें कालिंजर राज्य छोड़कर लौट जाना पड़ा। यह कार्य कालिंजर के योग्य सेनापति गोपाल द्वारा पूर्ण हुआ था।

राजा कर्णदेव ने हूण जाति की एक राजकन्या आवल्लदेवी से विवाह किया था, जिससे उसे यशःकर्णदेव पुत्र उत्पन्न हुआ। कर्णदेव सं० १०९८ वि० के लगभग गद्दी पर बैठे और प्रायः पचास वर्ष तक राज्य किया। इसके अनंतर यशःकर्णदेव त्रिपुरी का राजा हुआ पर गद्दी पर बैठने के प्रायः आठ-नौ वर्ष बाद परमार राजा लक्ष्मदेव से यह बेतरह हारा और उत्तर में राठौड़ों ने इसका कुछ राज्य छीन लिया। इसके अनंतर क्रमशः हैहय या कलचुरियों का राज्य अवनति करता चला गया।

चंदेल-राजवंश

वर्तमान बुंदेलखंड पहिले जेजकमुक्ति या जुझौती कहलाता था और वहाँ चंदेल-वंश का राज्य था। सम्राट् हर्षवर्द्धन की

मृत्यु के उपरांत उसका साम्राज्य नष्ट हो गया और उसके ध्वंस पर बहुत से छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुए। इन्हीं में जुझौती भी एक राज्य था। दसवीं शताब्दि में खजुराहो इसकी राजधानी थी, जो आजकल छत्रपुर राज्य के अंतर्गत है। चंदेले चंद्रवंशी क्षत्रिय या राजपूत माने जाते हैं और इनकी उत्पत्ति चंद्रदेव तथा एक ब्राह्मण-कन्या के समागम से हुआ कहा जाता है। ये मनियागढ़ के मूल निवासी हैं, जहाँ गोंड़ों का आदिमकाल में निवास था। इन्हीं में युद्धवीर गोंडों का संस्कार होने पर उनके क्षत्रिय होने की अधिक संभावना है। चंदेल राजकुमारी दुर्गावती का गढ़ा के गोंड़ नरेश दलपति से विवाह होना इस संभावना को पुष्ट करता है।

विक्रमीय नवीं शताब्दि के अंत में नन्नुक नामक प्रथम चंदेल नरेश का पता चलता है, जिसके अनंतर वाक्पति, जयशक्ति (जेज्जक), विजयशक्ति (विज्जक) और राहिल क्रमशः गद्दी पर बैठे। ये सभी कान्यकुब्ज नरेशों के करद राजे थे। छठे नरेश हर्ष ने कान्यकुब्ज के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी और उसे परास्त कर अपना करद राज्य बना लिया। यह घटना सं० ९७४ के आसपास की है। इस कार्य में राष्ट्रकूटपति इंद्र तृतीय ने भी हर्ष की सहायता की थी। हर्ष के अनंतर उसका पुत्र यशोवर्मन सं० ९८७ में गद्दी पर बैठा और इसीने कालिंजर दुर्ग विजय कर अपने राज्य में मिला लिया। इसने खजुराहो में विष्णु का विशाल मंदिर बनवाया और उसमें कन्नौज नरेश से ली हुई मूर्ति का प्रतिष्ठापन किया। यशोवर्मा प्रतापी राजा हुआ और इसने कई राज्यों पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त की। बीस वर्ष राज्य कर इसकी सं० १००७ वि० में मृत्यु हुई।

इसके अनंतर धंग कालिंजर का राजा हुआ, जो भारत के प्रमुख नरेशों में गिना जाता था। जब पश्चिमोत्तर की ओर से

सुबुक्तगीं के अधीन मुसलमान आक्रमण आरंभ हुआ तब भटिंडा नरेश जयपाल ने धंग से सहायता माँगी थी और इसने स्वीकार कर सहायता भेजी भी थी। धंग ने भी खजुराहो में कई मंदिर बनवाए थे, जिनमें महादेवजी का एक मंदिर सबसे अच्छा है। पचास वर्ष राज्य कर गंगा-जमुना के संगम पर इसकी मृत्यु हुई और इसका पुत्र गंडवर्मा राजा हुआ। महमूद गज़नवी के विरुद्ध इसने जयपाल के पुत्र आनंदपाल की सहायता की थी। इसके अनंतर महमूद ने कन्नौज पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा के अधीनता स्वीकार कर लेने पर मथुरा लूटता हुआ लौट गया। इस पर गंडवर्मा ने क्रुद्ध होकर अपने पुत्र विद्याधर के अधीन कन्नौज पर सेना भेजी और वहाँ के राजा को म्लेच्छों की अधीनता स्वीकार कर लेने के दोष पर प्राणदंड दे दिया। महमूद ने यह सुनकर सं० १०७७ वि० में गंड पर चढ़ाई की और इन्होंने भी बड़ी भारी सेना युद्ध के लिए तैयार की पर रात्रि में भय या किसी अन्य कारण से सेना छोड़कर भाग गया। इसका राज्य लूटा गया। तीन वर्ष बाद महमूद ने इस पर पुनः आक्रमण किया और गंड ने कर देकर अधीनता स्वीकार कर ली।

गंड के पुत्र विद्याधर सं० १०८२ में गद्दी पर बैठे और इनसे कन्नौज नरेश त्रिलोचनपाल से कुछ दिन तक युद्ध चलता रहा। इनकी मृत्यु पर विजयपाल गद्दी पर बैठे, जिनका दो विवाह हुआ था। प्रथम महारानी भुवनदेवी से देववर्मा और द्वितीय से महाराज कीर्तिवर्मा हुए। विजयपाल की मृत्यु पर देववर्मा गद्दी पर बैठे पर शीघ्र ही उनकी मृत्यु हो जाने पर उनके भाई कीर्तिवर्मा राजा हुए। इनके दो पुत्र सलक्षणवर्मन् और पृथ्वीवर्मन् थे। यह बहुत प्रतापी राजा हुए और चेदि-नरेश कर्णदेव से पहिली बार परास्त होने पर भी उसे पुनः युद्ध कर परास्त किया तथा अपना

राज्य बढ़ाया। इन्होंने महोबा, चंदेरी, अजयगढ़ तथा कालिंजर में बहुत से मंदिर, प्रासाद आदि बनवाए और प्रायः पचास वर्ष तक राज्य किया। इसका मंत्री वत्सराज था और इसका एक प्रसिद्ध सेनापति गोपाल था, जिसके आश्रय में श्रीकृष्णमिश्र ने प्रबोध-चंद्रोदय नाटक लिखा था।

मत्तमयूर शैव संन्यासी

आज से एक सहस्र वर्ष पूर्व महाराष्ट्र तथा मालवे में एक संप्रदाय के शैव संन्यासी वर्तमान थे, जिनका नाम आज सभी मनुष्यों की स्मृति-पटल से लुप्त हो गया है। इस संप्रदाय का नाम "मत्तमयूर" था। आज से नौ सौ वर्ष पूर्व जब्बलपुर के हैहय-वंशीय राजपूत राजाओं ने इस संप्रदाय के तीन चार संन्यासियों को अपने यहाँ निमंत्रित किया था तथा उनके लिये अपने राज्य में भारी-भारी मठ बनवा दिए थे। इन मठों में रींवा राज्य में दो तथा जब्बलपुर जिले में दो मठ अब भी विद्यमान हैं। इन संन्या-सियों के लिये बहुत से ग्राम तथा बहुत सी भूमि देव सम्पत्ति स्वरूप अलग निकाल दी गई थी तथा त्रिपुरी राज्य के हैहयवंशीय राजाओं के समय के अन्त तक इन संन्यासियों का बहुत अधिक प्रभाव था। सब से प्रथम इन मत्तमयूर-संन्यासियों का नाम दक्षिणापथ के शिलाहारवंशीय राजा रट्टराज के ताम्रशासन में मिलता है। बंबई प्रदेश के रत्नगिरि जिले के खारेपट्टन ग्राम में चार ताम्रपत्र आज से लगभग सत्तर वर्ष पूर्व प्राप्त हुए थे। इन ताम्रपत्रों से मालूम होता है कि ९३० शकाब्द में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन शिलाहार राजपूतवंशीय माण्डलिक रट्टराज ने मत्तमयूर संन्यासियों के कर्करोणी-शाखा के व्यय-संस्थान के लिए तीन ग्राम दान-स्वरूप दिए थे। इस ताम्रशासन की तिथि अंग्रेजी तारीख के अनुसार २२ मई सन् १००८ ई० है।

इस मत्तमयूर-सम्प्रदाय की पौराणिक उत्पत्ति इस प्रकार कही जाती है कि भगवान् शिव कैलास पर्वत पर अपने गणों के साथ रहा करते थे। भगवान् शिव के पुत्र कार्तिकेयजी का मयूर जब कभी प्रसन्न होकर केकारव करता था, तब शिव के कुछ गण मस्त होकर नृत्य करने लगते थे। केकी के रव में केवल दो ही स्वर होते हैं—एक षड्ज, दूसरा ऋषभ कोमल। ये गण लोग केवल इन्हीं दो स्वरों पर नाचते थे। नृत्यकला के अनुसार केवल दो तालों पर नृत्य करना बड़ा कठिन कार्य है। कहते हैं कि भगवान् शिव ने उनके इस नृत्य पर प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया, 'जाओ तुम लोग पृथ्वी पर जन्म लेकर 'मत्तमयूर' के नाम से प्रसिद्ध हो, तुम्हारी गणना अष्टविंशति शिव तत्त्वों में होगी।' कहते हैं कि यही शिवगण इस मत्तमयूर संप्रदाय के प्रवर्त्तक हुए।

किसी समय में मत्तमयूर-संन्यासी दक्षिण से मालवा में आ गए। मालवा प्रान्त के ग्वालियर के हिस्से में उपेन्द्रपुर या उण्डोर तथा रणपद्पुर या राणोड के मठ के शिलालेख से मालूम होता है कि इन संन्यासियों की गुरु-परम्परा का इतिहास पीढ़ी दरपीढ़ी लिखा जाता था। मालवा के मत्तमयूर-संप्रदाय में कदम्ब गुहाधिवासी नामक महन्त सब से प्रथम गद्दी पर आसीन हुए थे। उनके पश्चात् उनके शिष्य शंख मठिकाधिपति तथा उनके बाद उनके चेले तिरम्बिपाल—राणोड मठ के महन्त हुए थे। जब्बलपुर के चौंसठ योगिनी मंदिर के शिलालेख के अनुसार "तिरम्बि" द्वादशभुजा दुर्गा या महिषमर्दिनी का नाम है। तिरम्बिपाल के शिष्य आमर्दक तीर्थनाथ तथा उनके चेले पुरन्दर थे। मालवा देश के राजा अवन्तिवर्मा शैव धर्म की दीक्षा के लिए पुरन्दर को मालवा देश में ले आए थे। पुरन्दर के उपेन्द्रपुर में आने पर अवन्तिवर्मा ने उनसे दीक्षा ली तथा एक मठ की स्थापना की।

पुरन्दर के शिष्य कवचशिव तथा उनके शिष्य सदाशिव हुए। सदाशिव के शिष्य हृदयेश और उनके शिष्य व्योमशिव हुए। व्योमशिव के समय में राणोद या रणपद्रपुर का शिलालेख खुदवाया गया था।

पुरन्दर के दूसरे शिष्य तथा कवचशिव के गुरुभाई हैहय वंशीय राजा चेदिचन्द्र या युवराजदेव (द्वितीय) के निमंत्रण पर चेदि राज्य में आये थे। इनका नाम चूड़ाशिव या शिखाशिव था। शिखाशिव ने अपने शिष्य हृदयशिव को राजा लक्ष्मणराज की ओर से बिलहरी का मठ दिलाया और स्वयं उन्होंने गोलकी या गुर्गी के मठ पर आसन ग्रहण किया।

नर्मदा के जलप्रपात के ऊपर वैद्यनाथ महादेव का मंदिर और मठ गुर्गी के संन्यासियों के आधिपत्य में रहा। शिखाशिव के दूसरे शिष्य प्रभावशिव को गुरु परंपरा के कारण गोलकी और वैद्यनाथ मठ का अधिकार मिला। उनके शिष्य प्रशान्तशिव तथा उनके शिष्य प्रबोधशिव थे। प्रबोधशिव ने प्राचीन हैहयवंशीय राजपूतों के राज्य में तीन बड़े बड़े पत्थर के मठ बनवाए थे। इन तीनों में सबसे पुराना रींवा-राज्यान्तर्गत चंद्रेही का मठ है। रींवा शहर से उन्नीस मील दक्षिण सोन नद के ऊपर भ्रमरशैल पर्वत के नीचे अति मनोरम स्थान पर यह मठ और शिवमंदिर बने हुए हैं। दोनों भवन आज तक विद्यमान हैं।

रींवा शहर से छ कोस पूर्व गुर्गी में त्रिपुरी-राज्य के मत्तामयूर शैव-संप्रदाय के संन्यासियों का बड़ा अखाड़ा था। गुर्गी के सहस्रों तालाब तथा पोखरे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि किसी समय में यह बड़ा भारी नगर था। यहाँ पर एक ऊँचा टीला है, जिसके ऊपर से एक आश्चर्यजनक पत्थर का तोरण लगभग सौ वर्ष पहले मिला था। रींवा राज्य के बघेलवंशीय महाराजाओं ने

इस तोरण को रींवा शहर में ले जाकर अपने राजप्रासाद का दरवाजा बनाया है। जब तोरण रींवा शहर में गया उस समय एक बड़ा शिलालेख भी गुर्गी के टीले से निकला। इस शिलालेख से मालूम होता है कि पुरंदर के प्रशिष्य प्रभावशिव हैहयवंशीय महाराजाधिराज मुग्धतुंग के पुत्र द्वितीय युवराजदेव के निमंत्रण पर हैहय राज्य में आए थे और उनके अनुरोध से उन्होंने महंत पद ग्रहण किया था। लेख के बीच का हिस्सा बहुत कुछ नष्ट हो गया है, इसलिये वह पढ़ा नहीं जा सकता। अंतिम भाग में युवराज प्रथम के युद्धयात्रा तथा मत्तामयूर संन्यासियों को दिए गए ग्राम-दान का विवरण है।

प्रमाण मिलता है कि दिग्विजयी हैहयवंशीय महाराजाधिराज कर्णदेव ने (ईस्वी सन् १०४१-७७) कान्यकुब्ज विजय करके अन्तर्वेद अर्थात् गंगा-यमुना के दोआबे पर दखल किया था। कर्णदेव के पुत्र यशःकर्णदेव ने अंतर्वेद के अन्तर्गत करण्ड ग्राम अपने गुरु शैव महायोगी रुद्रशिव को दान किया था, परन्तु गाहडवालवंशीय कन्नौजराज गोविन्द्रचन्द्र ने मत्तामयूर योगियों से यह ग्राम छीन कर ठक्कुर वशिष्ठ शर्मा को संवत् ११७७ में दान किया था।

जब्बलपुर शहर से १२ मील दक्षिण नर्मदा के ऊपर भेंडा घाट गाँव में एक प्राचीन शिलालेख मिला था, लेकिन वह शिलालेख आज संयुक्त-राज्य अमेरिका के न्यूहैविन (New haven) में सुरक्षित है। इस शिलालेख से मालूम होता है कि कर्णदेव के पौत्र जयकर्णदेव का मेवाड़ के गुहिलवंशीय विजयसिंह की कन्या अल्हणदेवी से विवाह हुआ था। जयकर्णदेव की मृत्यु के बाद अल्हणदेवी ने कलचुरी चेदि संवत्सर ६०७ में वैद्यनाथ नामक महादेव का मंदिर निर्माण किया था। इस मंदिर के व्यय

के लिये रानी अल्हणदेवी ने जाडली पत्तला में डण्डी ग्राम और नर्मदा के दक्षिण तट पर मकरपाटक ग्राम दानस्वरूप दिए थे। गुजरात देशीय पाशुपताचार्य शैव संन्यासी रुद्रशिव को इन दोनों ग्रामों के कर संग्रह का भार दिया गया था। इससे मालूम होता है कि यशःकर्णदेव के गुरु रुद्रशिव सन् ११२० ई० तक जीते थे। क्योंकि इन रुद्रशिव की देवत्रभूमि करण्ड ग्राम को कन्नौज-राज गोविन्दचन्द्र ने सन् ११२० ई० में छीन कर दूसरे को दिया था। अल्हणदेवी के पौत्र हैहयवंशीय महाराजाधिराज विजयसिंह के राज्य काल में शैवाचार्य विद्यादेव राजगुरु थे। विजय-सिंह के देहांत होने पर मत्तमयूर संन्यासियों ने दक्षिण की यात्रा की।

मत्तमयूर संप्रदाय के शैव संन्यासी गूढ़शिव तत्वज्ञानी थे। चन्द्रेही तथा गुर्गी के शिलालेख के अनुसार शैवाचार्य प्रशान्तशिव बनारस में सब मनुष्यों को धर्मोपदेश प्रदान करते थे। आज भारतवर्ष में शैव-वैष्णवादि अनेक प्रकार के संन्यासी हैं, परंतु अति विद्वान् तथा प्रचंड शक्तिशाली मत्तमयूर-संप्रदाय के अस्तित्व का चिह्न केवल दो एक प्रस्तर खंडों तथा दो एक प्राचीन पुस्तकों के अतिरिक्त कहीं नहीं मिलता।

कथा-वस्तु

उक्त ऐतिहासिक इतिवृत्त के पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि हैहय-नरेश कर्णदेव ने कालिंजर-नरेश कीर्तिवर्मा को परास्त कर उसका राज्य छीन लिया था पर उनके एक सेनापति गोपाल ने पुनः सेना एकत्र कर तथा कर्णदेव को परास्त कर राज्य लौटा लिया और कीर्तिवर्मा को गद्दी पर बिठा दिया। इतने ही इतिवृत्त पर इस उपन्यास का कथा-वस्तु संगठित किया गया है। कृष्णमिश्र

कृत प्रबोध-चंद्रोदय नाटक में इस घटना का उल्लेख है। यह नाटक (आदिष्टोस्मि……गोपालेन) गोपाल की आज्ञा से लिखा गया था और इसमें इसकी वीरता की प्रशंसा की गई है।

> अस्ति प्रत्यर्थिपृथ्वीपति विपुलबलारण्यमूर्च्छत्प्रताप-
> ज्योतिर्ज्वालावलीढ़त्रिभुवनविवरो विश्वविश्रांतकीर्तिः।
> गोपालो भूमिपालान् प्रसभमसिलतामित्रमात्रेण जित्वा
> साम्राज्ये कीर्तिवर्मा नरपतितिलको येन भूयोऽभ्यषेचि ॥

इसके अनंतर 'चेदिपतिनासमुन्मूलितं चंद्रान्वयपार्थिवानां पृथिव्यामाधिपत्यं स्थिरीकर्तुमयमस्यसंरंभः' अर्थात् कर्णदेव को परास्त कर कीर्तिवर्मा की राज्यलक्ष्मी स्थिर की गई। इसमें इतना ही इस घटना के विषय में लिखा गया है। इस गोपाल के ब्राह्मण होने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है, प्रत्युत् 'सामंतकुलचक्र चूड़ामणि' होने से क्षत्रिय होने ही की विशेष संभावना है। अस्तु, इस घटना की सत्यता पर इस नाटक ही की उद्धरणी की जाती है। इसलिए इसका उल्लेख करना आवश्यक था।

कथावस्तु इस प्रकार है। कीर्तिवर्मा की सौतेली माता के भाई वारेंद्रनारायणसिंह शंका के कारण कालिंजर राज्य छोड़कर त्रिपुरी के राजा के आश्रय में चले जाते हैं और वहीं रह कर उस राज्य का युद्धीय कार्य करते हैं। इनके साथ इनके पुत्र रामेंद्र-नारायणसिंह तथा पुत्री इरावती भी हैं। कर्णदेव के राजकुमार यशःकर्णदेव कुमारी इरा को देखकर मोहित होते हैं और उसके साथ कपट से विवाह करना चाहते हैं क्योंकि इरा का क्षत्रिय कन्या होने से हैहय के साथ विवाह नहीं हो सकता था। इस षड्यंत्र में उसकी माता महारानी आवल्लदेवी तथा मत्तमयूर शैव आचार्य रुद्रशिव दोनों सहायता करते हैं। यह षड्यंत्र विफल-

होता है और इसी बीच कर्णदेव कालिंजर पर चढ़ाई कर उसे विजय कर लेते हैं। अंत में वारेंद्रनारायणसिंह चेदि राज्य के राजकुमार के षड्यंत्र से क्षुब्ध होकर तथा अपनी मातृभूमि की आपत्तिकाल में रक्षा करने के विचार से अपनी जागीर को लौट जाते हैं। कीर्तिवर्मा का उद्धार कर तथा सेना एकत्र कर कालिंजर पर विजय प्राप्त करते हैं और कर्णदेव की भेजी सेना को परास्त करते हैं। इस कार्य में इनके युवक मित्र तथा भावी जामाता गोपाल इनकी सहायता करते हैं, जो पहिले अज्ञात तथा एक ब्राह्मण के पोष्य पुत्र के रूप में आता है। बाद में पता लगता है कि वह कालिंजर ही के एक प्रसिद्ध वीर सामंत का पुत्र है, जो वारेंद्रनारायणसिंह के परम मित्र थे। अंत में गोपाल तथा इरा का विवाह होता है।

उपन्यास के प्रधान पात्र गोपाल तथा इरावती हैं, जिनमें प्रथम ऐतिहासिक पुरुष है। उनकी पत्नी रही ही होगी, जिसका नाम कल्पना द्वारा इरावती रख दिया गया है। इसके सिवा चेदिनरेश कर्णदेव और कालिंजर-पति कीर्तिवर्मा ऐतिहासिक पुरुष हैं। इनमें कर्णदेव के जो शिलालेख या ताम्रपत्र पाए जाते हैं, उनसे इसका राज्यकाल सन् १०४१ से १०७७ तक निश्चित होता है। कीर्तिवर्मा का समय इसी प्रकार सन् १०४९ से ११०० तक आता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों सन् १०४९ से १०७७ तक समकालीन थे। कीर्तिवर्मा अपने निस्सन्तान भाई देववर्मा की मृत्यु पर गद्दी पर बैठा था और कर्णदेव की मृत्यु के २३-२४ वर्ष बाद वीरलोक गया था। इस कारण यह कर्णदेव से अवस्था में, अट्ठाईस वर्ष तक सम-कालीन रहते हुए भी, बहुत छोटा रहा होगा। इससे यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि प्रौढ़ कर्णदेव ने युवा कीर्तिवर्मा को परास्त किया

था और उसके किसी अनुभवी वृद्ध सेनानी ने उसी की सेना को सुसज्जित कर पुनः राज्य लौटाया होगा। महारानी भुवनदेवी कीर्तिवर्मा की बड़ी माता थीं, इससे उसी प्रकार चित्रित की गई हैं।

इसी विचार शृंखला के अनुसार पात्रों की अवस्था निश्चित की गई और कथावस्तु निर्मित हुआ। इस उपन्यास का बहुत सा अंश काशी के न्यायालय के पुस्तकालय में अवकाश के समय लिखा गया है। इस इतिवृत्त के लिए निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली गई है—

१. प्राचीन राजवंश—पं० विश्वेश्वरनाथ रेऊ।
२. प्रबोध चंद्रोदय नाटक—श्रीकृष्ण मिश्र।
३. बुंदेलखंड गजेटियर, प्राविंशियल—भारत-सरकार।

कृष्णाष्टमी
सं० २००४

विनीत—
ब्रजरत्नदास

पात्र सूची

महाराज कर्णदेव	त्रिपुरी के राजा
यशःकर्णदेव	„ राजकुमार
महाराज कीर्तिवर्मा	कालिंजर के राजा
वारेंद्रनारायणसिंह	„ सर्दार और त्रिपुरी के आश्रित
रामेंद्रनारायणसिंह	वारेंद्रनारायणसिंह के पुत्र
गोपाल	नायक
वत्सराज	कालिंजर के मंत्री
बटुकनाथ	मालवेश के राजज्योतिषी
हूणराज	महारानी आवल्लदेवी का भाई
सिंहराज, राजेंद्रसिंह	कालिंजर के सेनापतिगण
अचलदेव, संग्रामदेव	त्रिपुरी के सेनापतिगण
सोमल्लदेव	गोपाल का पिता
सबलसिंह	सोमल्लदेव का सगा भाई
जाजल्लदेव	सोमल्लदेव का चचेरा भाई
अनंत	भील सरदार

पात्रियों की सूची

इरावती	वारेंद्रनारायणसिंह की पुत्री
आवल्लदेवी	त्रिपुरी की महारानी
भुवनदेवी	कालिंजर की महारानी और वारेंद्रनारायणसिंह की बहिन
सोमी	इराकी सखी, भील कन्या

इरावती

प्रस्तावना

जगत्तारिणी त्रिपुरारि-शिरमौलि-विहारिणी ब्रह्मद्रव-स्वरूपिणी भगीरथ-नंदिनी पुण्यतोया जाह्नवी की एक छोटी सहायिका के तट पर स्थित एक वृहत् अट्टालिका का भग्नावशेष उषाकाल के मंद प्रकाश में सांसारिक वस्तुओं तथा मानुषिक कृतियों की असारता और अनित्यता प्रदर्शित कर रहा था। उसके देखने से यह स्पष्ट ही ज्ञात हो रहा था कि किसी समय यह महल वृहत् राजोद्यान से घिरा हुआ गर्व से मस्तक उठाए हुए अपने नीचे की बहती हुई निर्मल जलधारा में केवल अपने ही आपको देखता रहा होगा, पर काल ने इस प्रस्तर-निर्मित सुदृढ़ और विशाल भवन को भी न छोड़ा। उद्यान की चहारदीवारी मिट्टी में मिल गई थी और सौरभ-विनंदित उद्यान के पौधे लतिकादि घास पात से ढँक गए थे। उद्यान से जल तक जाने के लिये एक छोटा सा सुंदर घाट बना हुआ था, जो अब भग्नःप्राय हो रहा था।

जिस राजवंश का यह उद्यान तथा अट्टालिका थी उसका अब प्रायः कुछ भी पता न था। हाँ, इसमें अवश्य कुछ जीव रहते थे, ऐसा ज्ञात होता था। थोड़ी ही देर में सहस्ररश्मि भास्कर का वे ही किरणें प्रखर हो कर इस भग्नावशेष को प्रकाशित करने लगीं, जो उसकी उन्नत अवस्था में उसके सुवर्ण कलशों पर चमक कर प्रत्या-वर्तन कर जाती थीं। प्रकाश बढ़ते ही उस भवन के सिंहद्वार से एक पंचवर्षीय हृष्ट पुष्ट बालक एक हाथ में गेंद तथा दूसरे हाथ में एक

छोटी सी छड़ी लिए हुए बाहर निकला और खेलता हुआ आगे बढ़ने लगा। मार्ग में एक स्थान पर बहुत सी घास उग रही थी जिसे आच्छादित कर तुषारकणों ने रजतकणों या क्षुद्र मुक्ताओं से गुथी हुई शीतलपाटी सी बिछा रखी थी। किरणमाली का उषःकाल का मंद मंद प्रकाश उस श्वेत आच्छादन पर खेलता हुआ उसे प्रकाशमान कर रहा था। बालक उस खेल को देखता हुआ स्वयं मुग्ध सा हो कर अपना खेल भूल गया और उसे एक दृष्टि से कुछ देर तक देखता रहा। इस प्रकार कुछ देर एकाग्रचित्त रह कर बाल्यस्वभाव से उसने अपनी छड़ी बढ़ाई और उस चमकते हुए आच्छादन को बहुत ही धीरे से एक ओर से उठाने का प्रयत्न करने लगा। पहिले धीरे धीरे और फिर जल्दी जल्दी वह छड़ी इधर उधर कर रहा था पर कोई वस्तु, चमकती या न चमकती, उसकी छड़ी से लिपट कर उसके पास न आई। वह बार बार छड़ी खींच कर देखता था कि इसमें कुछ लगा हुआ आया है या नहीं पर वहाँ केवल जल के चिह्न के और कुछ न था। सहस्त्ररश्मि की रश्मियाँ कुछ प्रखर हो चलीं और उन पर खेलने के बदले उन्होंने उन तुषारकणों को आत्मसात् करना आरंभ कर दिया। बालक उस श्वेत दर्शनीय वस्तु को न देख कर तथा कुछ न समझ कर मुख विचका कर आगे की ओर गंभीरतापूर्वक दार्शनिकों के समान बढ़ चला।

बालक के हाथ के गेंद को दूरस्थित एक वृक्ष पर से एक रक्तमुख, सुर्खरू, जीव ने देखकर उसे बहुत ही सुंदर खाद्य वस्तु अनुमानित किया और उस अकेले बालक से उसे ले लेना सुगम समझ कर उसकी घात में नीचे उतरा। बालक उसी प्रकार निर्द्वंद्वतापूर्वक गेंद उछालता पटकता चल रहा था कि उसे कुछ खटका हुआ। वह कुछ चैतन्य सा हो गया। उसने झट गेंद उठा कर एक हाथ में दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया और दूसरे हाथ से छड़ी उठा कर इधर उधर

देखने लगा। पीछे की ओर देखने पर उसे उसी ललमुँहे जीव का दर्शन मिला जो बड़ी सतर्कता से चला आ रहा था। बालक उसे देखकर चुपचाप खड़ा हो रहा और दोनों हाथ की वस्तुओं को और भी दृढ़ता से पकड़ लिया। 'बंदर घुड़की' प्रसिद्ध है पर बालक उससे कुछ भी न डरा, स्यात् समझ की न्यूनता रही हो। जब बंदर उसकी ओर बढ़ता तो वह छड़ी उठाता और जब ठहर जाता तो वह भी खड़ा हो कर उसे देखता रहता। अंत में वह बंदर उस फल से पूर्णतया परिचित हो कर या उसे निस्वादु समझ कर या उस तक पहुँचना सुगम न देख कर लौट चला और 'शाखामृग' की मनुसाई दिखलाता हुआ इस पेड़ से उस पेड़ होता हुआ अंतर्दृष्ट हो गया। बालक भी प्रसन्नचित्त हो कर आगे बढ़ा।

अब वह बालक उस मार्ग पर अग्रसर हो रहा था जो उस उद्यान के घाट की ओर गया था। मार्ग केवल मार्ग सा बोध हो रहा था। दोनों ओर से झाड़ झंखाड़, गिरे पड़े वृक्ष आदि उसे बंद करने का प्रयत्न कर रहे थे पर अभी तक वह खुला हुआ था किंतु गुंजान वृक्षों तथा लतादि से आच्छादित होने के कारण उस रास्ते में सूर्य के प्रकाश में भी अंधकार हो रहा था। बालक उसी मार्ग से होता हुआ घाट तक पहुँच गया और सबसे ऊपर की सीढ़ी पर खड़ा हो कर जल का दृश्य देखने लगा।

यह घाट पक्का तथा प्रस्तर-निर्मित था, प्रायः चालीस फुट चौड़ा था तथा इसके दोनों ओर पक्की दीवाल जल तक चली गई थी। सीढ़ियाँ प्रायः पचास के लगभग थीं, जिनमें कुछ जल तक पहुँच गई थीं। आठ आठ सीढ़ियों के अनंतर नवीं सीढ़ी प्रायः ढाई फुट चौड़ी थी। स्थान स्थान पर बनी हुई छोटी छोटी सुंदर मढ़ियाँ भी घाट की शोभा बढ़ा रही थीं पर समय ने उन सबके स्वरूप को बिगाड़ रखा था। यद्यपि यह घाट कुछ कुछ टूट फूट चला था तब

भी अभी बहुत दृढ़ तथा सुंदर था। उस दिन उस घाट पर एक छोटी सी नाव बँधी हुई थी, जिस पर केवल एक मल्लाह बैठा हुआ धूम्रपान कर रहा था। उस घाट की एक मढ़ी पर एक पंडितजी स्नानादि से निवृत्त हो कर संध्योपासन में निमग्न हो रहे थे। पंडितजी शरीर से बहुत ही लंबे चौड़े तथा शक्तिमान पुरुष दिखलाई पड़ते थे। पक्का रंग, प्रशस्त ललाट आदि से वे एक अच्छे अनुभवी विद्वान ज्ञात होते थे। उनकी अवस्था प्रायः पचास के लगभग होगी। ऐसा ज्ञात होता था कि कहीं बाहर की यात्रा करते हुए वे इधर आ निकले थे और उस एकांत स्थान को उपयुक्त समझ कर प्रातःकृत्य से निवृत्त हो रहे थे। संध्यावंदन से छुट्टी पाने पर जब उन्होंने ऊपर की ओर दृष्टि उठाई तब उन्हें वही बालक घाट पर खड़ा दिखलाई पड़ा।

वह बालक भी जल के दृश्य तथा नाव और नाविक को देखने के अनंतर एकाग्र चित्त हो कर पंडितजी के संध्यावंदन को देख रहा था। धीरे धीरे वह निडर बालक एक एक सीढ़ी उतरता हुआ उस मढ़ी तक पहुँचा, जहाँ पंडितजी विराजमान थे और उन्हें हाथ जोड़ कर उसने पूछा कि 'आप यहाँ क्या कर रहे हैं' ? पंडितजी उस बालक को टकटकी लगाए देख रहे थे। उसके प्रणाम तथा प्रश्न को सुन कर मानों चौंक उठे और उस बालक को आशीर्वाद दे कर अपने पास बुला कर बैठा लिया और कहा कि 'बेटा मैं तो दूर से आ रहा हूँ, यहाँ एकांत स्थान देख कर संध्यावंदन कर रहा था। बतलाओ तुम अकेले यहाँ घाट पर कैसे चले आए। कुछ डर नहीं लगा'।

बालक—डर, डर क्या ? हम नित्य यहाँ खेलने आते हैं।

पंडितजी—तुम्हारे माँ बाप कैसे तुम्हें अकेले यहाँ घाट तक आने देते हैं ?

बालक—हमारी केवल माँ हैं और कोई नहीं है।

पंडितजी ने बालक का दाहिना हाथ पकड़ कर उसकी हस्त-रेखा देखते हुए उससे पुनः पूछा कि 'इस निर्जन स्थान में तुम और तुम्हारी माता अकेले कैसे रहती हैं, खाने पीने का सामान नगर से कौन लाता है ?'

बालक ने उत्तर दिया—'साधु बाबा कभी कभी आते हैं और वही सब सामान जुटाते हैं।'

पंडितजी ने तब तक हस्तरेखा देख डाली और उसके मुख की ओर आश्चर्य से देखने लगे। उन्हें उस बालक में आदर्श वीर तथा राजा के योग्य चिह्न दिखलाई पड़े। साथ ही उसकी निरा-श्रयता भी सुन कर उन्हें कम अचरज नहीं हुआ। उन्होंने उस बालक को धीरे धीरे सीढ़ी चढ़ कर घर जाने की राय दी और वह भी पंडितजी को प्रणाम कर घाट के ऊपर चढ़ने लगा। वह प्रायः कुल सीढ़ियाँ चढ़ चुका था कि उसके हाथ का गेंद दैववशात् उसके हाथ से छूट गया और वह उसे लेने को शीघ्रता से सीढ़ी उतरने लगा। एकाएक उसका पैर फिसल गया और वह धड़ाम से सात-आठ सीढ़ी नीचे आ गया। पंडितजी उसका चढ़ना देख ही रहे थे कि उसको गिरते देख लपके पर इसी बीच वह एक चौड़ी सीढ़ी पर गिर कर बेहोश हो गया। पंडितजी ने उस बालक को उठा लिया और उसे अपनी नाव में ला कर सुला दिया। उसे होश में लाने का वे उपाय करने लगे पर चोट भीतरी और गहरी लगी थी। उन्होंने मल्लाह को बाग में समाचार देने को भेजा और बालक के होश में आने की प्रतीक्षा करने लगे।

प्रायः एक घंटा हो चला था कि वह मल्लाह लौट कर आया और यही समाचार लाया कि उस बाग या मकान में एक भी जीव नहीं है। उसने कहा कि मैंने बहुत पुकारा तथा बहुत खोजा पर कहीं

कुछ पता न चला। पंडितजी बालक की बेहोशी से घबराए हुए थे। उन्होंने यह समाचार सुनते ही झट नाव खुलवा कर आगे का मार्ग लिया और पूर्ण वेग से नाव को धारा में चलाते हुए वे आध घंटे में एक ग्राम में पहुँचे। वहाँ एक वैद्यजी को उन्होंने बुलवाया, जिसने बालक की दशा को अच्छी तरह देख कर कहा कि चोट शिर में ही अधिक आई है और इसी से यह अभी तक बेहोश है और अभी कई घंटे तक रहेगा। आप चिंतित न हों, यह लेप सिर पर चढ़ा दीजिए और यह दवा घंटे घंटे पर देते चलिए, ईश्वर चाहेगा तो शाम तक ठीक हो जायगा। हाँ, एक बात है कि इस चोट का इसके ज्ञान पर कुछ असर न पड़े इसलिये आप इसकी औषधि अवश्य कीजिएगा। वैद्य जी यह कह कर चल दिए और पंडितजी बड़ी चिंता में पड़े। बालक के घर पर उसकी माँ है, यह वही कहता था पर खोजने पर भी वहाँ कोई नहीं मिला। ऐसी अवस्था में उस बालक को पंडितजी वहाँ कहीं छोड़ भी नहीं सकते थे। अंत में उन्होंने उस बालक को घर ले जाना ही निश्चित किया और नाव खोल दी गई।

संध्या तक पंडित जी घर पहुँच गए और निस्संतान पंडिताइन-जी को वह बालक सौंपा, जिसमें अब कुछ चेतनता के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे थे। पंडितजी ने इसके अनंतर दो तीन बार उस नाविक को उस उद्यान में पता लगाने के लिये भेजा पर उसे वहाँ कोई न मिला। अंत में पंडितजी ने उस बालक को अपने पास रख लिया और उसका अपने पुत्र के समान लालन-पालन करने लगे।

प्रथम परिच्छेद

प्रस्तावना की उल्लिखित घटना को घटित हुए प्रायः बारह वर्ष व्यतीत हो चुके पर इस उपन्यास की शृंखला अब आरंभ होती है।

प्राचीन कलचुरि वंश की राजधानी त्रिपुरी के पास उससे कुछ हट कर घोर वन है। यह मेकलसुता के उत्तर तटस्थ विंध्याटवी का वह अरण्य भाग है, जहाँ वृत्तों की गहनता से दिन को भी अंधकार छाया रहता है। पार्वत्य प्रदेश होने से कहीं तो हरियाली से लदे हुए सहस्रों फुट ऊँचे पहाड़ी सिलसिले बराबर चले गए हैं और उनके दोनों ओर गंभीर उपत्यकाएँ दूर दूर तक फैली हैं, जिनमें कहीं कहीं 'हिंसा परमो धर्मः' मानने वाले जीव विचरण करते हुए अपने शिकार के फेर में पड़े रहते हैं और कहीं उनसे भी भयंकर मनुष्य रूपी जीव 'जीवो जीवस्य जीवनम्' मानते हुए अपनी घात में लगे हुए पहुँच जाते हैं। परंतु साथ ही कितने निरपराध, निर्बल जीव भी उसी घोर वन में बसे हुए थे, जो अपने वंश के वंश के खा जाने वालों को केवल 'अहिंसा परमो धर्मः' के कारण क्षमा करते जाते हैं और स्वयं बेचारे केवल तृण खा कर ही अपना जीवन व्यतीत करने की चेष्टा करते रहते हैं।

इसी गहन वन में एक प्राकृतिक जलाशय के पास कुछ वृक्षों के घने झुरमुट के बीच में थोड़ी सी खुली जगह थी। उसी में दो तीन खेमें, रावटी आदि लगी हुई थीं और उसमें कुछ मनुष्य भी थे। यह शिकारियों का एक दल ज्ञात होता था। यह स्थान त्रिपुरी से उस घोर वन के बीच से हो कर जाते हुए संकीर्ण मार्ग के पास

ही था, जिसका उपयोग कभी कभी वीरों ही द्वारा किया जाता था। इससे यह भी मालूम होता था कि ये लोग उसी नगर से आए हुए हैं। इनमें एक प्रौढ़ पुरुष थे, जिनकी अवस्था पचास से ऊपर ही थी पर अभी उनकी शक्ति तथा उत्साह तनिक भी क्षीण नहीं हुआ था। यह उच्चकुलोद्भूत ज्ञात होते थे। इनके साथ एक युवा था, जिसकी अवस्था बीस वर्ष के लगभग थी और वह उक्त पुरुष के प्रतिबिंब से मालूम होते थे। इनके सुगठित शरीर में यौवन तथा सौंदर्य की आभा फूट रही थी। इनके मुख पर बुद्धिमत्ता के साथ साथ अहंता भी पूर्णतः वर्तमान थी। इन लोगों के साथ एक युवती भी थी, जिसका वय पंद्रह सोलह वर्ष से अधिक नहीं था। इसका सौंदर्य अनिर्वचनीय तथा निर्दोष था। सौंदर्य की उस प्रतिमूर्ति के, जो कुशलतम मूर्तिकार की सर्वश्रेष्ठ कृति से भी बढ़कर थी, रूप, वर्ण, लावण्य सभी एक से एक बढ़ कर थे। उसके वर्ण के आगे चैत्र के गुलाब का रंग भी फीका पड़ जाता था। उसके एक एक अंग पर बिहारी की सारी सतसई निछावर हो जाती थी। ऐसे सौंदर्य का गद्यलेखक क्या वर्णन कर सकता है।

इन तीनों का संबंध पिता, पुत्र तथा पुत्री का था और इनके साथ प्रायः दस बारह मनुष्य थे, जिनमें कुछ तो सैनिक थे और कुछ साधारण सेवक थे। ये लोग अहेर खेलने ही के लिये इस वन में आए थे और दो तीन दिन से यहाँ टिके हुए थे। जिस दिन की घटना लिखी जा रही है, उस दिन भी ये लोग प्रातःकाल होते ही सब तरह से सज्जित हो कर कुछ ही देर में घोड़ों पर सवार होकर अहेर को निकले। ये नौ सवार थे, जिनमें एक वही वीर कन्यका थी, जो तीर, धनुष, खड्ग आदि शस्त्रों को धारण किए हुए थी। यह जिस प्रकार अश्व संचालन कर रही थी, उससे यह स्पष्ट ज्ञात

होता था कि वह इस कला में दक्ष है। यद्यपि उसके बाल खुले हुए थे पर इस प्रकार पीछे की ओर बँधे हुए थे कि वे किसी प्रकार मुख पर नहीं आ सकते थे। सब के आगे वही वीर पुरुष, उसके बाद उसकी दोनों संतान तथा उन सब के पीछे छः सवार दो दो करके उस वन में घुसे।

ये लोग कुछ ही दूर आगे बढ़े थे कि एक शिकार एकाएक आप ही सामने आ गया पर इन लोगों को देखते ही गहनतर जंगल की ओर भागा। वह इस प्रकार एकाएक आ गया था कि उसके सत्कार के लिये इनमें से कोई भी तैयार न था पर उसे भागते देख कर इन लोगों ने उसके पीछे घोड़े फेंके और धनुष पर तीर रखे हुए उसे छोड़ने का अवसर देखते रहे। प्राणरक्षा के लिये प्राण छोड़ कर भागने वाले ने इन लोगों को उसका प्राण लेने के लिये शीघ्र अवसर नहीं दिया पर दैवात् एक खुलती जगह पड़ जाने से कई तीर उसमें भिद गए और वह लड़खड़ाता हुआ कुछ दूर चल कर गिर गया।

अब सब कोई उस अहेर के पास जा पहुँचे। वह जीव निर्जीव हो रहा था और तीन तीर उसके शरीर पर मौजूद थे। दो दो ओर से उसकी पीठ में बहुत दूर तक धँस गए थे और एक उसके ठीक शिर के पीछे बीचोबीच लगा हुआ था। जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि शिर वाला युवती का और अन्य दो पिता पुत्र के थे। ये लोग इसी को देखते हुए उस युवती के सच्चे निशाने की प्रशंसा कर रहे थे कि इसी बीच बहुत से घोड़ों के टाप का शब्द साफ सुनाई देने लगा। ये लोग झट अपने घोड़ों पर सवार हो कर उस ओर देखने लगे, जिधर से यह शब्द आ रहा था।

थोड़ी ही देर में लगभग पचीस सवार बड़े वेग से आ पहुँचे और उन सबने इन लोगों को घेर लिया। उन सबका सरदार एक

लंबा चौड़ा कठोर स्वरूप वाला वीर था जो हर प्रकार के युद्धीय शस्त्र आदि से सुसज्जित था। देखने से ही ज्ञात होता था कि वह बहुत ही बलवान तथा निर्भीक चित्त का मनुष्य है, और यह भी स्पष्ट था कि वे सब डाकू हैं। उसके सभी साथी लंबे चौड़े कद्दावर सैनिक थे और सभी शस्त्रादि से लैस थे। ऐसा ज्ञात होता था कि उस सरदार ने प्रायः अपने सभी अनुधावकों को चुन चुन कर भर्ती किया था और उन्हें युद्धीय शिक्षा भली प्रकार दे कर अपने इस डाकूपन के कार्य के योग्य बना रखा था। इस प्रकार घिर जाने पर उक्त प्रौढ़ पुरुष ने कुछ आगे बढ़ कर उस डाकू सरदार से बड़ी गंभीरता से पूछा कि 'तुम लोग कौन हो और इस प्रकार हम लोगों को घेर कर किस लिये खड़े हो ?'

उसने हँसी के साथ उत्तर दिया—'श्रीमान से केवल यही प्रार्थना करने की इच्छा से ठहरा हूँ कि जहाँ मैं कहूँ वहाँ आप सब लोग सीधे से चुपचाप चले चलें।'

'नहीं तो' युवक ने तीव्रता के साथ कहा।

'नहीं तो हाथ पैर बाँध कर ले चलूँगा।'

(तलवार खींच कर) 'दुष्ट डाकू, तेरा इतना साहस।'

(ठठा कर) 'तुझसे बच्चे को यह खिलौना किसने दे दिया है, देख कहीं अपना हाथ पैर न काट लेना।' इस तिरस्कारपूर्ण व्यंग्य-बाण को युवक न सह सके और उस पर आक्रमण करने को तैयार हुए पर प्रौढ़ पुरुष उसको रोकते हुए बोले—'रामेंद्र, क्यों जल्दी करते हो। (डाकू के प्रति) देखो हम लोग क्षत्रिय हैं, बिना युद्ध के किसी को आत्मसमर्पण नहीं करते। यदि सम्मुख युद्ध की इच्छा हो तो सामने आओ।'

डाकू सरदार ने यह सुनते ही ललकार कर अपने साथियों से कहा कि 'देखो इन तीनों को हानि पहुँचाए बिना पकड़ लो।' इतना

कह कर स्वयं वह उक्त प्रौढ़ पुरुष से द्वंद्व युद्ध करने लगा। दोनों ही पक्ष वाले तैयार थे, घमासान युद्ध होने लगा पर एक ओर संख्या बहुत अधिक थी इससे थोड़ी ही देर में वे छहो सवार हताहत होकर भूमिशायी हो गए। रामेंद्र ने कई डाकुओं को घायल किया पर अंत में उसकी तलवार टूट कर गिर गई और वह कैद कर लिया गया। युवती ने भी सामने के दो डाकुओं को आहत कर गिरा दिया पर उसका घोड़ा ठोकर खाकर गिर गया, जिससे वह भी पकड़ ली गई। प्रौढ़ पुरुष तथा डाकू सरदार का द्वंद्व युद्ध चल रहा था, इसलिए सब डाकू एक ओर होकर उसे देखने लगे। दोनों ही शस्त्र विद्या में कुशल थे पर एक में दूसरे से अवस्था की विभिन्नता के कारण फुर्ती अधिक थी। देखते ही देखते उसकी तलवार का एक ऐसा सच्चा हाथ प्रतिद्वंद्वी के घोड़े पर पड़ा कि वह तत्काल अपने सवार को लिए दिए पृथ्वी पर गिर पड़ा। डाकुराज तुरंत अपने घोड़े पर से कूद पड़ा और अपने प्रतिद्वंद्वी को साथियों की सहायता से घोड़े के नीचे से निकाल कर कैद कर लिया।

अब ये तीनों निश्शस्त्र किए जा कर अपने घोड़ों पर सवार कराए गए और उन्हें अपने दो दो सवारों के बीच में रख कर, जिनके हाथों में इनके घोड़ों के बागडोरें थीं, डाकुओं ने उस ओर प्रस्थान किया, जिधर से वे आए थे। उन्हें अभी गए कुछ ही देर हुई थी कि अहेर खेलने वालों के सेवकगण इस युद्ध के कोलाहल को सुन कर पता लगाते हुए वहाँ आ पहुँचे और यहाँ की हालत देख कर बेचारे सब जड़ से हो गए। उन सवारों में चार तो समाप्त हो गए थे पर दो विशेष घायल नहीं हुए थे। उनकी चोट इस प्रकार की थी कि उससे वे कुछ समय के लिये बेहोश हो गए थे। क्रमशः उपचार करने से वे होश में आ गए और अभी वे अपना हाल कह रहे थे कि पुनः घोड़ों की टाप सुनाई पड़ने लगी। ये

सवार जंगल ही से दूसरी ओर से आते हुए ज्ञात हो रहे थे और थोड़ी ही देर में एक मृग भागता हुआ इन लोगों के पास से निकल गया। उसका पीछा करते हुए तीन सवार भी इन लोगों के पास भी पहुँचे और यहाँ का दृश्य देख कर शिकार का पीछा छोड़ कर सबने अपने घोड़े रोक दिए।

इन तीनों में एक सरदार तथा दो उसके साथी थे। सरदार कैशोरावस्था लाँघ कर यौवन में पदार्पण कर रहा था। उसका गौर वर्ण, सुगठित शरीर तथा दीप्तिमान मुख उसके किसी उच्च वंश के होने का पता दे रहे थे। वह शस्त्रों से पूरी तरह सुसज्जित था और युवा होते भी विचारशील ज्ञात होता था। उसके दोनों साथी उससे कुछ अधिक वयस्क थे। वे भी शस्त्रों से सुसज्जित तथा युद्धकुशल मालूम होते थे। यद्यपि वे उतने उच्च वंश के ज्ञात नहीं होते थे पर तब भी वीर कुल के क्षत्रिय थे। रुकते ही युवक ने शीघ्रता से इन लोगों का वृत्तांत पूछना आरंभ किया और कुछ ही देर में कुल वृत्त से अवगत हो कर अपने साथियों से सम्मति लेने लगा कि ऐसी अवस्था में क्या करना उचित है। उसने कहा कि, 'अवश्य ही वे साधारण डाकू नहीं हैं। वे केवल लूटने की दृष्टि से नहीं आए थे, नहीं तो उनके सामान आदि छोड़ कर केवल उन्हीं तीन व्यक्तियों को पकड़ कर वे चले न जाते। अवश्य ही इसमें कुछ भेद है। हम तीन हैं तो क्या, उन पच्चीस डाकुओं को परास्त कर उनको छुड़ा सकते हैं। पर कहीं युद्ध में असफल होते देख कर वे उन तीनों को मार डालें तो भी बहुत अनुचित होगा। रक्षक बनने जा कर भक्षक न बन बैठें, अतः मुझे यही उचित समझ पड़ता है कि उनका पीछा कर पता अवश्य लगाना चाहिए। अवसर मिलने पर छुड़ाने का प्रबंध किया जायगा।'

एक ने कहा कि 'यह रास्ता आगे जा कर एक झील के कारण

घूम गया है और बहुत फेर दे कर पुनः सीधा हो कर उस घोर जंगल की ओर जाता है, जहाँ डाकुओं की कई गढ़ियाँ हैं। यदि हम लोग इधर के जंगल में से होकर चलें तो कम से कम एक घंटे का समय बचता है और स्यात् हम लोग उनके पहले ही उस मार्ग तक पहुँच जाँय।'

'तो यही मार्ग ठीक है। (आहत सैनिकों से) तुम लोगों का जिस जगह डेरा है वहीं जा कर ठहरो और इन सेवकों में से किसी एक या दो को नगर में भेज कर समाचार कहला दो। यदि किसी प्रकार हम लोग उनमें से किसी एक को या सबको छुड़ा सके तो सीधे वहीं ले कर आवेंगे। उसके अनंतर जो उचित समझा जायगा, किया जायगा।'

इतना कहकर वे तीनों सवार जिधर से आए थे उसी ओर शीघ्रता से चल दिए। ये जंगल ही जंगल वेग से आगे बढ़े और प्रायः इसी प्रकार एक घंटे तक बिना रुके बढ़ते चले गए। अंत में वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ दूसरा रास्ता घूमता हुआ आ कर एकदम मुड़ कर उस वन के बीच से होता आगे को चला गया था। यहाँ आ कर वे तीनों रुके और आपस में सलाह करने लगे। युवक ने कहा कि 'अवश्य ही उन सब ने कैदियों को बीच में रखा होगा, वे घोड़े पर सवार होंगे ही और जहाँ तक समझता हूँ उनके हाथ पैर भी न बाँधे गए होंगे। छुड़ाना तो सभी को उचित है पर उस युवती की रक्षा करना हमारा धर्म है, विशेषतः इसलिये कि वह डाकुओं के हाथ में है। डाकू प्रायः पचीस हैं और उन्हें सम्मुख ललकार कर रोकना संभव नहीं है, इसलिये मेरी राय में यह आता है कि हम लोग मार्ग के उस ओर मोड़ के पास किसी झुरमुट में छिप कर खड़े हो जायँ और जिस समय वे कैदी ठीक मोड़ पर पहुँचें, उसी समय धावा कर उन्हें लिए हुए इसी जंगल में चले

आवें। वे पीछा करेंगेही पर तब बन में इधर उधर निकल जाने में विशेष सुविधा होगी।'

'पर क्यों न उसी झुरमुट में से छिपे हुए हम उन कैदियों के आगे पीछे के कम से कम तीन या छः डाकुओं को तीरों से मार गिराएँ और तब धावा करें।'

'ठीक है, पर छिपे हुए उन्हें मारने में कायरता की गंध आती है, इससे क्यों न उनके घोड़ों को ही मारा जाय। काम वही होगा, पीछा करनेवालों की कमी हो जायगी।'

'बहुत ठीक, पर अब जल्दी करना चाहिए। दूर से आता हुआ टापों का धीमा शब्द सुनाई पड़ रहा है।'

तीनों सवार तुरंत ही दूसरी ओर चले गए और पास ही एक गुंजान वृक्ष समूह देख कर जा छिपे। साथ ही तीनों ने धनुष पर तीर चढ़ा लिए और अपने अपने घोड़ों को थपकिया कर शांत रखने का भी प्रयास करते रहे। कुछ ही देर में घुड़सवार आते हुए दिखलाई दिए। लंबी कई घंटों की दौड़ के कारण उनके सभी घोड़े थके हुए थे और वे धीमी चाल से निश्चिंत चले आ रहे थे। वे उसी चाल से मोड़ पर पहुँचे और डाकुओं का सरदार तथा दस घुड़सवार मोड़ घूमे ही थे कि एकाएक तीन तीर उन तीन सवारों के घोड़ों की गर्दन में, जो तीनों कैदियों के बगल में चल रहे थे, इतने वेग से आ कर लगीं कि आर पार हो गईं और वे घोड़े उन सवारों को लिए हुए अलफ होते और पीछे हटते हुए अन्य सवारों के बीच में जा गिरे। अभी यह गड़बड़ मच ही रहा था कि अन्य तीन तीरों ने और भी तीन घोड़ों को घायल कर दिया, जो अपने सवारों के साथ उसी गड़बड़ी में दूसरे घुड़सवारों को धक्के देते तथा गिराते इधर उधर जंगल में भागने लगे। इसी बीच छिपे हुए तीनों सवार बड़े वेग से उस झुंड पर आ टूटे और उन तीन कैदियों के घोड़ों की

बागडोरों को फुर्ती से पकड़ कर उसी ओर जंगल में ले भगे, जिधर से वे आए थे। जिन दो एक सवारों ने उन्हें रोकने की चेष्टा की वे घायल हो कर या टकरा कर इधर उधर जा गिरे। यह कार्य इतनी फुर्ती तथा औचक में हुआ था कि उन सब को सँभलते तथा समझते कई मिनट लग गए। सरदार ने जो अब लौट पड़ा था और जिसने स्थिति को एक ही दृष्टि में समझ लिया था, तुरंत पंद्रह सवारों के साथ भागनेवालों का पीछा किया और बाकी को वहीं घायलों की देख रेख को छोड़ गया। यद्यपि उसके घोड़े बिलकुल थक गए थे पर उसने यथाशक्ति उन्हें दौड़ाने की कोशिश की।

इधर ये लोग वेग से घोड़े भगाते हुए शीघ्र ही दृष्टि से ओझल हो गए। कुछ दूर जाने पर उन लोगों को पीछा करनेवालों का आभास मिलने लगा। कैदियों के घोड़े अधिक थके हुए थे इससे उनके बचानेवालों को उनका साथ देना पड़ रहा था। इसी बीच उस युवक ने उन प्रौढ़ पुरुष तथा रामेंद्र को निःशस्त्र देख कर अपने साथियों के भाले दिलवा दिए और उनसे घोड़ों को यथाशक्ति तेज करने के लिये प्रार्थना भी की। उस युवती के पास भी शस्त्र नहीं था पर वह युवक क्या जानता था कि वह भी शस्त्रविद्या में निपुण है। अंत में उस युवती से नहीं रहा गया और उसने अपने पिता से शस्त्र के लिए कहा। युवक ने सुनते ही उससे कहा कि 'मेरे पास ये तीन शस्त्र हैं, आपकी जो इच्छा हो लीजिए। क्षमा कीजिएगा, जानता नहीं था, नहीं तो आपको कहने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता।'

युवती ने कुछ सकुचाते हुए कहा कि 'धनुष दे दीजिए।'

युवक ने तुरंत धनुष और तूणीर उसे दे दिया और उसने भी उन्हें यथास्थान लगा लिया। यह सब कार्य घोड़े दौड़ाते हुए हुए थे पर शीघ्र ही पीछा करनेवाले अपने घोड़ों को पीटते हुए दौड़ाते पास आते दिखलाई दिए। सभी ने एक दृष्टि फेर कर देख लिया कि

वे अब बहुत दूर नहीं हैं और गिनती में पहले से बहुत कम हैं। इन लोगों ने भी अपने घोड़ों को और तेज किया पर वे बेचारे थक गए थे और उनके सवार जल्लाद भी नहीं थे कि उन्हें पीट पीट कर भगाते। कुछ ही देर में डाकू सवार प्रायः इन लोगों के पास आ पहुंचे। युवक ने उस प्रौढ़ व्यक्ति से कहा कि 'आप तीनों सीधे उसी स्थान पर जायँ, जहाँ आपके खेमे हैं और हम लोग इन सब को तब तक यहीं रोके रखने का पूरा प्रयत्न करेंगे, जब तक आप लोग वहाँ न पहुँच जायँगे। वहाँ भी आप ठहरें नहीं और तुरंत ताजे घोड़े ले कर नगर की ओर चल दें। विश्वास रखें कि ये शीघ्र आपका पीछा न कर सकेंगे।'

'नहीं ऐसा नहीं हो सकता, हम आपको छोड़ कर नहीं जा सकते।'

'क्षमा कीजिएगा, मैं समझता हूं कि आप विशेष कारणवश पकड़े गए थे और आप को ऐसे समय अपने को बचाना ही श्रेयस्कर है। बचने पर आप सब की रक्षा कर सकेंगे।'

'हाँ पिताजी, इनकी सम्मति उचित है। आपके स्थान पर मैं यहाँ हूं। आप इरा को ले कर जायं, यही उत्तम है।'

इसी बीच उस युवती ने घोड़ा दौड़ाते हुए बाग छोड़ कर एक तीर धनुष पर चढ़ाया और फुर्ती से घूमते हुए डाकुओं के एक घोड़े पर छोड़ दिया, जो उसके लगते ही लड़खड़ा कर ऐसा गिरा कि दो तीन सवार उसकी ठोकर खा कर भहरा पड़े और बेकाम से हो गए। डाकुओं का दल कुछ रुक सा गया पर सरदार की ललकार पर बचे हुए कतरा कर फिर आगे बढ़े। इधर भी युवक तथा उसके साथी और रामेंद्र घूम कर युद्ध के लिये तैयार हो गए। रामेंद्र ने जल्दी में यह ध्यान न रखकर कि उसके पास केवल एक मात्र शस्त्र वही भाला है, बड़े वेग से उस भाले को आगे आते

हुए डाकू पर फेंक दिया, जो उसकी छाती पर लगे हुए कवच पर टकरा कर झन्नाता हुआ पृथ्वी पर गिर गया और इसके अनंतर दोनों के घोड़े भी आपस में इस वेग से टकराए कि दोनों ही सवारों को लिए दिए पृथ्वी पर जा पड़े। डाकू और रामेंद्र किसी प्रकार अपने को घोड़ों से अलग कर एक दूसरे से द्वंद्व युद्ध में गुथ गए पर डाकू अधिक बलिष्ठ तथा सशस्त्र था। इसलिए उसने शीघ्र ही इन्हें पराभूत कर दिया।

उधर ये तीनों डाकुओं से घोर युद्ध करते हुए उन्हें रोकने लगे। डाकुराज ने बहुत प्रयत्न किया कि कुछ सवारों को आगे भेज दे या स्वयं किसी प्रकार आगे निकल जाय पर वह दोनों कार्य में विफल रहा। क्रोध से आग बबूला होकर वह कुल सवारों को उत्तेजित करता हुआ इन तीनों पर आक्रमण पर आक्रमण कर रहा था, पर वे बड़ी शांति से उनके चोटों को बचाते हुए उन सब को आगे बढ़ने से रोक रहे थे। मैदान काफी न था कि वे घेर कर युद्ध करें इसलिये धूर्त डाकुराज ने एक चाल किया कि वह पीछे हटने लगा। कुछ ही पीछे अच्छा काफी मैदान था। ये तीनों युवक समझे कि डाकूगण दब रहे हैं, इससे उन्होंने बढ़ बढ़ कर हाथ मारना आरंभ किया। शीघ्र ही वे मैदान में पहुँच गए और डाकुओं द्वारा घेर लिए गए। अब इन तीनों ने अपनी भूल समझी पर अब क्या हो सकता था। ये बड़ी दृढ़ता से जम कर लड़ने लगे पर डाकुओं की संख्या अधिक थी। युवक के दोनों साथी घायल होकर पकड़े गए और उसका डाकुराज से द्वंद्व युद्ध होने लगा। सभी अलग होकर उस युद्ध को देखने लगे। दोनों ही सिद्धहस्त कुशल सैनिक थे पर एक ओर डाकुराज क्रोध से उन्मत्त हो रहा था और इधर युवक बड़े धैर्य तथा शांति से लड़ रहा था। इसी युवक के कारण डाकुराज के हाथ में आए शिकार निकल गए थे तथा उसके कई साथी

हताहत हो चुके थे, इससे वह आवेश में बड़े वेग से इस पर चोट पर चोट कर रहा था पर युवक उन सबको बचाता हुआ अपना अवसर देख रहा था। डाकुराज थोड़ी ही देर में थक गया और उसके आक्रमणों का वेग समाप्त हो चला पर युवक अपने यौवन तथा धैर्य के साथ केवल अपनी रक्षा करते रहने के कारण शिथिल नहीं हुआ था, इसी लिये अवसर मिलते ही उसने अपनी सारी शारीरिक शक्ति को काम में लाकर और अपने घोड़े को पूरे वेग से उसके घोड़े से टकरा कर उल्टे खड्ग से ऐसा सच्चा हाथ अपने प्रतिद्वंद्वी पर चलाया कि वह घोड़े सहित उसके झटके, टक्कर तथा चोट से गिर कर पृथ्वी सूँघता हुआ बेहोश हो गया। अन्य डाकू-गण इस पर आक्रमण करने का जब तक विचार ही करें तब तक वह तीर सा घोड़ा उड़ा कर जंगल में यह जा वह जा आँखों से ओझल हो गया।

डाकुराज सँभाले गए, होश में आए तथा युवक के निकल जाने का समाचार सुन कर कुछ देर तक क्रोध से हाथ मलते रहे पर उसके सभी घोड़े बेतरह थक गए थे, इससे निरुपाय होकर उसने तीनों कैदी लेकर गढ़ी पर लौट चलने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार यह काफला अपने आहत साथियों तथा कैदियों को लेकर जिधर से आया था, उसी ओर चल दिया।

द्वितीय परिच्छेद

युवक घोड़ा भगाता हुआ बहुत दूर जंगल में निकल गया और जब उसने समझ लिया कि उसका पीछा नहीं किया जा रहा है तब वह जंगल में भटकता और खोजता हुआ बहुत देर में उस स्थान पर पहुँचा जहाँ आहत सैनिकों से पहिले पहिल उसकी भेंट हुई थी। यहाँ उसे कोई न मिला तब वह खोजता हुआ उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ उन सब का डेरा था और जिसका पता उसने पूछ रखा था। यहाँ भी कोई नहीं था पर दूर पर कुछ लोगों के जाने की आहट मिली, जिससे वह उसी ओर रवाना हुआ। कुछ दूर जाने पर उसे खेमा वगैरह सामान लादे हुए बहुत से बोझ ढोने वाले तथा दो तीन सवार दिखलाई दिए, जिनके पास वह शीघ्र ही पहुँच गया। उन सब ने इस युवक को पहिचान लिया और उसे अकेले देख कर आश्चर्य तथा भय से इससे वृत्तांत पूछने लगे। युद्ध का फल बतला कर युवक ने उनसे उस प्रौढ़ पुरुष तथा युवती के बारे में पूछा। तब यह ज्ञात हुआ कि पड़ाव पर पहुँचते ही इन लोगों को खेमे आदि उखाड़ कर तथा सामान लेकर और घायल आदमियों को घोड़ों पर आहिस्ते से चढ़ा कर धीरे धीरे आने की आज्ञा दे वे ताजे घोड़ों पर सवार हो नगर की ओर चले गए हैं। स्यात् वे अब तक गृह पर पहुँच भी गए होंगे। युवक यह समाचार सुन कर साथ ही साथ चलता हुआ कुछ सोच-बिचार रहा था। विचार-संघर्ष यह था कि उनके गृह तक चला जाय या नहीं। पर अंत में यही उसने निश्चय किया कि रामेंद्र का वृत्तांत बिना दिए चले जाना अनुचित होगा और इतना विचार इस अति आवश्यक कार्य के लिये वह

स्यात् न करता पर एक कारण और था, जिसने यह संघर्ष उत्पन्न कर दिया था। उसने इरा को जब से देखा था, उसके कैदी रूप में, युद्ध के लिये सन्नद्ध चपल रूप में और धनुष लेते समय उसके स्त्रियोचित लज्जालु रूप में देखा था, तभी से प्रेम नाम का छोटा शब्द उसके हृदय में गुंजित हो रहा था। वह सोचता था कि इस समाचार को आवश्यक समझ कर कहने के लिये वह जा रहा है या केवल उस सुंदरी युवती को पुनः देखने की लालसा में वह ऐसा समझ रहा है। अंत में दोनों ही को स्यात् उचित समझ कर उसने उन तक पहुँचना आवश्यक समझा और उन सवारों से ठीक पता ले कर उसने घोड़े को बढ़ाया।

तीसरा पहर बीत गया था, सूर्य भगवान यथाशक्ति तप चुके थे और क्रमशः अपना दोर्दंड प्रताप गंवाते हुए मन मारे नीचे गिरते जा रहे थे। ठीक इसी प्रकार मन मारे यह युवक भी वन्य मार्ग पर अपने घोड़े को कुछ तेजी से बढ़ाए हुए चला जा रहा था। प्रायः संध्या होते होते वह नगर के निकट पहुंचा और पता लगाता हुआ उस उद्यान के पास पहुंचा जिसमें वह प्रौढ़ पुरुष रहते थे। वह सीधा फाटक पर पहुँचा और वहाँ उपस्थित संतरियों से अपने वहाँ पहुँचने का समाचार भीतर कहला भेजा। वह स्वयं घोड़े पर से उतर पड़ा और उसे टहलाता हुआ स्वयं भी टहलने लगा। दोनों ही एक दम थकावट से चूर्ण हो रहे थे। वह अपने कार्य में सफल भी न हो सका था और रामेंद्र तथा अपने दोनों साथियों को डाकुओं के हाथ में छोड़ आया था। इन कारणों से थकावट ने और भी धर दबाया था। थोड़ी ही देर में उसकी बुलाहट हुई और घोड़े को वहीं सौंप कर वह उद्यान के भीतर गया। उद्यान बहुत बड़ा और सुंदर था। क्यारियाँ अनेक प्रकार की, कहीं कमलाकार, कहीं अष्टकोण, कहीं किसी अन्य प्रकार की

थीं। दूर दूर पर बड़े बड़े वृक्ष थे, जिनके बीच बीच में छोटे छोटे पुष्पों के पौधे लगे हुए थे, जिससे उस उद्यान की शोभा बहुत बढ़ गई थी। इस उद्यान के बीचोबीच में एक छोटा सा तालाब था, जिसके किनारे पर आगे चबूतरा छोड़ कर एक महल बना हुआ था। वह सेवक युवक को उसी चबूतरे पर लिवा गया, जहाँ बहुत से कुर्सीनुमा आसन रखे हुए थे और बीच में काले पत्थर की एक चौकी पड़ी थी, जिस पर पुष्पों के कुछ गमले इस प्रकार रखे हुए थे, जो सब मिल कर दूर से एक बहुत बड़े गुच्छे के समान मालूम हो रहे थे। गर्मी का दिन था और संध्या हो चुकी थी तथा चाँदनी खिल उठी थी, इसलिये बाहर अच्छी ठंढक थी, जो सुगंधित जल के छिड़काव से और भी बढ़ गई थी। सेवक युवक को वहीं बैठा कर सूचना देने भीतर गया। युवक के इस प्रकार से आसीन होने तथा युद्ध और दौड़ के कारण अत्यधिक थक जाने से थोड़ी ही देर में निद्रा देवी ने उसे हलके वायु द्वारा थपथपा कर सुला दिया। वह एक दम ऐसा सो गया कि उसे यह ज्ञात न हो सका कि कब वह प्रौढ़ पुरुष उसके पास आया और उसे सोया हुआ पा कर तथा पहिचान कर एक सेवक को इस आज्ञा के साथ वहीं बैठा कर कि इनके जागने पर तुरंत उसे सूचना मिले, कब वह लौट गया।

जब वह वहाँ से लौट कर अपने कमरे में पहुँचे तो वहाँ इरावती बैठी हुई थी। इन्होंने जाते ही कहा कि 'वही युवक है पर उसके साथ रामेंद्र तथा उसके दोनों साथी नहीं हैं। (भर्राई हुई आवाज से) ज्ञात होता है कि रामेंद्र डाकुओं के हाथ पड़ गया है, नहीं तो अवश्य साथ आता। यह युवक यही संदेश ले कर आया है।'

'उसने कुछ बतलाया नहीं, पिताजी।'

'नहीं वह बेतरह थका हुआ था, इसी लिए बैठते ही वह सो गया। जगाना उचित न समझ कर मैं लौट आया।'

'नहीं पिताजी, यह ठीक नहीं ज्ञात होता। वह अवश्य भूखे होंगे और इस प्रकार न मालूम कितनी देर तक सोते रहें। हम लोग भी थके हुए हैं और निद्रा सिर पर सवार है। कहीं हम लोग भी बैठे बैठे सो गए या इसी आशंका में जागते रहे तो दोनों ही अवस्था में सभी को कष्ट होगा। इससे जगा देना ही उचित है। भैया का भी ठीक पता मिल जायगा।'

'इस प्रकार सोते को एकाएक जगा देना ठीक नहीं है। युवक भी उच्चकुलोद्भूत ज्ञात होता है। साहस तथा शस्त्र-चालन की कुशलता, सुगठित शरीर, गौर वर्ण, सहज सुंदर शोभा सभी इसके परिचायक हैं। किंतु बहुत देर तक इस प्रकार भूखे सोते रहने देना अवश्य ठीक नहीं है।'

'आप आशंका न करें, मैं शीघ्र ही उन्हें जगा लाती हूँ, केवल आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में थी।'

बालसुलभ चपलता के साथ इरा उस कमरे से निकल कर अपने कमरे में गई और उसने एक वीणा वहाँ से उठा ली तथा बाहर उसी चबूतरे पर चली आई। सेवक को तो विदा कर दिया और एक दूसरे आसन पर बैठ कर उसने वीणा छेड़ दिया। क्रमशः उसने उससे सुर मिला कर आलाप भी आरंभ कर दिया और धीरे धीरे वह तीव्र होता गया। थोड़ी देर तक उस युवक के कानों में ये मीठे शब्द घुसते रहे और तब उसमें चेतनता लाने लगे। क्रमशः वह जग उठा और उसी प्रकार पड़ा पड़ा वीणावादन-युक्त गान सुनता रहा। इधर गान समाप्त हुआ और उधर वह उठ खड़ा हुआ। उसने अपने सामने उसी युवती को वीणा अपनी गोद में रखे हुए आसीन पाया। उसे देखते ही वह प्रसन्न हो उठा

और उसके मुख पर आनंद फूट पड़ा। युवती भी यह देख रही थी पर वह चुपचाप बैठी रही। युवक ने पूछा, 'पिताजी कहाँ हैं, क्या वे आकर लौट तो नहीं गए? थकावट के कारण मैं निद्रा के वशीभूत हो गया था, क्षमा कीजिएगा।'

'किसके पिताजी?'

'जी, मेरा तात्पर्य आपके पिताजी ही से था। भूल से एक शब्द छूट गया।'

'मैं तो समझती हूँ, यह भूल न थी। आपका स्वभाव ही कुछ ऐसा है। आइए, पिताजी आपकी प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। वे भी थके हुए हैं, उन्हें भी निद्रालस्य घेरे हुए है।'

यह कह कर वह उठी और उन्हें लिवाकर उसी कमरे में पहुँची, जहाँ उसके पिता बैठे हुए थे। उन्होंने बड़े आदर से इसे अपने पास बैठाया और अपने लौट आने के बाद का वृत्तांत पूछा। युवक ने भी कुल बातें सिलसिलेवार कह डालीं और रामेंद्र को न बचा सकने में अपनी असमर्थता पर शोक भी प्रकट किया।

'इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं है। बिना किसी प्रकार के परिचय के दूसरों को कष्ट में पाकर उनकी इस प्रकार सहायता करना यह बड़े उच्चाशय पुरुष का काय है। तुमने हम लोगों को बचाने में इतने डाकू समूह को रोकने का भारी उत्तरदायित्व ले लिया था पर रामेंद्र स्वयं रुक कर भी तुम्हारी सहायता करने योग्य न रहा। उसे ऐसे अवसर पर भाले को फेंकना ही न था क्योंकि उसके बाद वह निशस्त्र तथा बेकार हो गया। तुम्हारे दो साथी भी फँस गए। इसमें तुम्हारा दोष कुछ भी नहीं है प्रत्युत् मेरा दुर्भाग्य है। अस्तु, अब तुम भोजन कर सोओ, कल सबेरे बातें होंगी। तुम बहुत थक गए हो। मैं तो नहीं जगाता था पर इरा तुम्हारे भूखे सोने के विरुद्ध थी इससे जगाना पड़ा।'

यह कह कर प्रौढ़ पुरुष ने द्वार तक बढ़ कर एक सेवक को पुकारा। इस बीच युवक तथा इरा दोनों के नेत्र मिले पर तुरंत नीचे हो गए। सेवक के आने पर युवक के योग्य आतिथ्य सत्कार तथा सोने का प्रबंध बतला कर दोनों को बिदा किया।

सुबह का सुहावना समय और सामने ही पुष्पोद्यान की हरित रम्यस्थली देख कर तुरंत जगे हुए युवक का ऐसा चित्त मचला कि वह पलंग से तुरंत कूद पड़ा और टहलने के लिये बाहर निकल पड़ा। वह इसी प्रकार टहलता हुआ महल के पीछे की ओर के उद्यान में जब पहुँचा तब एकाएक उसको इरावती भी वहाँ पुष्प-चयन करती तथा घूमती हुई दिखलाई पड़ी। उसकी भी दृष्टि साथ ही इस पर पड़ी और अब इसे हिचक कर पीछे हटने के विचार को पीछे हटाना पड़ा। उसके संकेत करने पर युवक उसके पास गया। इरा ने पूछा 'कहिए, कल युद्ध में आपको चोट तो कहीं नहीं लगी थी।'

'नहीं, शरीर भर में तो कहीं चोट देखने में नहीं आती और रात्रि भर सोने से थकावट भी मिट गई है पर नहीं मालूम होता कि हृदय में न जाने कैसी बेचैनी सी है। अभी तक बहुत कुछ सोचता रहा पर कुछ समझ नहीं पड़ता। कल आपको तो कुछ चोट नहीं आई थी ?'

'नहीं, पर कैसा.........हाँ, आपका धनुष तूणीर मेरे पास है और मेरी कुछ ऐसी इच्छा होती है कि उसे न लौटाऊँ, आगे आप जैसा कहें।'

'अरे, ऐसी तुच्छ वस्तु के लिये आप यह क्या पूछ रही हैं। पर अब तो वह बहुमूल्य क्या अमूल्य हो गई। उसके भाग्य थे कि वह आपको पसंद आई।

'आपको बातें बनाना भी आता है, यह मुझे अभी मालूम हुआ।'

'और मुझे क्या क्या आता है, यह भी बतला दें तो बड़ी कृपा होगी। खैर, जाने दीजिए, पर आपने कल जिस प्रकार मुझे जगाया था वह गुण आप ही में है और मुझे वह अतिप्रिय लगा था। क्या इस समय कुछ सुनाने की कृपा करेंगी ?'

'अच्छा राग आपने निकाला, भला यह भी कोई समय है।'

'ठीक है, एक साधारण अपरिचित की ऐसी प्रार्थना का यही उचित उत्तर है।'

'नहीं नहीं आप रंज हो गए। पिताजी भी जग गए होंगे और वे आपको शीघ्र ही बुलावेंगे, इसीलिए मैंने असमय बताया था। संध्या को यदि आज्ञा होगी तो वह अवश्य पूर्ण की.जायगी।'

'जी, जब मैं सोता रहूँगा।'

इरावती मुस्किरा पड़ी और पुष्पों को ले कर युवक के साथ महल की ओर लौट गई। कुछ देर बाद जब सभी एक कमरे में एकत्र हुए तब उक्त प्रौढ़ पुरुष ने बात आरंभ की।

'युवक, यद्यपि हम लोगों का परिचय केवल एक दिन का है पर उसका आरंभ तुमने ऐसी अवस्था तथा परिस्थिति में किया है कि वह वर्षों से भी नहीं गिना जा सकता। जिस साहस, शौर्य तथा औदार्य से डाकुओं के भारी दल पर आक्रमण कर अपरिचितों का केवल दो साथियों के साथ पक्ष ग्रहण किया था, उससे तुम्हारे हृदय की निश्चलता और उच्चाशयता प्रकट हो रही है और साथ ही शस्त्र-चालन-कौशल, युद्ध-विद्या का ज्ञान तथा विनय भी मैंने अपनी आँखों देखा है। इन कारणों से अब तक एक दूसरे से अपरिचित होते हुए भी अर्थात् एक दूसरे के विषय में कुछ न जानते हुए भी हम लोगों का परिचय बहुत पुराना मालूम हो रहा है। तुम्हारे गुणों ने हमारे हृदयस्थ स्नेह को उद्वेलित कर दिया है। अस्तु, पहिले हम अपना परिचय संक्षेप में दे कर तब तुमसे परिचय

माँगेंगे। हम लोग कालिंजराधिपति के सामंत हैं पर कुछ विशिष्ट कारणों से रुष्ट हो कर यहाँ आ बसे हैं और अब चौंदराज कर्णदेव के आश्रय में रहते हैं। रामेंद्र मेरा पुत्र है और यह मेरी पुत्री इरावती है। कई वर्ष से हम लोग यहाँ सुखपूर्वक रहते थे पर न जाने कल की घटना किस कारण हो गई यह अभी तक अस्पष्ट है। यहीं के लोगों का यह षड्यंत्र है या कालिंजर के हमारे किसी शत्रु का यह कार्य है, इनका अब तक ठीक पता नहीं है और न इस विषय पर सोचने समझने का मुझे अवसर ही मिला है। अब आप अपना परिचय दें तो अत्यंत प्रसन्न हूँगा।'

'अपने परिचय के बारे में मैं अधिक कुछ नहीं कह सकता। केवल इतना जानता हूँ कि मालवा की राजधानी धारा के प्रसिद्ध विद्वान राजज्योतिषी बटुकनाथजी का मैं पुत्र हूँ। यद्यपि पिताजी ब्राह्मण थे पर उन्होंने मुझे पठन-पाठन की साधारण शिक्षा दे कर मेरी युद्धीय शिक्षा पर विशेष ध्यान रखा। उनके कई मित्रों ने इस विषय में उनसे प्रश्न किए और यहाँ तक कहा कि यदि उचित शिक्षा दी जाय तो यह अच्छा विद्वान होगा पर पिताजी ने स्वीकार नहीं किया। उनका उत्तर यही रहता था 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रयुज्यते'। स्वतंत्र राज्य के प्रत्येक निवासी को युद्धकला का ज्ञान रखना चाहिए, जिससे अवसर पर वे स्वतंत्रता की रक्षा कर सकें। राज्य के युद्धीय कला के सभी विशेषज्ञ पिताजी के परिचित तथा मित्र थे और सभी ने बड़े स्नेह से मुझे अपना-अपना गुण सिखलाया है। बस, यही मेरा साधारण परिचय है। साथियों के साथ घूमता-फिरता इधर निकल आया था।'

'ठीक है, इतना ही परिचय इस समय मेरे लिये बहुत है और मैं उक्त पंडितजी को जानता भी हूँ। भोजराज की सभा में भी इनके समान विद्वान बहुत कम थे। अन्यत्र तो मिलने संभव ही

नहीं हैं। अच्छा, अब रामेंद्र के छुटकारे का विचार करना ही मुख्य कार्य हम दोनों के लिये है, क्योंकि तुम्हारे भी दो साथी उसीके साथ कैद हो गए हैं। देखो, यदि स्नेह के कारण तुम तुम करता हूँ तो रुष्ट न होना। यद्यपि तुम हमारे पूज्य ही हो पर युवक हो इसलिये ऐसा ही संबोधन करना मुझे उचित जान पड़ा।'

'अरे, आप यह क्या कह रहे हैं। इसी तुम में मुझे आपके जितने प्रेम का परिचय मिल रहा है, वह आप में कभी न मिलता। आप तो मुझे अभिशाप सा ज्ञात होता।'

'(प्रसन्नता से) ठीक है, अच्छा देखो हम लोगों के अहेर खेलने जाने का पता कुछ ही लोगों को मालूम था और वे डाकूगण इस प्रकार आए थे मानों हमी लोगों को ढूँढ़ रहे थे। उनका अधिकतर ध्येय हमी लोगों को पकड़ने का था, यह भी स्पष्ट है और वे हमें हूण जाति के ज्ञात होते थे। इसमें कुछ रहस्य अवश्य है, जिसका पता शीघ्र लगेगा। क्योंकि हम दो के बच जाने पर भी रामेंद्र उनके हाथ पड़ गया है। यदि केवल धन की इच्छा से ऐसा हुआ है, तब भी वे हमसे पुत्र के लिये काफी धन माँग सकते हैं।'

'धन के लोभ से यह काम हुआ नहीं ज्ञात होता, कारण यह कि उस दशा में वे आपके सामान, घोड़ों आदि को छोड़ न देते। आप ही लोगों को किसी कारण से वे अपने अधिकार में करने के लिये विशेष प्रयत्नशील थे और जब देख लिया कि अब वे कुछ नहीं कर सकते तभी पीछा छोड़ा। इस रहस्य का पता तथा भाई साहब का पता साथ ही लगेगा और इसके लिये मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा।'

'नहीं नहीं, इसके लिये तुम्हें इतनी शीघ्रता करना नहीं है और इसके सिवा दो तीन कुशल चरों को पता लगाने के लिए

नियत भी कर दिया है। कुछ सूत्र मिलने पर आगे का प्रबंध किया जायगा।'

'वे कब तक लौटेंगे ?'

'तुम्हारी उतावली का कारण समझ रहा हूँ और उचित भी है। मैंने कल ही यहाँ आते ही उन चरों को और साथ के एक सवार को जिसने प्रत्येक स्थल देखे थे, भेज दिया था। आज ही संध्या या कल सुबह तक अवश्य ही एक न एक कुछ पता ले कर यहाँ आवेगा, तब जो उचित समझा जायगा किया जायगा।'

'अच्छा, आपके पास कितने सैनिक होंगे। मेरा पूछने का तात्पर्य यह है कि इस घटना में रहस्य अवश्य है और इसमें किसी बड़े शत्रु का ही हाथ है। ऐसी अवस्था में डाकुओं पर आक्रमण करने के लिये, अपने स्थान की रक्षा करने के लिये तथा अन्य अनेक कार्यों के लिये अधिक सैनिकों की आवश्यकता पड़ेगी। इस कारण यदि सैनिक कम हों तो कुछ विश्वस्त सैनिक एकत्र करने चाहिएँ।'

'तुम्हारी सम्मति बहुत ठीक है। मेरे पास हर समय प्रायः तीन सौ सैनिक रहते हैं और ये वे हैं जो मेरे साथ देश से आए हैं। इनके सिवा दो सौ के लगभग यहाँ के सैनिक भी कुसमय पर भर्त्ती कर लिए जाते थे। जहाँ तक मैं सोचता और समझता हूँ, इस घटना का संबंध विशेषतः इसी राज्य के किसी महापुरुष से है और ऐसी अवस्था में यहाँ के सैनिकों पर कम विश्वास पड़ेगा। तुम क्या समझते हो ?'

'मेरा भी ऐसा ही विचार है और मैं समझता हूँ कि यदि खोज किया जायगा तो आपके देश के वीर सैनिक भी इस विशाल नगरी में बहुत मिल जायँगे। मेरी सम्मति में कम से कम पाँच सौ सैनिक इस समय तैयार रखने चाहिएँ।'

'ठीक है, इसका शीघ्र प्रबंध कर लेता हूँ। अच्छा अब संध्या पुनः इस विषय पर बातचीत होगी, यदि कोई घर लौट आया।'

इतना कह कर वह उठ कर चले गए। इरावती ने उनके जाते युवक से प्रश्न किया कि 'आपने अपना परिचय तो अवश्य या है पर अपना नाम नहीं बतलाया और आपके सिवा यहाँ ाई दूसरा यह बतला भी नहीं सकता।'

'यह प्रश्न नहीं उठा था और मैं स्वयं बतलाना भूल गया। मेरा ाम गोपाल है।'

'यह भी बतलाएँ तो बड़ी कृपा होगी कि आप उस वन में हाँ से आ पड़े? धारा और इस स्थान के बीच ही में वह वन प्रवश्य है पर तब भी काफी दूर है तथा बिना कारण इतनी लंबी ग्रात्रा नहीं हो सकती।'

'आपका कथन उचित है। मेरे माता-पिता का देहांत इधर ही हो गया और गृह पर जी नहीं लगता था इसलिये वहाँ का कुल प्रबंध कर दो साथियों के साथ यात्रा को निकल पड़ा। विचार था कि अन्य राज्यों में कुछ दिन रुक रुक कर वहाँ की स्थिति का निदर्शन करूँ। परंतु मेरा सौभाग्य था कि मार्ग में पहिले पहिल आप लोगों से भेंट हो गई।'

'सौभाग्य क्यों दुर्भाग्य कहिए कि भेंट होते ही आपको इतने कष्ट उठाने पड़े तथा अपने साथी भी खोने पड़े।'

'आप जो कहें, मैं तो वही सदा समझूँगा। एक बात मैं पूछूँ?'

'पूछिए।'

'आप युद्धीय कला में भी दक्ष हैं यह मैंने देखा है। स्त्री वर्ग में इस कला के प्रति प्रेम कम होता है। क्या आपने स्वयं इसे सीखने का प्रयास किया है या आपके पिताजी ने ऐसी शिक्षा प्राप्त करने को आपको बाध्य किया था।'

'(मुस्किराते हुए) दोनों ही का मेल है। भाई को सीखते देखकर मुझे भी इच्छा हुई और पिताजी ने भी उत्साह दिलाया। बस कुछ सीख सा लिया।'

'क्यों न कहिएगा ? पुरुषों में भी आप से कम ही मिलेंगे जो अश्व-चालन, तीर चलाने आदि में आपकी बराबरी कर सकें।'

'अब आप मेरी हँसी लेने लगे। मैं यह सब क्या जानूँ, पिता जी के स्नेह के कारण कुछ सीख लिया है। अच्छा चलिए, अब स्नान भोजन का समय हो रहा है।'

तृतीय परिच्छेद

त्रिपुरी नगर से पश्चिम प्रायः दो कोस पर एक तालाब था, उसके किनारे पर एक छोटा पर अत्यंत सुंदर मंदिर बना हुआ था। यह मंदिर एक दम प्रस्तर निर्मित था। इसकी विचित्रता यह थी कि कुल शिवालय गोल था, शिखर आदि सब कुछ। ऐसे गोलाकार सुरागार या शिवालय बहुत कम, प्रायः नहीं के समान, मिलते हैं पर ये तत्कालीन विशिष्ट संप्रदाय के बनवाए हुए थे, जो मत्तमयूर शैव मतावलंबी था। यह संप्रदाय तथा इसके माननेवाले अब नहीं रह गए हैं। इसके भीतर का शिवलिंग भी गोलाकार अर्घ्यासन में प्रतिष्ठापित था और उनके चारों ओर का घिरा स्थान भी गोलाकार था। छुटी हुई भूमि भी इन कारणों से गोलाकार हो रही थी, जहाँ से उपासकगण अर्चन पूजन करते थे।

इस मंदिर से कुछ हट कर एक विशाल मठ बना हुआ था, जिसका सिंहद्वार भी उसी के योग्य बहुत भारी था। इसके भीतर जाते ही विशाल आँगन पड़ता था और ठीक सामने एक लंबी दालान बारह स्तंभों पर स्थित थी, जिसके आगे पक्की फर्श संन्यासियों को एकत्र होकर बैठने के लिये बनी थी। इसकी दीवाल में एक द्वार था, जिससे भीतरी चौक में जाने का मार्ग था। इस चौक के चारो ओर दालानें थीं। तीन ओर की दालानों में प्रायः बारह द्वार भीतरी कमरों में जाने के लिये बने थे, जिनमें कुछ के ऊपर एक-एक या तीन-तीन मूर्तियाँ बनी थीं और कुछ में न थीं। प्रथम प्रकार के द्वार देवगृह या गुरुगृह के थे और द्वितीय प्रकार के सन्यासियों के निवासगृह के थे। मुख्य गुरुगृह के द्वार

के ऊपर जटा-जूट कोपीनधारी पुराने गुरु की मूर्ति भी बनी थी। मूर्तियाँ विशेषतः सरस्वती, लक्ष्मी, गणपति, सूर्य, रुद्र आदि की थीं। एक ओर एक बड़े कमरे में छोटे-छोटे कई समाधिगृह भी थे। इन सबके ऊपर भी कमरे थे पर उन तक जाने के मार्ग कहीं दिखलाई नहीं पड़ते थे।

जिस दिन की घटना का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके दूसरे दिन लगभग साढ़े सात बजे सुबह नगर से कुछ अश्वारोही-गण उसी मंदिर की ओर रवाना हुए। इनमें एक उच्चपदस्थ युवक था, जिसके आगे-आगे दो सवार जा रहे थे और दस बारह सवार उससे कुछ हट कर पीछे-पीछे जा रहे थे। इस युवक की अवस्था प्रायः पच्चीस वर्ष की होगी। इसका शरीर सुगठित तथा शक्ति संपन्न था और गौर वर्ण का तथा सुंदर भी था। उच्चवंशोत्पन्न होने से उसके मुख पर तेज फूटा पड़ रहा था। अश्वचालन में अत्यंत कुशल भी ज्ञात होता था और दो चार शस्त्र भी उसके बहुमूल्य वस्त्र पर शोभा पा रहे थे। इन सब पर विचार करने से वह किसी राजवंश का वीर ज्ञात हो रहा था। साथ के सवार सैनिक होते भी उसके निजी सेवक ज्ञात होते थे पर सभी रणदक्ष अवश्य थे। अस्तु, यह दल शीघ्रता से चलता हुआ उसी मंदिर के पास पहुँचा, जहाँ वे सब घोड़ों पर से उतर पड़े। युवक उस मंदिर में दर्शनार्थ गया, जहाँ के पुजारी आदि ने बड़े सम्मान से उसके दर्शन कर लेने पर माला-पुष्प आदि प्रसाद दिए। दर्शन कर लेने पर वह मठ की ओर अकेला ही रवाना हुआ और सवारों को वहीं छोड़ गया।

यह सिंहद्वार तथा आँगन को पार कर सामने की दालान से होता हुआ भीतरी आँगन में पहुँचा और दाहिनी ओर मुड़ कर वह उस कमरे में गया, जिसके द्वार के ऊपर जटाजूटधारी एक साधु

की मूर्ति बनी हुई थी। इसे मार्ग में किसी ने नहीं रोका प्रत्युत् रोकना तो दूर सभी सम्मान प्रदर्शन करते रहे। उस कमरे में मठ के प्रधान श्रीरुद्रशिव बैठे हुए थे, जो तत्कालीन मत्तमयूर संप्रदाय के प्रधान आचार्य थे। शिवजी गौर वर्ण के भव्य पुरुष थे और अवस्था भी प्रौढ़ हो चली थी। विद्या, आचार्यत्व तथा प्रभुत्व की प्रभा आप पर खूब खिल रही थी। रेशमी परिधानों से आच्छादित हो कर वह एक मूल्यवान आसन पर विराजमान थे। युवक ने गुरुजी के चरण छुए और संकेत पा कर सामने के आसन पर बैठ गया। शिवजी कुछ स्तोत्र पाठ कर रहे थे, जिसे समाप्त कर तथा पुस्तक को यथास्थान रख कर बोले।

'कुमार, अभी तक कुछ सूचना नहीं मिली पर शीघ्र ही कोई न कोई आता होगा। तुम्हारे आग्रह से हमने इस कार्य में हाथ डाल दिया है, इसलिये यह करना ही होगा पर न जाने क्यों कुछ अज्ञात सी शंका मन में उठ रही है। नहीं कह सकता कि कार्य हुआ या नहीं।'

'गुरुवर, आपके आशीर्वाद से सब कार्य ठीक-ठीक होगा। सूचना तो प्रभात ही को आ जानी चाहिए थी पर क्यों विलंब हुआ, यह नहीं कहा जा सकता।'

इसी समय एक युवा संन्यासी द्वार पर आ कर तथा शिर नवा कर वहीं रुक गया पर गुरुजी का संकेत पा कर वह भीतर चला आया। उसने कहा कि 'हूणगढ़ से एक चर आया है और सेवा में आने की आज्ञा माँगता है।' गुरुजी ने केवल इतना कहा कि 'लिवा लाओ।'

थोड़ी ही देर में एक विशालकाय पुरुष को साथ लिवा कर वही संन्यासी पुनः आया और उसे गुरुजी के सामने पहुँचा कर चुपचाप लौट गया। इस आगंतुक के मुख पर क्रूरता झलक रही

थी और वह अत्यंत बलिष्ट भी था। इसकी चिपटी नाक, चौड़ा मुख तथा पक्का रंग इसे हूण बतला रहे थे। इसने आते ही गुरुजी को प्रणाम तथा कुमार का अभिवादन किया और आज्ञा पाने पर एक ओर बैठ गया। गुरुजी बोले, 'क्यों, हुष्क क्या समाचार है?'

'श्रीमान दुर्गाधिपति ने श्रीगुरुवर के चरणों में प्रणाम कहलाया है और मुझे आज्ञा दी है कि मैं कल की कुल घटना का वृत्त आपकी सेवा में निवेदन करूँ क्योंकि मैं बराबर साथ ही था। अतः आज्ञा हो तो मैं निवेदन करूँ।'

'हाँ, हाँ, कुल वृत्त कह डालो पर संक्षेप में होते भी कोई बात छूटने न पावे।'

'कल हम लोग पच्चीस सवारों के साथ ठीक समय पर वन में पहुँच गए, जहाँ वारेंद्रनारायण अपने पुत्र तथा पुत्री के साथ अहेर खेलते हुए मिले और घेर लिए गए। काफी युद्ध हुआ और उनके दो तीन सैनिक मारे गए पर अंत में वे तीनों पकड़ लिए गए और उन्हें लेकर हम लोग गढ़ी की ओर चल दिए।'

कुमार बीच ही में बोल उठे 'तो वे सब कुशलपूर्वक गढ़ी में सुरक्षित पहुँच गए।'

'नहीं कुमार, ऐसा दैवकोप से नहीं हो सका।'

कुमार तथा गुरुजी दोनों एक साथ बोल उठे 'क्या हुआ, क्या हुआ?'

'हम लोग सुकर ताल के किनारे-किनारे जाती सड़क से जब उस मोड़ पर पहुँचे, जहाँ से सड़क घूम कर जंगल में जाती है, तभी एकाएक तीन तीर पेड़ों के झुरमुट से कैदियों के घोड़ों को सँभालनेवाले सवारों के घोड़ों को इतने वेग से लगे कि वे अलफ होकर अपने सवारों को लिए हुए गिर पड़े और पीछे के भी सवार ठोकरें तथा धक्के खा कर अस्त व्यस्त हो गए। कैदियों के आगे के

दल पर भी इसी प्रकार तीर लगने से गड़बड़ मच गया और जब तक हम लोग सँभलें तब तक तीन सवार उसी झुरमुट में से वेग से निकले और तीनों कैदियों को ले कर पुनः उसी सामनेवाले जंगल में भागे, जहाँ से वे पकड़ कर लाए जा रहे थे। दुर्गाधिपति ने पुनः उन लोगों का पीछा किया और कई कोस की दौड़ के बाद वे मिले। अब वे दो दल हो गए। वारेंद्रनारायण अपनी पुत्री के साथ बिना रुके आगे बढ़ गए और तीन नवागंतुक रक्षकगण तथा वारेंद्रनारायण के पुत्र ने हम लोगों का मार्ग रोक लिया। इसी समय कुमारी इरावती का फेंका तीर हमारे घोड़े की गर्दन में लगा, जो आर-पार हो गया और वह प्यारा घोड़ा गिर कर थोड़ी ही देर में दम तोड़ गया। मुझे विशेष चोट न आई थी इसलिये युद्ध देखने लगा। वारेंद्रनारायण के पुत्र तो शीघ्र ही पकड़ लिए गए पर वे तीन बड़े वीर थे। प्रायः आधे घंटे के युद्ध बाद दो और पकड़े गए तथा हमारे सरदार और उस युवक का जो तीनों का नेता ज्ञात होता था, द्वंद्व युद्ध होने लगा। वह युवक विजयी हुआ और सरदार के गिरते ही इतनी शीघ्रता तथा वेग से वह निकल गया कि कोई भी उसका पीछा न कर सका। हम लोगों के घोड़े इतने थक गए थे कि अंत में उन्हीं कैदियों को ले कर गढ़ी पर लौट गए। सरदार ने कहलाया है कि उन्हें अत्यंत शोक है कि इस अचानक आक्रमण से वे सफल हो कर भी असफल रह गए।'

कुमार तथा आचार्यजी यह समाचार सुन कर अत्यंत चिंता-मग्न हो गए और वे विचार में तल्लीन ही थे कि उस चर ने पुनः बोलना आरंभ किया। उसने कहा—

'सरदार ने निवेदन किया है कि यदि आज्ञा हो तो उद्यान ही से वारेंद्रनारायणसिंह तथा उनकी पुत्री को पकड़ लाने का प्रबंध किया जाय। यद्यपि यह कार्य अत्यंत कठिन है पर यदि आज्ञा

होगी तो उसे पूरा करने को वे अपना प्राण तक देने को तैयार रहेंगे।'

'नहीं, यह ठीक नहीं है। ऐसा करने में यदि किसी प्रकार महाराज के कानों तक भनक पहुँची तो बड़ी आफ़त होगी। जो घटना हो चुकी है, उसी से मैं बड़े असमंजस में पड़ा हूँ। महाराज वारेंद्रनारायण को बहुत मानते हैं और राजनीति तथा युद्धीय कला में अत्यंत कुशल होने के कारण वे उनका बहुत सम्मान भी करते हैं। रामेंद्र कैद में हुई है और कहीं इन्होंने महाराज से इस घटना का वृत्त कह दिया तब भी कुशल नहीं है। ऐसी अवस्था में इस कार्य को आगे बढ़ाना उचित नहीं है। अच्छा तुम अपने सरदार से जा कर कह दो कि जब तक और आज्ञा न मिले वे शांत रहें और अपने कैदियों की ओर से सदा सावधान रहें। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट भी न हो, इसका भी सदा ध्यान रखें। शीघ्र ही दूसरी आज्ञा निश्चित कर भेजूँगा।'

चर यह बात सुन कर तथा दोनों का अभिवादन कर चला गया।

आचार्य बोले, 'कुमार, कुछ समझ सकते हो कि ये कौन हैं, जिन्होंने कुसमय में पहुँच कर बना बनाया कार्य बिगाड़ डाला।'

'कुछ समझ में नहीं आता कि ये कौन हैं और किस प्रकार उस घोर वन में पहुँच गए? क्या समझ कर इन सब ने उन लोगों की सहायता की है।'

'क्या कहें, तुम्हारे हठ से हमने ऐसे कार्य में हाथ डाल दिया है। जब महाराज को इसकी सूचना मिलेगी, वे बड़े दुःखी होंगे और अवश्य ही उनका क्रोध इस विचार पर प्रज्वलित हो उठेगा कि उनके सम्मानित शरणागत पर ऐसा अत्याचार करने का किसे साहस हुआ। जिस प्रकार भी हो यह सूचना उन्हें न मिल सके, इसका प्रबंध करना ही होगा।'

'पर गुरुवर, साथ ही मेरा कार्य भी होना चाहिए। ऐसा प्रबंध कीजिए कि दोनों कार्य साथ ही हों तो अति उत्तम है। इसकी सूचना महाराज को वारेंद्रनारायणसिंह स्वयं ही दे सकते हैं और बिना उनके कहे महाराज को इस घटना पर विश्वास भी न होगा। क्यों न चर की राय मान ली जाय और यह आज्ञा भेज दी जाय कि वे इरावती तथा वारेंद्रनारायण को उद्यान से पकड़ कर ले आने का प्रबंध करें।'

'पर यह भी सोचो कि जो कार्य वन में न हो सका वह नगर के पास उद्यान में किस प्रकार पूरा होगा, जहाँ उसके सैकड़ों सिपाही उपस्थित रहते हैं। कहीं युद्ध हो जाय तो बड़ा शोर मचेगा। तीन नवागंतुकों में से दो कैद हुए हैं और एक बचा हुआ है। वह कौन है? जब तक इन सब बातों का पूरा पता नहीं लग जाता तब तक कोई कार्यवाही आगे करना अनुचित है।'

'पर यदि शीघ्रता न की जायगी तो जो कुछ काम बना है, उसके भी बिगड़ने का भय है।'

'धन्य हो कुमार, अभी तक तुम्हारा बालचापल्य नहीं गया। तुम्हें अधिक मस्तिष्क लगाने की आवश्यकता नहीं है। कार्य मेरे हाथ में है और तुम्हारा विश्वास हम पर है अतः शांत चित्त हो कर बैठो। रुद्रशिव की प्रकृति में आलस्य का लेश भी नहीं है।'

'विश्वास श्रद्धा जो कुछ है वह सब आप ही में है, किसी अन्य में नहीं। अतः आपकी जैसी आज्ञा होगी, वही करूँगा। अच्छा, आज्ञा हो तो चलूँ।'

'सदा मंगल हो।'

कुमार के बिदा होने पर स्वामीजी ने एक घंटी बजाई और तुरंत ही एक संन्यासी द्वार पर आ गया। स्वामीजी ने आज्ञा दी कि 'श्री शिव को भेज दो।'

थोड़ी ही देर बाद एक वयस्क पर बलवान संन्यासी उस कमरे में आया और दंडवत कर तथा संकेत पा कर वहीं सामने बैठ गया। स्वामीजी बोले, 'श्रीशिव, तुम्हें आज ही हूणगढ़ी जाना है। वहाँ हूण सेनानायक ने तीन कैदी पकड़ रखे हैं। तुम उससे कहना कि स्वामीजी की आज्ञा है कि तुम भी कैदी बना कर उनके साथ रखे जाओ और इस प्रकार साथ रहते हुए पता लगाओ कि वारेंद्रनारायण के पुत्र रामेंद्र के सिवा अन्य दो कौन हैं और उनका सरदार कौन है, जो युद्ध से निकल गया है। हूण सरदार के लिये पत्र हम आध घंटे में देंगे, तुम तब तक तैयार हो कर आओ। कृपाशिव को शीघ्र यहाँ भेज दो।'

श्रीशिव के जाने के पाँच मिनट बाद एक अन्य संन्यासी वहाँ आ उपस्थित हुआ जो वृद्ध था। वह आशीर्वाद दे कर सामने बैठ गया। स्वामी जी बोले।

'स्वामीजी, आज आप ही मंगल पुष्प ले कर नगर जायँ और महारानी आवल्लदेवी को वह प्रसाद दें। उस प्रसाद में पुष्प के बीच हमारा एक पत्र रहेगा, जो कहीं मार्ग में गिरने न पावे। आपको कुछ कहना न होगा, केवल सतर्कता रखनी है और इसे महारानी ही के हाथ में देना है। एक काम और है। सदाशिव से भेंट कर उसे भी एक पत्र दे देना है। ये दोनों पत्र आपको आध घंटे में मिलेंगे, इसलिये आप इस बीच अपने जाने का प्रबंध ठीक कर लें। कार्य आवश्यक है तथा अत्यधिक विश्वास का है, इसी से आपको कष्ट दे रहा हूँ।'

'जैसी आज्ञा, मैं आध घंटे में आ जाऊँगा।'

वृद्ध संन्यासी के जाने के बाद स्वामीजी उठे और उस कमरे से निकल कर उसी से सटे हुए दूसरे कमरे में गए, जहाँ बहुत बड़ा आसन लगा हुआ था। उसी के एक कोने में कुछ पुस्तकें,

लिखने की सामग्री आदि रखी हुई थी। इसी आसन पर स्वामीजी जम गए और पत्र लिखने लगे। तीनों पत्र लिखकर उन्होंने एक छोटी मुहर निकाली और उन सब पर मुहर कर उन्हें मोड़ कर इस प्रकार चिपका दिया कि कोई बिना फाड़े कुछ पढ़ न सके। ये सभी पत्र इतने छोटे थे कि मुड़ जाने पर उनका आकार एक पैसे के बराबर हो गया था। इस कार्य से स्वामीजी निपटे ही थे कि दोनों संन्यासी आ पहुँचे और पत्र ले कर अपने अपने कार्य पर चले गए।

चतुर्थ परिच्छेद

त्रिपुरी-नरेश महाराज कर्णदेव अपनी राजसभा में, जो विशेषत: गुप्त मंत्रणा के लिये ही काम में लाई जाती थी, विराजमान थे और उनके प्रधान प्रधान मंत्री तथा सरदारगण नियमानुसार बैठे हुए थे। कमरे के द्वार पर एक सरदार नग्न खड्ग लिए हुए खड़ा था, जिसमें कोई अनधिकारी भीतर न आ सके। सभी वहाँ चिंता में बैठे हुए किसी गूढ़ विषय पर चिंतन कर रहे थे। महाराज कर्णदेव ने उस सन्नाटे को तोड़ते हुए कहा।

'यद्यपि कालिंजराधिपति का स्वत: कोई दोष इसमें न हो पर उनके कर्मचारियों की कृति उन्हीं की समझी जायगी और उस कृति पर कर्मचारी को दंड न दे कर तथा पश्चात्ताप प्रकट न कर इस प्रकार का उत्तर देना उनका दोष अवश्य ही है। ऐसी अवस्था में चुप बैठ रहना अपनी निर्बलता दिखलाना है और इसका परिणाम भविष्य में कटु होगा ही। इन बातों को समझ कर ही किसी निश्चय पर आना उचित है।'

एक वृद्ध मंत्री बोले, 'राजन्, आपकी आज्ञा सर्वथा शिरोधार्य है पर यदि आपका कोई आज्ञाकारी सेवक राजभक्ति के उत्साह में अपने राजा के लाभ के लिये सच्चे हृदय से कोई कार्य कर बैठे तो क्या वह आपकी दृष्टि में दंडनीय हो सकता है। उसी प्रकार कालिंजराधिपति ने अपने कर्मचारी को दोषी नहीं माना होगा। अब केवल इतना ही रह जाता है कि उन्हें अपने उत्तर में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए उस कृति के लिये पश्चात्ताप प्रकट

करना चाहिए था। इतने ही पर यदि युद्ध छेड़ना उचित निर्धारित किया जाय तो फिर मुझे कुछ वक्तव्य नहीं है।'

एक प्रौढ़ सरदार बोले, 'इतना कारण भी कम नहीं है। नहीं तो क्या जब कोई अपने पर चढ़ाई कर दे तभी युद्ध छेड़ना चाहिए ?'

एक अन्य मंत्री–'आप युद्ध व्यवसायी हैं, कारण अकारण की चिंता आपको नहीं करनी चाहिए। युद्ध करना नीतियुक्त है या नहीं इसका निश्चय करना हम लोगों का क्षेत्र है। जब यह निश्चय हो जाय कि युद्ध किया जाय और महाराज उसकी आज्ञा दे दें तब वह आप लोगों का क्षेत्र हो जायगा। राजन्, यद्यपि आप कालिंजर पर आक्रमण करने का विचार रखते हैं पर यदि मुझसे पूछा जाय तो मेरी सम्मति में यही आता है कि अभी युद्ध के लिये पर्याप्त कारण नहीं है।'

'हमारा विचार अकारण नहीं है और उस कारण को पर्याप्त बनाने की चेष्टा करना शत्रु को विशेष सजग करना है। शीघ्रता ही करना, शत्रु को पूरी तैयारी करने का अवसर न देना ही, सफलता की सहज सुगम कुंजी है। ऐसी अवस्था में यह निश्चय करते ही कि आक्रमण किया जाय, हमारा विचार है कि शीघ्रातिशीघ्र अपनी सेना ले कर उस ओर प्रस्थान कर दें और अपनी अन्य पदवियों में कालिंजरपति की भी एक पदवी और जोड़ दें।'

सभी मंत्रिगण ने तथास्तु, तथास्तु कह दिया। महाराज बोले, 'कालिंजर के राजदूत को कल तक यहीं रखा जाय और उसके दूसरे दिन मंगल को पत्रोत्तर उसे दे कर विदा कर दिया जाय। राज्य ज्योतिषी जी ने बुधवार को चढ़ाई पर प्रस्थान करने की साइत दी है। पत्रोत्तर देने का भार प्रधान अमात्य पर है। साथ

ही ऐसा प्रबंध रखना होगा कि उस राजदूत को इस आक्रमण की तैयारी का पता न चले। हाँ, अभी वारेंद्रनारायणसिंह नहीं आए।'

इसी समय राजसभा के द्वार पर वही प्रौढ़ वीर आ पहुँचे और आज्ञा पाने पर भीतर चले आए। उन्होंने महाराज का नियमानुसार अभिवादन किया और आज्ञानुसार अपने स्थान पर बैठ गए। महाराज ने उन्हें संबोधित कर कहा—

'एक चढ़ाई पर शीघ्र ही जाने का हमने विचार किया है और इसी लिये आपको कष्ट दिया है। आपके कालिंजराधिपति ने एक ऐसा कार्य कर दिया है, जिससे हमारे सम्मान को कुछ धक्का सा लगा है। हमने सहनशीलता से उन्हें उस विषय पर पत्र लिखा पर उसका उत्तर भी असंतोषजनक ही मिला, जिससे हमें ऐसा निश्चय करना पड़ा। अब आप कहिए कि आप मेरा साथ देंगे या नहीं।'

'राजन्, एकाएक मैं कुछ उत्तर देने में असमर्थ हूँ।'

'वीर, संकोच की आवश्यकता नहीं है। आपने कई युद्धों में हमारा साथ दे कर अपनी प्रचंड वीरता से हमारी सहायता की है। हमने आश्रय दे कर जो कुछ थोड़ा सा आपको अपना अनुगृहीत किया था उससे कहीं बढ़ कर हमारा कार्य कर आपने हमें अपना आभारी बना रखा है। इस बार आपको कष्ट देने का विचार न था पर आपकी वीरता तथा युद्धकौशल से और कालिंजर की स्थिति के आपके पूर्ण ज्ञान से लाभ उठाने ही के लिए हमने यह प्रस्ताव किया है। आप निस्संकोच अपने विचार कहें।'

'(दृढ़ तथा गंभीर शब्दों में) राजन्, कालिंजर ही मेरी जन्मभूमि है और कुछ वर्ष पहले यह शरीर उसी को उत्सर्ग था। कारणवश उसे त्याग कर मैंने श्रीमान् का आश्रय ग्रहण किया है पर तब भी उसके वरुद्ध शस्त्रग्रहण करने का साहस मुझमें नहीं है। ऐसा करने पर मेरे वहाँ के मित्रगण भी मुझे हेय समझेंगे

और शत्रुगण बड़े उल्लास से मेरे दोषी होने का समर्थन करेंगे। यदि इन कारणों या विचारों से उत्पन्न हिचक से युद्ध के अवसर पर आपकी आज्ञाओं के पालन में कुछ भी त्रुटि रह जायगी तो इस ओर से स्वामिद्रोह का लांछन लगते भी देर न लगेगी। अतः मेरी यही नम्र प्रार्थना है कि मुझे इस बार क्षमा किया जाय।'

'(कुछ ठहर कर) हमने जहाँ तक आपके विषय में इन थोड़े दिनों में अनुभव प्राप्त किया है उससे आपके प्रति इतना दृढ़ विश्वास हमें हो गया है कि यदि प्रत्यक्ष आपको अपने विरुद्ध कुछ कार्य करते देखें तब भी एकाएक उस पर विश्वास न करेंगे। हमारे इन सभी राजमंत्रियों तथा सेनापतियों ने आपकी समय समय पर प्रशंसा की है और हमें बड़ी समवेदना उस कालिंजराधिपति से है, जिसने ऐसे मनुष्यरत्न को खो दिया है। आपके विचारों से हम सहमत हैं और आपको इस कार्य से छुट्टी देते हैं। पर कृपया यह तो बतलाइए कि आज आप जब से आए हैं तभी से कुछ दुखी ज्ञात हो रहे हैं। क्या बात है?'

'(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) राजन्, धर्म पर आस्था रखते हुए और उसके निर्देश किए हुए मार्ग पर चलते हुए भी यदि कष्ट भोगना पड़े तो उसे केवल ईश्वराज्ञा समझ कर सहन करना ही उचित है और यही कारण था कि मैंने बिना राजाज्ञा पाए कुछ कहना ठीक नहीं समझा। तीन चार वर्ष से आपकी छत्रच्छाया में जिस प्रकार आराम से व्यतीत किया था उससे आशा की थी कि यह जीवन इसी प्रकार बीत जायगा पर परसों की घटना से यह आशा मिट सी गई है। वन में अहेर खेलते समय एकाएक बहुत से सैनिक डाकुओं ने हम पर आक्रमण किया और हमारे एक मात्र पुत्र रामेंद्र को पकड़ ले गए। अभी तक उसका कुछ पता नहीं लगा है।'

'(क्रोध से) राजधानी के इतने पास डाकूगण यदि एक वीर सामंत पर इस प्रकार आक्रमण कर सकते हैं, तो साधारण प्रजा पर न जाने क्या आफत ढा सकते हैं। मंत्री जी, यह क्या है, क्या कर्णदेव की जीवितावस्था ही में ऐसा उपद्रव होने लगा। जिस वीर ने हम पर विश्वास कर हमारा आश्रय ग्रहण किया, उसके पुत्र को साधारण डाकू पकड़ कर ले जायँ। यदि यशःकर्ण को ये डाकू ले गए होते तो हमें इतना कष्ट न होता जितना यह सुन कर हो रहा है। देखिए, यदि हमारे कालिंजर से लौटने तक रामेंद्र छुड़ा न लाया जायगा और डाकूगण कैदखाने में न बंद कर दिए जायँगे तो हम राजधानी के भीतर पैर न रख कर पहिले उसी कार्य को पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। वीर, आप किसी प्रकार की चिंता न करें। हमें पूर्ण आशा है कि मंत्री जी शीघ्र पता लगा लेंगे पर यदि संभव भी असंभव हो जाय तो कर्णदेव उस असंभव को संभव करने में कदापि पीछे न हटेगा।

'राजन्, आपकी इन आज्ञाओं ने मेरे इस पुत्र-कष्ट को प्रायः मिटा दिया है और इसके लिए मेरी वाणी में शक्ति नहीं है कि मैं अपने हृदय के विचार प्रकट कर सकूँ पर सीधे सादे शब्दों में मैं महाराज को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ कि वे प्रजा के पुत्र को अपने पुत्र के ही समान समझते हैं। (चिंता से) नहीं कह सकता कि जब महाराज लौटेंगे, उस समय मैं दर्शन कर सकूँगा या नहीं क्योंकि मेरी आत्मा कह रही है कि यह आक्रमण मुझे और मेरी पुत्री को भी कैदी बनाने को था पर वह असफल रह गया। इस लिये आज ही मैं महाराज को उस आश्रय के लिये अनेक धन्यवाद दिए देता हूँ, जिसके लिये स्यात् फिर अवसर न मिल सके। आशा है कि महाराज मेरी स्थिति समझ कर मुझे इन शब्दों के लिये क्षमा करेंगे।'

'कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि बात क्या है? अनुभवप्राप्त वीरात्मा जिस ओर संकेत करती है वह झूठ नहीं हो सकता। अस्तु, जो कुछ हो कालिंजर से लौटते ही इसका अच्छी प्रकार पता लगाना ही हमारा प्रथम कार्य होगा। आप कहीं भी रहेंगे पर ईश्वरीय न्याय आपके साथ सदा रहेगा और हमें पूर्ण विश्वास है कि उसकी रक्षा में किसी के साथ अन्याय न हो सकेगा। अस्तु, अब आप जा सकते हैं, लौटने पर मिलेंगे।'

वारेंद्रनारायणसिंह अभिवादन कर चले गए। राजसभा में सन्नाटा छा गया। मंत्रिमंडल तथा सेनापति सभी शिर नीचा किए हुए थे कि महाराज पुनः बोले,

'मंत्री जी, आपको जो कार्य सौंपा है उस पर ध्यान रखिएगा और इस सामंत की रक्षा का भार किसी अत्यंत कुशल चर पर छोड़िएगा। वास्तव में यह कार्य साधारण डाकुओं का नहीं है पर कर्णदेव का न्यायदंड किसी का अन्याय कभी न सह सकेगा। अस्तु, अब कालिंजर की चढ़ाई पर विचार करना है, उसके लिये रात्रि में आठ बजे यहाँ सभा होगी।'

इतना कह कर महाराज कर्णदेव उठ खड़े हुए और उनके चले जाने पर सभी मंत्री तथा सेनापतिगण भी चले गए। महाराज भीतर अंतःपुर की ओर गए और उस कमरे में पहुँचे, जहाँ महारानी थीं। यह एक विशाल पर खूब सजा हुआ कमरा था, जिसमें महारानी आवल्लदेवी दो तीन सखियों के साथ बैठी हुई कुछ बात चीत कर रही थीं। महारानी की अवस्था चालीस से कम नहीं है पर वे तीस से अधिक नहीं ज्ञात होतीं। शरीर बहुत हृष्ट पुष्ट न होते भी वह कृशांगी नहीं हैं, रंग गौर तथा कांतिमय है और शरीर अत्यंत सुडौल है। यौवन का लावण्य अभी बना हुआ है। मुख पर तेज है और उससे दर्प, हठ भी झलकता है। हूण

जाति की होने के कारण नाक अवश्य कुछ चिपटी है पर उससे मुख की शोभा किसी प्रकार कम न हो पाई है। इनकी सखियाँ भी सुंदर हैं और प्रायः उन्हीं की समवयस्का हैं। इसी समय एक दासी ने दौड़ते हुए आकर हाथ जोड़ कर कहा कि 'महाराज पधार रहे हैं।' महारानी सखियों के साथ उठ कर कमरे के द्वार पर पहुँची ही थीं कि महाराज कर्णदेव भी आ गए और दोनों साथ ही भीतर जा कर एक ऊँचे आसन पर आसीन हुए। सखियाँ तथा दासी आज्ञा पाकर चली गईं तब महारानी ने कर्णदेव की ओर देख कर पूछा कि 'आर्यपुत्र, आप अत्यधिक चिंतित ज्ञात हो रहे हैं, क्या कारण है, क्या मैं पूछ सकती हूँ ?'

'क्यों नहीं प्रिये, तुमसे हम कुछ भी गुप्त नहीं रखना चाहते, केवल राजकार्य की बातें कह कर तुम्हें कष्ट देना उचित नहीं समझते।'

'महाराज का प्रेम तथा स्नेह मुझ पर कितना है और वह किस प्रकार सदा एक रस रहा है इसका मुझे नित्य अनुभव होता रहता है पर चिंता से मुर्झाए हुए आपके मुख को देख कर जो कष्ट हो रहा है वह उसके कारण जानने से अधिक न हो सकेगा। स्यात् मैं कुछ सम्मति दे सकूँ।'

'कालिंजर पर चढ़ाई करने का निश्चय कर वहाँ के आए हुए सामंत वारेंद्रनारायणसिंह को जो अब इस राज्य के आश्रित हो रहे हैं, साथ में लिवा जाने के विचार से बुलवाया था पर उस वीर ने अपनी मातृभूमि के विरुद्ध शस्त्रग्रहण करना अस्वीकार कर दिया।'

'(चिंता तथा प्रसन्नता-मिश्रित भाव से) यह अत्यंत अनुचित है पर इसके लिए विशेष चिंता क्यों ?'

'नहीं अनुचित तो नहीं कहा जा सकता और जो कारण ऐसा

न करने के उसने दिए वे एक वीर के उपयुक्त थे। परंतु उन कारणों में से एक कारण ऐसा बतलाया, जिससे हमें मार्मिक व्यथा हुई है।

'(भय के साथ) वह कारण क्या है ? शीघ्र बतलाइए।

'प्रिये, उस वीर पुरुष के पुत्र को डाकू लोग हरण कर ले गए हैं और उसे यह भी भय तथा आशंका है कि उसकी पुत्री तथा उसे भी वे पकड़ ले जाना चाहते हैं। उसकी इन मर्मस्पर्शी बातों को सुन कर हमें यही आशंका दबाए हुए है कि क्या हमारे प्रभुत्व या हमारे न्यायदंड की शक्ति इतनी निर्बल हो गई है कि राजधानी के समीप इस प्रकार का उपद्रव हो गया। ये डाकू कौन हैं जिनको हमारा कुछ भी भय नहीं है।'

'ऐसा मत सोचिए। आपकी शक्ति से बड़े बड़े राजे भय खाते हैं, साधारण डाकुओं की क्या गिनती है। (धीरे से) हो सकता है कि ये उसी सामंत के देश के लोगों का कार्य हो।

'यदि ऐसा है, तो उसका प्रतीकार लेने जा रहा हूँ और यदि ऐसा नहीं हुआ तो लौटते ही इन उपद्रवियों को दंड दूँगा चाहे वे कोई भी हों। न्याय की दृष्टि से पुत्र कलत्र को भी कर्णदेव अपना न समझेगा।'

'(भय से) क्यों आर्यपुत्र ? मुझसे या यशःकर्ण से यदि कोई भूल हो जाय तो क्या आप क्षमा न करेंगे।'

'देवि, भारतीय न्याय-तुला के आगे मनुष्य मात्र समान हैं, किसी में किसी प्रकार का भेद नहीं है। जो दंडनीय है वह अवश्य दंड पावेगा चाहे वह राजा ही क्यों न हो। (प्रेम से) हाँ, हमारा व्यक्तिगत कुछ भी अपकार तुम लोग करो पर हम क्रुद्ध ही न होंगे तब क्षमा का प्रश्न ही नहीं उठता और कभी आज तक ऐसा हुआ भी नहीं।'

'कालिंजर की चढ़ाई क्या शीघ्र ही होने वाली है ?'

'बुधवार को सेना प्रस्थान कर देगी। अब विश्राम करने की इच्छा होती है।'

'जैसी आज्ञा।'

पंचम परिच्छेद

विंध्य पार्वत्य-शृंखला प्रायः नर्मदा नदी के समानांतर रहते हुए अरब सागर की ओर चली गई है, जिनके बीच के छुटे हुए स्थान कहीं कम कहीं अधिक चौड़े होते गए हैं। कहीं कहीं पर्वत की छोटी छोटी शाखाएँ फूट कर नदी तक भी आ गई हैं और जल के आधिक्य से ये भाग इतने हरे भरे पेड़ों से भरे हैं कि ऊँचे शिखर पर खड़े होकर नीचे देखने से भूमि दिखलाई ही नहीं देती, केवल वृक्षों के सिरों की हरी पत्तियों से वे उपत्यकाएँ भरी दिखलाई पड़ती हैं। त्रिपुरी से प्रायः सत्रह अठारह कोस पूर्व की ओर विंध्याचल से फूटे हुए ऐसे ही एक पर्वत खंड पर एक छोटा दृढ़ दुर्ग बना हुआ है, जो चारो ओर की हरियाली से घिरा हुआ होने से अत्यंत रमणीक ज्ञात होता है। इस पर्वत खंड को चारो ओर से, जहाँ से मनुष्य के चढ़ने योग्य मार्ग थे, छाँट कर तथा केवल एक मार्ग रख कर उसे और भी दृढ़ता से सुरक्षित कर दुर्ग को दुर्गम बना दिया गया है। दुर्ग के पश्चिम एक छोटी नदी या नाला है, जो पहाड़ी जल को नर्मदा तक पहुँचा देता है। दुर्ग तक जाने का चौड़ा घूमता फिरता मार्ग कई फाटक बना कर काफी दृढ़ कर दिया दया है और हर समय उन पर पहरा रहता है।

दुर्ग यद्यपि बहुत बड़ा नहीं है तब भी काफी लंबा चौड़ा है। लंबा अधिक है, चौड़ा कम है। फाटक के सामने छोटा सा मैदान व्यक्तिसके एक ओर अश्वारोही सेना के घोड़ों के लिये स्थान बना तब । है और जिनमें प्रायः तीन सौ से कम घोड़े नहीं हैं। सभी भी हुए सबल, सुडौल तथा मूल्यवान हैं। अन्य तीन ओर छोटे छोटे

कमरे सैनिकों के रहने के लिये बने हैं। एक ओर बीच में एक फाटक है जिसमें से भीतर जाने पर फिर आंगन मिलता है। इसके चारो ओर इमारतें बनी हैं जो बहुत ऊँची नहीं हैं और अनगढ़ पत्थरों से दृढ़ता से बनी हुई हैं। इन इमारतों के पीछे एक छोटा उद्यान तथा खुला मैदान है, जिसमें पैदल सेना के रहने के लिये बैरक बना हुआ है।

इन्हीं इमारतों के एक बड़े कमरे में वही डाकू सरदार बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा था, कभी वह उठ खड़ा होता और कमरे में टहलते हुए कभी अस्फुट स्वर में कुछ बोल उठता और कभी चुपचाप सोचता रहता। इस तरह कुछ देर बीतने पर उसने पुकारा 'कौन है'।

एक प्रौढ़ा दासी तुरंत कमरे के द्वार पर आ खड़ी हुई, जिसे देख कर डाकुराज ने कहा कि 'अपनी स्वामिनी को भेज दो'। इस आज्ञा के कुछ ही देर बाद एक वयस्का स्त्री उस कमरे में आई, जो अपने सौंदर्य, वस्त्र आदि से उस दुर्ग की स्वामिनी होने के पूर्ण योग्य थी। शरीर हृष्ट-पुष्ट होते हुए भी सुगठित था, रंग गौर तथा मुख आकर्षक था। इसने आते ही पूछा कि 'आर्यपुत्र, क्या आज्ञा है?'

'आओ बैठो, कुछ राय करनी है।'

'आप कुछ चिंतित हैं, क्यों क्या हुआ है?' कहती हुई वह तथा डाकुराज एक चौकी पर, जिस पर गद्दी आदि लगी हुई थी, बैठ गए। डाकुराज बोले—

'कुमार यशःकर्ण वारेंद्रनारायण की पुत्री पर मोहित हो गया है पर उससे विवाह करने की स्वीकृति की आशा न देख कर इरा-हरण करने की उसने इच्छा की। श्री रुद्रशिव से उसने यह सब बातें कहीं और अपनी माता अर्थात् बहिन आवल्ल से उन पर जोर दिलाया। अंत में गुरुवर ने मुझे आज्ञा दी कि आपही को

यह हरण कार्य करना पड़ेगा और उचित अवसर की सूचना वह भेज देंगे। आज तीन दिन हुए कि उस सूचना के अनुसार मैंने कार्य किया पर सफल हो कर भी असफल रहा। केवल वारेंद्र-नारायण का पुत्र रामेंद्र ही कैद हुआ और वह तथा इरा निकल भागे। उनके तीन सहायकों में से दो कैद हुए पर एक, जो मुखिया था, वह भी निकल गया। ये कौन हैं, इसका पता नहीं। यदि महाराज कर्णदेव से कोई कुल वृत्त कह दे और वह जाँच करें तो मैं बेढब फँसूँगा। न बहिन का और न गुरुवर का नाम ले सकूँगा। इसी चिंता में पड़ा हूँ। क्या करूँ क्या न करूँ, यह कुछ समझ में नहीं आता।'

'यदि वारेंद्रनारायण भी पुत्री के साथ कैद हो गए होते तो महाराज को शीघ्र पता न लगता तब भी मैं समझती हूँ कि महा-राज को शीघ्र पता न लगेगा।'

'कैसे?'

'वारेंद्रनारायण स्वतः अभी न कहने जायँगे क्योंकि पुत्र ही कैद हुआ है, पुत्री नहीं। वह स्वयं पता लगाने का प्रयत्न करेंगे क्योंकि यह आक्रमण साधारण डाकू का है ऐसा वह किसी प्रकार न समझेंगे और राजवंश या किसी प्रभावशाली सामंत का कार्य मान कर वह एकाएक किसी से इसके विषय में कुछ भी कहना उचित न समझेंगे।'

'ठीक है, वह कुशल राजनीतिज्ञ हैं और तुम्हारी धारणा बहुत उचित है।'

'पर साथ ही अब आलस्य करना नहीं चाहिए। शीघ्र ही बचे हुए वे तीनों हाथ में कर लिए जाने चाहिएँ, जिसमें महाराज को शीघ्र पता ही न लग सके। तब तक इन नए सहायकों का भी कैदियों से पता लगाना चाहिए।'

'महाराज वारेंद्रनारायण को बहुत मानते हैं और अधिक दिनों तक उनकी अनुपस्थिति उनसे छिपी नहीं रह सकती। ऐसी अवस्था में यदि कार्य शीघ्र न निपट सका तब भी वही बात पैदा होगी।'

'सुना है कि महाराज कालिंजर पर चढ़ाई करने वाले हैं और उसमें कई महीने अवश्य लग जायँगे। उस अवसर पर यदि यह कार्य पूरा हो जाय अर्थात् वारेंद्रनारायण विवाह स्वीकार कर लें या विवाह ही हो जाय तो फिर किसी प्रकार की आशंका नहीं रह जायगी।

'इसका तुम्हें पता कैसे लगा ?

'अंतिम बार जब राजमहल को गई थी तभी यह बात सुनी थी और यह भी सुना था कि शीघ्र ही यह चढ़ाई होने वाली है।'

'पर कहीं इस चढ़ाई पर वारेंद्र चले गए तब तो सब कार्य रुक जायगा क्योंकि वह जब से इस राज्य में आए हैं, तब से प्रायः सभी युद्ध में महाराज के साथ गए हैं।'

'जा सकते हैं पर मुझे आशा नहीं क्योंकि वह कालिंजराधिपति ही के पुराने सामंत तथा संबंधी हैं और अपने पुराने राजा के विरुद्ध युद्ध करना कृतघ्नता ही है।'

'तुम्हारी बुद्धि पर मुझे बड़ी ईर्ष्या होती है और इसी से लाचार हो कर तुमसे राय करना पड़ता है।'

'(मुस्किरा कर) जी आपको चापूलसी करना खूब आता है। दो शिर एकत्र होंगे तो कुछ नई बातें अवश्य ही निकल आएंगी, इसमें बुद्धि के आधिक्य का प्रश्न कहाँ से निकल आया।'

'(हँस कर) और यहाँ दो शिर कैसा ? 'अर्ध अर्ध' केवल पूरा हो गया।'

इसी समय कमरे के द्वार पर से घंटी का धीमा शब्द हुआ और ठाकुराज ने आज्ञा दी कि 'आओ।' वही दासी एक पत्र ले

कर भीतर आई और उसे उसी आसन पर रख दिया तथा संकेत पा कर बाहर चली गई। डाकुराज ने वह पत्र खोला और श्रीरुद्र-शिव का पत्र देख कर उसे आदर से सिर लगा कर पढ़ डाला। बोले—

'तुम्हारे सभी विचार ठीक उतर गए। देखो? गुरुवर की विचार प्रणाली भी वही रही है। क्योंकि उनकी वही आज्ञा हुई है, जिसे तुमने करना आवश्यक बतलाया था। तुम भी पत्र पढ़ लो।'

डाकुराज-पत्नी ने पत्र ले कर पढ़ डाला और कुछ मुस्किराते हुए कहा, 'गुरुवर आपको आराम नहीं करने देंगे। वे जब किसी कार्य में हाथ डालते हैं, तो पूर्णशक्ति के साथ ही उसे अंत तक निबाहते हैं। वे आलस्य जानते ही नहीं और उस कार्य की पूर्ति के लिये कोई भी उपाय उठा नहीं छोड़ते। इसलिये आपको भी चिंता न करते हुए उनके बतलाए हुए मार्ग पर अग्रसर होते रहना ही ध्येय बनाए रखना चाहिए।'

'जी अवश्य, गुरुवर की आज्ञा से बढ़ कर तो यहाँ आपकी आज्ञा मान्य है।'

'क्यों नहीं, मेरी आज्ञाकारिता के बदले अब आप आज्ञाकारी हो गए हैं। इसमें संशय भी नहीं है। क्योंकि जब मैं आज्ञाकारिणी हूँ तो आप भी अवश्य ही वैसे होंगे।'

'धन्य हो प्रिये, और मैं भी अपने को धन्य मानता हूँ। अच्छा पत्रवाहक से मिल कर अब पत्र के अनुसार कार्य कर लूँ।'

डाकुराज इतना कह कर बाहर निकले और कई कमरों में से होते हुए बाहरी कमरे में आए जहाँ श्री रुद्रशिव का भेजा हुआ पत्रवाहक बैठा हुआ था। इन्हें देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और हूणराज ने भी उसे प्रणाम कर बैठने का संकेत किया। दोनों ही बैठ गए और तब हूणराज ने एक सेवक को पुकार कर आज्ञा दी

कि जेलर को बुला लावे। इसके अनंतर पत्रवाहक से बोले कि 'आप इस रूप में यदि कैदियों के पास जायँगे, तो कार्य सिद्ध न होगा, अतः आप कुछ बहुमूल्य वस्त्र आदि से अपने को विभूषित कर लें। दूसरे यह कि आप उन कैदियों से वहाँ अपनी उपस्थिति का वही कारण बतलाएँ जो पहिले से निश्चय हो जावे, नहीं तो यदि कैदियों को किसी रक्षक की बातचीत से किसी प्रकार की शंका हो जायगी तो कार्य में बाधा पड़ेगी।'

'ठीक है, मैं अपनी वेशभूषा बदल लूँगा। साधु रूप में जाना उचित भी नहीं है। कारण यही बतलाया जाय कि गढ़ी के पास यात्रा करते हुए निकट आ पहुँचने पर दुर्ग वालों ने शंका के कारण पकड़ लिया।'

इसी समय वह जेलर आ पहुँचा और अभिवादन कर सामने खड़ा हो गया। हूणराज ने उसे आज्ञा दी कि 'इन साधुवर को अपने साथ लिवा जाओ और जिस प्रकार यह कहें सब कार्य इनकी इच्छानुसार पूरा कर दो। तब उसके बाद मुझे सूचना दे देना।'

वह साधु जेलर के साथ चला गया।

तर
आ
मुर
घि
नह
एव
सर
औ
प्रव
हुए
ठी
आ
अ
उस
उस
ति
कन

षष्ठ परिच्छेद

हूणदुर्ग के प्रायः एक कोस पूर्व-उत्तर विंध्य पर्वत की ठीक तराई में एक गुफा है, जिसमें इतनी काफी जगह थी कि २०, २५ आदमी आराम से कुछ दिन उसमें रह सकते हैं। इस गुफा का मुख बाहर से वृक्षों तथा गुंजान कँटीली झाड़ियों से इस प्रकार घिरा हुआ था कि उसके पास तक लोग जा कर भी उसका पता नहीं पा सकते थे। इन झाड़ियों तथा पहाड़ के बीच में काट कर एक ऐसा मार्ग बनाया गया था, जिससे मनुष्य तथा घुड़सवार सभी एक एक कर भीतर जा आ सकते थे। इस गुफा में भीतर की ओर इस समय आठ घोड़े बँधे हुए थे और घास दाने आदि के प्रबंध से ज्ञात होता था कि वे कई दिन से वहाँ इस प्रकार बँधे हुए हैं। मनुष्यों में केवल दो वहाँ उपस्थित थे, जो घोड़ों का प्रबंध ठीक कर तथा पास के गिरते हुए झरने में स्नान से निपट कर अपने खाने पीने का प्रबंध कर रहे थे। इसी समय किसी के बाहर आने की आहट मिली और उनमें से एक बाहर निकल आया। उसने वहाँ एक युवक को देखा, जो एक वृक्ष के नीचे खड़ा होकर उस मार्ग की ओर देख रहा था। वह इस नवागंतुक को साथ लिवा कर भीतर चला गया और एक स्थल पर बैठ कर बातचीत करने लगा।

'क्यों जीवन, कोई नई बात ज्ञात हुई है ?'

'जी हाँ, और विचित्रता से भरी हुई।'

'क्या क्या, बतलाओ क्या बात है ?'

'दुर्ग में बड़ी तैयारियाँ हो रही हैं, कुल सैनिक अपने सामान

से लैस हो रहे हैं, अस्त्र शस्त्र, घोड़े सभी शीघ्र किसी युद्ध के लिये तैयार किए जा रहे हैं और ऐसा पता लगा है कि आज की रात्रि या कल हूणराज अपनी कुल शक्ति के साथ किसी ओर यात्रा करेंगे। यह अब तक न ज्ञात हो सका कि यह चढ़ाई किस ओर होगी क्योंकि वह अत्यंत गुप्त रखी गई है। कैदियों तथा दुर्ग की रक्षा के लिये केवल पच्चीस सिपाही यहाँ रहेंगे, जिससे यह तो निश्चय है कि कारागार के द्वार पर अधिक से अधिक दो रक्षक रह सकेंगे।'

'कैदियों को छुड़ाने में तो बहुत कुछ सुविधा हो जायगी, पर यह तैयारी किस ओर है, यह समस्या हल नहीं हो रही है।'

'हाँ, यह भी सुनने में आ रहा है कि महाराज ने कालिंजर पर चढ़ाई करने का निश्चय ही नहीं कर लिया है प्रत्युत् राजधानी से ससैन्य प्रस्थान कर दिया है। ऐसा प्रबंध किया गया है कि कालिंजर-नरेश को समय पर सूचना न मिल सके और एका-एक धावा कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया जाय।'

'आह, क्या हमारे स्वामी पर तो इस हूणराज की चढ़ाई नहीं है? स्यात् उन्होंने चेदिराज का इस चढ़ाई में साथ नहीं दिया है और वह अपने उद्यान ही में हैं। अस्तु, देखा जायगा। पर उस चौथे कैदी का भी कुछ पता चला।'

'जी हाँ, वह श्री रुद्रशिव का एक शिष्य या चर था। ईश्वर को धन्यवाद है कि वह हम लोगों के कैदियों से बातचीत आरंभ करने के पहिले ही अपना कार्य पूरा कर हट गया था, नहीं तो हम सब भी पकड़े जाते और कैदियों का छुटकारा भी दूर हो जाता।'

'आज ही गोपालसिंह दो सैनिकों के साथ आ रहे हैं और यदि आज रात्रि को हूण सेना कूच करे तो वही समय अत्यंत उपयुक्त अवसर कैदियों को छुड़ाने का होगा। इस लिये कूच करने का समय निश्चित कर तथा कैदियों को सूचित कर यहाँ समाचार

दे देना, जिससे हम लोग हर तरह से तैयार हो कर उसी स्थान पर आ जायँ।'

'बहुत ठीक और यदि स्वयं न आ सका तो उसी घासकटे से संकेताक्षरों का पत्र भेज दूँगा।'

इतना कह कर वह उसी मार्ग से चला गया। दोपहर बीत चला था कि वही मनुष्य बाहर निकला तथा पहाड़ पर कुछ ऊँचे चढ़ कर पूर्व की ओर देखने लगा। थोड़ी ही देर में उसे तीन सवार उस ओर से आते दिखलाई पड़ने लगे। कुछ देर में वे आ पहुँचे, जो अत्यंत थके हुए थे और ज्ञात होता था कि बहुत दूर से चले आ रहे हैं। सबके आगे वही गोपाल था तथा उसके पीछे दो वीर सैनिक थे। इन लोगों के पहुँचते ही उस आदमी ने गोपाल का अभिवादन किया और उसी मार्ग से इन लोगों को लिवा कर गुफा में चला गया। घोड़े से उतर कर ये लोग सुस्ताने का प्रबंध करने लगे।

संध्या हो चली थी कि जब गोपाल तथा वही मनुष्य, दोनों उस कुंज से निकल कर एक ओर टहलते हुए आपस में बातचीत करने लगे। इसी समय एक आदमी ने आ कर एक लपेटा हुआ पत्र उसी मनुष्य के हाथ में दे दिया और चला गया। उसने उस पत्र को खोल कर पढ़ा तथा तब बोला 'आज ही रात्रि को सुना है कि हूणराज अपने दो सौ सवारों के साथ किसी पर चढ़ाई करने जाएगा और उसी समय कैदियों को छुड़ाने का अच्छा अवसर है।'

'पर यह हूण किस पर चढ़ाई करने का विचार कर रहा है। दो सौ सवार से कोई राज्य तो ले नहीं सकता, अवश्य ही यह कहीं लूट मार करने जा रहा होगा।'

'मैं तो समझता हूँ कि कहीं मेरे स्वामी के उद्यान ही पर

आक्रमण करने का इसका विचार न हो। वह चेदिराज की सेना के साथ तो नहीं गए हैं।'

'नहीं, वह वहाँ नहीं गए हैं। अपने पुराने स्वामी के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया और यह उचित भी था। चेदिराज भी अप्रसन्न नहीं हुए प्रत्युत् उनके विचार पर उनकी स्वामिभक्ति की प्रशंसा ही की। उन पर वन में जा आक्रमण हुआ था उसका तथा रामेंद्र की कैद का समाचार सुन कर वह अत्यंत क्रुद्ध हुए और समवेदना प्रकट करते हुए कह गए हैं कि लौटते ही वह स्वयं इसका पता लगा कर दोपियों को उचित दंड देंगे और यह उनका पहिला कार्य होगा। तब तक के लिये मंत्रियों पर भी यह कार्य सौंप गए हैं।'

'देखिए, स्वामी का आप पर पूर्ण विश्वास है और इस घटना में आप सम्मिलित भी हो गए हैं। अतः आपसे मैं अपने विचार प्रकट कर रहा हूँ। यहाँ कोई और ऐसा नहीं है, जिससे सम्मति भी ले सकूँ। इधर कैदियों के छुड़ाने का सब प्रबंध हो चुका है और अनायास ही यह सुविधापूर्ण अवसर भी हाथ आ गया है। पर उधर यह चढ़ाई है। मेरी समझ में यह आ रहा है कि इस हूण ने वन में स्वामी तथा कुमारी इरा को पकड़ने के लिए ही आक्रमण किया था पर वे निकल गए और अब यह चढ़ाई उसी उद्यान पर उसी कार्य के लिये हो रही है। यह कार्य केवल इसी हूण का नहीं है और न वह इतना साहस कर सकता है। अभी यह सूचना मिली है इस षड्यंत्र में गोलकी मठ के आचार्य रुद्रशिव का भी हाथ है और इससे मेरा विचार पुष्ट हो रहा है कि यह कार्य चेदिराजवंश के किसी महापुरुष के संकेत पर चल रहा है। खैर, इस सबका पता तो यहाँ से छुट्टी मिलते ही लूँगा पर स्वामी की रक्षा का इस समय क्या प्रबंध हो सकता है।'

'कुछ भी नहीं और वहाँ उद्यान में इस समय सौ से अधिक सैनिक भी नहीं हैं। यद्यपि यह निश्चय हुआ था कि पाँच सौ सैनिक तैयार रखे जायँ और तैयार भी हो गए हैं पर एकत्र उद्यान में रखना अनुचित समझ कर केवल सौ वहाँ रखे गए हैं और बाकी अन्यत्र कई भागों में कई स्थानों पर हैं, जिन्हें सूचना दे कर बुला लिया जा सकता है। परंतु यह आक्रमण एकाएक होगा। ऐसी अवस्था में हूण के सफल होने ही की आशा है। यदि हम लोग इस कार्य को छोड़ कर भी चल दें तब भी प्रायः साथ ही पहुँचेंगे और कुछ फल न निकलेगा। इसलिये यही उचित ज्ञात होता है कि यहाँ का कार्य पूरा कर सीधे सभी लोग उधर चल दें और यथाशक्ति शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने का प्रयत्न करें। ये दुष्ट भी कल सुबह तक पहुँच सकेंगे और तब वन में कुछ सुस्ता कर आक्रमण करेंगे। ऐसी अवस्था में स्यात् हम लोग समय पर पहुँच सकेंगे।'

'यही निश्चय करना ही पड़ेगा परंतु अब देखता हूँ कि यह षड्यंत्र बढ़ रहा है और स्वामी को स्यात् यह भी आश्रय छोड़ना पड़े। युद्ध होगा ही और चेदिराज सुन कर क्या करेंगे, कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'देखिए, आपने जिस प्रकार हम पर अपरिचित होते हुए भी विश्वास कर अपने मन की बात कह दी है, उसी प्रकार हमें भी विश्वास करना ही पड़ता है। उद्यान में तीन दिन तक रहने पर मैं यहाँ आया हूँ और वहाँ कुमारी इरावती से कई बार बातचीत करने का अवसर मिला था। उनकी बातों में से एक बात मतलब की ज्ञात होती है। राजमहल में जब वह अंतिम बार गई थीं तब वहाँ महारानी के पास राजकुमार यशःकर्ण भी कुछ देर के लिए आए थे और इन्हें देख कर अपनी माता से धीरे से इतना कहा था कि यही है। इससे यह आशंका होती है कि इस षड्यंत्र में

राजकुमार तथा महारानी का भी हाथ है। यह हूण महारानी का भाई है और आपकी मिली सूचना से मठाधीश भी इसमें लिप्त हैं। पर यह षड्यंत्र क्यों? महाराज से संबंध करने में आपके स्वामी क्या हिचकेंगे?'

'अवश्य, मैं कई पीढ़ियों से इन स्वामी के वंशपरंपरा का सेवक हूँ और यह निश्चय जानता हूँ कि वह अपनी पुत्री का विवाह कलचुरि वंश में करना कभी स्वीकार न करेंगे। चेदिराज भी कभी ऐसा प्रस्ताव न करेंगे क्योंकि वह मेरे स्वामी को अच्छी तरह जानते हैं और यह इस समय उनके आश्रित हैं।'

'(कुछ हार्दिक उल्लास से) तभी इन लोगों ने मिल कर यह षड्यंत्र रचा है कि बलात् विवाह हो जाने पर फिर दोनों पक्ष को मौन ग्रहण कर लेने के सिवा कोई उपाय न रह जायगा। पर यह बड़ी दुष्टता तथा नीचता है।'

'(गोपाल के उल्लास को लक्ष्य करते हुए) कुमारी इरा को मैंने बचपन से खेलाया है। अब तक वह कभी मुझसे कोई बात छिपाती नहीं रही पर राजमहल की यह बात मुझसे नहीं कही और आपसे कह दी। (गौर से गोपाल के मुख को देखते हुए) हूं, यह बात है?'

'क्या कहते हैं, कौन बात?'

'अरे वही याद कर रहा था, क्या? हाँ हाँ, रत्नं समागच्छति कांचनेन, इसका क्या अर्थ होगा?'

'क्या बुझौवल बुझा रहे हैं। आपका नाम क्या है?'

'(गढ़ी की ओर देखते हुए) सबलसिंह। देखिए हूण सेना पहाड़ पर से उतर रही है। एक घंटे के भीतर हम लोगों को तैयार हो जाना चाहिए।

चाँदनी अच्छी प्रकार खिली हुई थी और दूर तक गढ़ी तथा

उस पर से उतरते हुए सवारों का सिलसिला स्पष्ट उस स्थान से दिखला रहा था। जब वह अश्वारोही सेना गढ़ी से उतर कर वन की वृक्षावली में छिप गई तब ये दोनों उस गुफा में चले गए और थोड़ी ही देर में सभी लैस होकर बाहर निकले। तीन कोतल घोड़ों की बाग तीन सवारों के हाथ में थी। अब ये लोग वन में होकर गढ़ी की ओर सीधे रवाना हुए। गढ़ी के पास पहुँच कर ये लोग उसके पीछे की ओर झुके और थोड़ी ही देर में एक स्थान पर पहुँच कर घोड़ों को वृक्षों से बाँध दिया।

सबलसिंह ने अपने साथी को उन अश्वों के पास छोड़ा और गोपाल तथा दोनों सैनिकों के साथ गढ़ी के नीचे नीचे आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाने पर ये लोग एक स्थान पर पौधों की जड़ों आदि के सहारे पर्वत के ऊपर चढ़ने लगे, जिस जगह एक पतला मार्ग फूल पत्ती घास आदि काटने वालों के आने जाने से बन गया था। पर कुछ दूर पहुँचने पर यह मार्ग भी बंद हो गया था, क्योंकि अब पहाड़ को काट कर प्रायः बीस फुट ऊँची दीवाल सी बना दी गई थी, जिस पर चढ़ना मनुष्य की शक्ति के परे था। यहाँ पहुँच कर सबलसिंह ने किसी विचित्र पक्षी की सी आवाज की, जिसके प्रत्युत्तर में दूर से उसी प्रकार का शब्द सुनाई दिया। कुछ ही देर में ऊपर से एक रस्सी आप से आप सरक कर नीचे आने लगी। जब वह पास आ गई तब सबलसिंह ने उसे पकड़ लिया और गोपाल से यह कहा कि 'इन दोनों सैनिकों को यहाँ रहने दीजिए, जिसमें ऊपर से उतरने वालों की सहायता करें तथा नीचे जाने का मार्ग भी उन लोगों को बतलावें। मेरे ऊपर पहुँच जाने पर आप भी रस्सी के सहारे ऊपर चले आवें। कम से कम दो का साथ रहना आवश्यक है।' इतना कह कर सबलसिंह रस्सी तथा पहाड़ के सहारे बड़ी सरलता से ऊपर पहुँच गए और तब गोपाल भी

उन सैनिकों को समझा कर उसी रस्सी द्वारा ऊपर पहुँच गए। अब ये गढ़ी की पिछली दीवार पर थे और दूसरी ओर झट कूद कर उद्यान में पहुँच गए, जो गढ़ी की इमारतों के पिछले भाग में था। अब इन्होंने यहाँ उस तीसरे मनुष्य को देखा जिसने रस्सी फेंकी थी। उसने शीघ्रता से रस्सी खींच कर अपने हाथ में ले ली और अब तीनों उद्यान की दीवाल तथा वृक्षों की आड़ में छिपते हुए फुर्ती से इमारतों की ओर बढ़े। पूर्व के कोने में एक द्वार था, जो खुला हुआ था। ये लोग उसी में से होकर भीतर घुसे, जो एक लंबा गलियारा सा था। इससे बाहर होने पर एक आँगन में ये लोग निकले और घूम कर एक दालान में होते हुए दूसरे आँगन में एक दृढ़ द्वार से होकर पहुँचे। यह द्वार एक ताली द्वारा खोला गया था। उस द्वार के भीतर भी एक लंबा गलियारा तथा बाद को आँगन था, जिसके चारों ओर की दालानें दृढ़ छड़ों के जँगले से बंद की हुई थीं और उनमें जँगलों के ही द्वार भी थे। इसी एक दालान में रामेंद्र तथा गोपाल के दोनों साथी कैद थे। जँगले में एक अत्यंत दृढ़ ताला लगा हुआ था, जिसकी ताली इन लोगों को मिल न सकी थी। अतः सबलसिंह उस कुंडी ही को रेती से काटने में दत्तचित्त हो गए और गोपाल को उस द्वार की रक्षा पर भेज दिया, जिसे खोल कर सब कोई भीतर आए थे। जीवन इन दोनों का साथ छोड़ कर इमारत के बाहर आहट लेने चला गया था कि कोई उधर से आता हो तो सूचित करे। इस द्वार पर तथा उद्यान के द्वार पर बराबर पहरा पड़ता था पर हूणराज के प्रस्थान का दृश्य देखने को ये पहरेदार भी बाहर चले गए थे, जिससे इन लोगों को इतनी सुविधा मिल गई थी।

सबलसिंह ने शीघ्र ही कुंडे को काट डाला और उसे टेढ़ा कर ताले को निकाल दिया। अब वे तीनों कैदी वहाँ से निकल कर

बाहर द्वार पर आए, जहाँ गोपाल द्वाररक्षक का कार्य कर रहे थे। तीनों ही पारी पारी उनसे गले मिले और वे शीघ्र वहाँ से लौटते उद्यान में पहुँचे। ये लोग वृक्षों की ओट में उस स्थान की ओर बढ़ रहे थे जहाँ से चढ़ कर गढ़ी में घुसे थे कि इमारत की ओर से कुछ शोर गुल सुनाई पड़ने लगा। थोड़ी ही देर में पाँच छः हूण सैनिक उस द्वार से निकल आए और उद्यान में चारों ओर फैल कर ढूँढ़ने लगे। अन्य कई सैनिकों के साथ जीवन भी कुछ क्षण बाद उद्यान में आया और वह उन सब से कुछ कहने लगा, जिससे वे कई दल में बँट कर इधर उधर खोजने लगे। जीवन सीधा एक सैनिक के साथ उसी स्थान की ओर गया, जहाँ भागे हुए लोग एकत्र थे। ये लोग वृक्ष की झुरमुट में खड़े थे कि जीवन ने सैनिक की आँख बचा कर रस्सी, जो उसी के पास थी, एक स्थान पर गिरा कतरा कर सैनिक से कुछ कहता हुआ दूसरे झुरमुट की ओर बढ़ गया। अब इन लोगों की जान में जान आई क्योंकि विना रस्सी के नाचे उतरना असंभव था।

अब गोपाल ने सबलसिंह से कहा कि आप शीघ्र इन लोगों को पहले दीवाल पर से नीचे उतार दें और ये लोग भी बिना घबड़ाए बड़ी सतर्कता से नीचे उतरें क्योंकि रात्रि का समय है तथा ये लोग निर्बल भी हो रहे हैं। इन सैनिकों को रोकने का काम मेरा है। आप लोगों के उतर जाने पर मैं भी न रुकूँगा और चला आऊँगा। जाइए, शीघ्रता कीजिए।'

इतना कहकर गोपाल तलवार हाथ में ले कर वहीं रुक गए और वे लोग शीघ्र उस स्थान पर पहुँच गए। रस्सी फेंक दी गई और पहिले सबलसिंह दीवाल पर चढ़ गए तथा रामेंद्र को सहारा दे कर रस्सी से नीचे उतरने में सहायता दी। इसके बाद गोपाल के दोनों साथी भी क्रमशः उतरे पर दीवाल पर इन लोगों को

चाँदनी में देख कर सभी हूण सैनिक तलवारें खींच खींच कर उसी ओर दौड़े। जीवन तथा उसका साथी सबसे पास थे और ये ही दोनों सब के पहिले पहुँचे। परंतु गोपाल ने पहिले ही आक्रमण में सैनिक को ऐसी चोट दी कि वह पृथ्वी पर जा गिरा और दूसरा हलका चोट जीवन के सिर पर किया, जिससे वह जान बूझ कर ही पृथ्वी पर गिर पड़ा। साथ ही दीवार पर से सबलसिंह की आवाज आई कि 'झट आइए।' गोपाल तुरंत ही लपक कर दीवाल के पास पहुँचे और उस रस्सी से जिसे सबलसिंह ने एक पत्थर से बाँध रखा था और नीचे उतर रहा था, यह भी उतरने लगे। इनका पैर जमीन पर पड़ा ही था कि दीवाल पर हूणों के सिर दिखलाई दिए। इन्होंने तलवार से वह रस्सी जहाँ तक संभव था, उचक कर काट ली और नीचे की ओर उतरने लगे। ये लोग सभी कुशलपूर्वक नीचे उतर गए और शीघ्र उस स्थान पर गए जहाँ घोड़े बँधे हुए थे। सभी अपने अपने घोड़ों पर सवार हो कर पश्चिम की ओर रवाना हो गए।

सप्तम परिच्छेद

हूणराज अपनी अश्वारोही सेना के साथ नर्मदा नदी के किनारे किनारे रातों-रात वन ही वन यात्रा करते हुए प्रायः उस स्थान तक पहुँच गए, जहाँ उसने वारेंद्रनारायणसिंह पर आक्रमण कर उन लोगों को पकड़ लिया था। यद्यपि यह बहुत तेजी से नहीं आया था पर तब भी लंबी यात्रा के कारण घोड़े थक गए थे, इस लिये यह वहाँ दो तीन घंटे के लिये रुक गया। प्रायः सुबह के चार बजे थे कि जब उसने अपनी सेना के चार भाग किए और तीन भाग के लिये तीन नायक नियत कर उन भागों को उस उद्यान को तीन ओर से घेर लेने के लिये भेजा और स्वयं एक भाग के साथ उद्यान के फाटक की ओर रवानः हो गया। पौ फटते फटते उद्यान चारों ओर से घिर गया और हूणराज ने तब अपने सैनिकों को दीवाल पर चढ़ कर भीतर जाने तथा फाटक खोलने की आज्ञा दी। इस बीच इतने सैनिकों तथा घोड़ों के शोर गुल से उद्यान के भीतर के लोग सभी किसी उपद्रव की आशंका से जग पड़े और रक्षक सैनिकगण अपने अपने शस्त्रादि ले कर चारों ओर दौड़ने लगे। वे अपने अपने निश्चित स्थानों पर जा रहे थे कि वारेंद्रनारायणसिंह भी समाचार पा कर सशस्त्र हो कर महल से निकल आए और सैनिकों को यथास्थान पर रक्षा के लिये नियत करने लगे। दीवाल पर चढ़ते हुए हूण सैनिकों को फाटक के पास देख-कर वह अधिकांश सैनिकों के साथ उसी ओर बढ़े और बचे हुओं को अन्य तीनों ओर भेज दिया। दस बारह हूण दीवाल पर चढ़ पाए थे कि उन पर तीरों की बौछार होने लगी,

जिससे कई बाहर की ओर तथा कई भीतर की ओर गिरे। हूणराज ने यह देख कर तीन सवारों को यह आज्ञा दे कर भेज दिया कि उद्यान के तीनों ओर से एक साथ दीवाल लाँघ कर आक्रमण कर दिया जाय और इसके बाद दस बारह सैनिकों को ढाल की आड़ में तीर से अपनी रक्षा करते हुए फाटक तुरंत खोलने की आज्ञा दी। ये सैनिकगण बड़ी बड़ी ढालें ले कर दीवाल पर चढ़ गए, जो विशेष ऊँची न थी और दूसरी ओर कूद पड़े। कुछ बढ़ते हुए शत्रु से युद्ध करने लगे और कुछ ने फाटक पर पहुँच कर तथा वहाँ के दो तीन रक्षकों को परास्त कर फाटक खोल दिया। अब हूणराज अपनी सवार सेना के साथ उद्यान में घुस पड़ा और वारेंद्रनारायणसिंह तथा उनके पैदल सैनिकों पर धावा कर दिया। इसी समय अन्य तीनों ओर से भी हूण सैनिकों ने दीवालें फाँद कर उधर के रक्षकों पर धावा कर दिया। वारेंद्र-नारायणसिंह तथा उनके सैनिकगण, जो संख्या में सौ से अधिक न थे, सिमट कर बीच महल की ओर हटने लगे परंतु हूणराज ने उन्हें अवसर न दे कर घुड़सवारों के साथ आक्रमण कर उन्हें घेर लिया और थोड़े ही युद्ध के बाद उन्हें कैद कर लिया।

इरावती जागते ही महल के ऊपर चढ़ गई और उसने एक ही दृष्टि में उद्यान को घेरे हुए चारों ओर के सैनिकों को देख लिया। इसके अनंतर युद्ध तथा शत्रु सेना के आधिक्य को देखकर वह तुरंत नीचे उतर आई और महल के चारों ओर के सभी नीचे के द्वार बंद करा दिए और आज्ञा दे दी कि भाग कर आते हुए सैनिकों को भीतर ले लें और उन्हें तीर धनुष दे कर खिड़कियों में नियत करते चलें। वह स्वयं भी शस्त्रादि ले कर पुनः छत पर चढ़ गई और वहाँ से युद्ध का दृश्य देखने लगी। इसके सैनिकगण संख्या में कम होते तथा पैदल होते हुए भी बड़ी वीरता से लड़

रहे थे और अपने स्वामी को बचाने में जान पर खेल रहे थे तब भी वे लाचार थे। अंत में स्वामी के कैद हो जाने पर नायक की आज्ञा पा वे शीघ्रता से पीछे हटते हुए महल के सामने के चबूतरे पर चढ़ आए और वहाँ से शत्रु पर तीर भाले चला कर तथा खड्ग से प्राणपण से युद्ध करने लगे। अन्य तीन ओर के सैनिकगण भी शत्रु से संख्या में बहुत कम होने के कारण लड़ते हुए पीछे हट आए और कुछ भीतर घुस कर आज्ञानुसार खिड़कियों में से शत्रु पर तीर की वर्षा करने लगे और कुछ बाहर ही एकत्र हो कर बढ़ते हुए शत्रु को रोकने लगे। इरा स्वयं छत पर से तीरों की वर्षा कर रही थी और अपने सैनिकों को युद्ध के लिये प्रोत्साहित भी करती जाती थी। यह युद्ध खूब जम कर हो रहा था कि हूणराज ने क्रोधाभिभूत हो अपने सैनिकों सहित घोड़े कुदा कर चबूतरे पर चढ़ आया, जिससे बचे हुए पैदल सैनिक घायल हो हो कर इधर उधर गिरने लगे। उसने बहुत से सैनिकों को खिड़कियों पर तीर चला कर शत्रु की बाण वर्षा रोकने के लिये नियत किया, जिससे उसके बहुत से वीर घायल हो कर गिर चुके थे। अंत में युद्ध प्रायः समाप्त हो गया तब हूणराज ने महल के द्वार तोड़ने की आज्ञा दी, जो शीघ्र ही तोड़ डाला गया और सैनिक भीतर घुस पड़े। हर एक कमरे में छोटे मोटे युद्ध के बाद सैनिकों ने हार मानी और तब ये ऊपर छत की ओर बढ़े, जहाँ केवल इरा अकेली रह गई थी। उसका तूणीर प्रायः खाली हो चुकी थी पर जो तीर बच गए थे, उसी से उसने दो तीन हूणों को घायल कर दिया। अंत में वह खड्ग से युद्ध करती हुई पकड़ ली गई और उद्यान में लाई गई।

हूणराज अब अपनी हानि का हिसाब करने लगे तब ज्ञात हुआ कि उसके प्रायः तीस सैनिक वीर लोक सिधार चुके हैं और पचास के लगभग बे तरह घायल हो गए हैं। उसने अपना सिर पीटा

और कुछ सवार उन घायलों का प्रबंध करने को छोड़ कर तथा बचे हुए दोसौ सवारों के साथ कैदी पिता पुत्री को ले कर अपनी गढ़ी की ओर रवाना हुआ। वारेंद्रनारायणसिंह के बचे सैनिकों ने अपने मृत तथा घायल साथियों को उद्यान में एक ओर कर लिया और उनका यथोचित तथा यथासाध्य प्रबंध करने लगे।

इधर गोपाल अपने साथियों को लिए हुए मारामार उद्यान की ओर रवाना हुए। मार्ग में सबलसिंह से आगे क्या करना चाहिए इस पर विचार करते चले। उसने रामेंद्र को लक्ष्य कर कहा कि सीधे हम लोग यदि उद्यान की ओर चले चलें तो हूणों के साथ या कुछ बाद पहुँच सकते हैं पर क्या इन आठ सैनिकों की संख्या बढ़ने से कुछ लाभ हो सकता है। उद्यान में केवल सौ सैनिक हैं, जिन्हें तीन सौ का सामना करना है। सौ तथा एक सौ आठ में विशेष भेद नहीं है। परंतु दो सौ सैनिक (हाथ का संकेत करते हुए) उस उपत्यका में रहते हैं और यदि हम लोग उन तक पहुँच कर उन्हें तैयार कर लें और हूणों को मार्ग में लौटते समय घेर लें तो शत्रु से पूरा बदला लेते हुए आपके पिता तथा बहिन को छुड़ा सकते हैं। यह तो मेरी राय है, अब आप कहें क्या करना चाहिए।

'हम भी आपकी ही राय ठीक समझते हैं'।

'ठीक है, पर साथ ही ऐसा प्रबंध किया जाय कि एक आदमी उद्यान की ओर जाय और वहाँ का ठीक पता ले कर तथा हूणराज किस ओर से अपनी गढ़ी की ओर लौटता है इसका भी पता लगा कर वहाँ आवे जहाँ हम सेना को ले कर घात में बैठें।

'यह बहुत उचित राय है, इससे किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं हो सकती। अच्छा इसके लिये आप किसे चुनते हैं।

'मैं तो स्वयं जाना चाहता हूँ क्योंकि यह कार्य बहुत महत्व-पूर्ण है।

'ठीक है, तो हम लोग इस ओर से जाते हैं और आप सामने से जाएँगे तो उद्यान शीघ्र पहुँच जाएँगे'।

इसके अनंतर सबलसिंह सामने के जंगल की ओर बढ़े और बचे हुए लोग कुछ उत्तर की ओर झुकते हुए फुर्ती से आगे बढ़ चले। ये लोग प्रायः चार घंटे तक इसी प्रकार जाने के अनंतर पहाड़ी के बीच के एक दरार के पास पहुँचे, जो पहाड़ी पानी बहने के योग्य नाले के समान था। ये लोग उसके भीतर घुसे और कुछ दूर घूमते हुए जाने पर एक छोटे से मैदान में पहुँचे, जो पहाड़ों से चारों ओर से घिरा हुआ था। यहाँ वारेंद्रनारायणसिंह ने दो सौ सवार अपनी रक्षा के लिये कुछ दिन हुए कि तैयार कर रखे थे। इन लोगों के पहुँचते ही बहुत से सैनिक इन लोगों के पास आ पहुँचे और रामेंद्र तथा गोपाल को पहिचान कर तथा अभि-वादन कर एक गुफा में लिवा गए, जहाँ बैठने को काफी स्थान था। गोपाल ने बैठते ही उद्यान पर आक्रमण का कुल समाचार कह कर कुल सैनिकों को तैयार होने के लिये आज्ञा दी। सभी यह समा-चार सुन कर अपने स्वामी तथा स्वामिपुत्री की रक्षा के उत्सुक हो उठे। थोड़ी ही देर में दो सौ सवार हर तरह से युद्ध के लिये तैयार हो कर मैदान में एकत्र हो गए।

गोपाल ने रामेंद्र तथा अपने साथियों से कहा कि वे कारागार में रहने से बहुत निर्बल हो गए हैं अतः यहीं ठहरें पर उन लोगों ने इसे नहीं स्वीकार किया। रामेंद्र ने तो सेना का आधिपत्य गोपाल को देते हुए कहा, 'निर्बलता के कारण मैं स्वयं इनका युद्ध में संचालन न कर सकूँगा अतः तुम्हीं यह कार्य हाथ में लो पर यहाँ चुप चाप

बैठ रहना भी मेरे लिये अशक्य है इस लिये साथ तो अवश्य चलूँगा।'

इसके अनंतर सैनिकों को संबोधन कर उसने कहा कि 'वीरो, आज मैं आप लोगों का अध्यक्ष अपने परम मित्र गोपाल को नियत करता हूँ। आप लोग जानते हैं कि इन्हीं के साहस से एक बार पिता जी तथा इरा डाकुओं के पंजे से छूटी थीं और आज यह उक्त डाकू की गढ़ी से मुझे छुड़ा कर लाए हैं। ऐसे साहसी वीर की अधीनता में रहकर आज आप लोग भी उसी प्रकार पिता जी तथा इरा की रक्षा में सफल प्रयत्न होंगे। आशा है कि आप लोग इनकी आज्ञा मानते हुए इस शुभ कार्य में अग्रसर होंगे।'

सैनिकगण यह सुनकर गोपाल तथा रामेंद्र दोनों का नाम ले कर जय जय पुकारने लगे। इसके अनंतर कुल सवार क्रमशः दुर्ग से बाहर निकल कर मैदान में इकट्ठे हो गए। गोपाल ने इसके दो भाग किए और उस स्थान की ओर बढ़ने लगे, जिसे उद्यान से लौटती हुई हूण सेना अवश्य पार करेगी। उस स्थान के दोनों ओर घने जंगल के सिवा पहाड़ियों के ऊँचे सिलसिले थे, जिससे शत्रु अगल बगल होकर भाग नहीं सकते थे। या तो वे युद्ध कर अपना मार्ग बनावें और गढ़ी पहुँचें या पीछे लौट जायँ। पर साथ ही गोपाल की सेना को भी पीछे ही हटने का अवसर था और वे 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि' निश्चय कर चुके थे। वहाँ पहुँच जाने पर एक भाग एक ओर के पहाड़ी सिलसिले के पास जंगल में छिपा दिया गया और दूसरा भाग दूसरी ओर। एक रामेंद्र के अधीन था और दूसरा गोपाल के। यह निश्चय हो गया था कि गोपाल जब तुरही बजाएगा तभी दोनों ओर से सवारगण डाकुओं पर धावा करेंगे।

उन लोगों के वहाँ पहुँचने के प्रायः एक घंटे बाद दूर से आते

हुए सवारों के शब्द आने लगे। इधर सब एक दम शांत हो गए और कुछ ही देर में आते हुए हूणराज भी दिखलाई पड़ने लगे। वे निश्चिंत थे तथा किसी प्रकार की आशंका उन्हें न थी, इस लिये वे बिना किसी व्यूह के बनाए हुए चले आ रहे थे और वे थके भी काफी थे इस लिये धीरे धीरे सुस्ताते हुए चल रहे थे। ये लोग उस स्थान के प्रायः मध्य में पहुँचे थे कि तुरही की तेज आवाज इन लोगों के कान में पड़ी। वे सब चौंक कर इधर उधर देखने लगे कि दोनों ओर से आक्रमण करती हुई घुड़सवार सेना का कोलाहल सुनाई पड़ा और देखते देखते दो सौ सवार उन पर आ टूटे। हूणराज तुरही की आवाज सुनते ही सतर्क हो उठा और उसने दोनों कैदियों को बीस सवारों के अधीन कर आज्ञा दी कि वे उन्हें सीधे मठ ले जाकर आचार्य रुद्रशिव को सौंप दें। इसके अनंतर फुर्ती से उसने अपनी सेना का व्यूह बनाना आरंभ कर दिया पर व्यूह बनते न बनते शत्रु की सेना उस पर आ टूटी और वह सामने तथा अगल बगल से घिर सा गया। यद्यपि उसने बहुत हाथ पैर मारे पर उसकी सेना सँभल न सकी और पीछे की ओर हटने लगी। गोपाल तथा रामेंद्र दोनों ही दोनों ओर अपनी सेना को उत्साह दिलाते हुए बड़ी वीरता से अपने सामने के शत्रुओं को द्वंद्व युद्ध में मार कर गिरा रहे थे। रामेंद्र शीघ्र ही थक गया पर गोपाल की निरंतर चलती हुई तलवार शत्रुओं में भय उत्पन्न कर रही थी। वह कहीं किसी के सिर को भुट्टे सा उड़ा देती थी, तो कहीं किसी का हाथ काट कर गिरा देती थी और कहीं बहका हुआ हाथ घोड़े के सिर पर पहुँच कर उसे भूमिशायी कर रहा था। हूण सैनिक उसके सामने से काई से फट कर भाग रहे थे। यह दृश्य देख कर हूणराज क्रोध से तड़प उठा और अपने सैनिकों को ललकार कर उसने गोपाल पर आक्रमण कर दिया। हूण सैनिक भी

अपने स्वामी को इस प्रकार आक्रमण करते देख क्रोध से भर उसके साथ दौड़ पड़े। रामेंद्र, गोपाल के दोनों मित्र और बहुत से सैनिक गोपाल की सहायता को आ पहुँचे और घोर युद्ध होने लगा। हूणराज तथा गोपाल का सामना हो गया और दोनों के द्वंद्व युद्ध को दोनों पक्ष के सैनिकगण मंत्रमुग्ध से हो देखने लगे। युद्ध रुक सा गया पर ऐसी अवस्था अधिक देर तक न रही। हूणराज थका हुआ था और क्रोध से अपनी स्थिति का विचार न कर वह चोट पर चोट करने लगा। गोपाल ने उससे कुछ ही देर अपनी रक्षा कर अपने घोड़े को कावा कटा दिया और प्रायः बीस कदम बढ़कर उसने घोड़े को घुमाया तथा इतने वेग से हूण के घोड़े से उसे ला टकराया कि वह इस धक्के से पृथ्वी पर जा गिरा और जब हूणराज की चलाई तलवार गोपाल के ढाल पर टकरा कर बेकार हो गई तब इसकी तलवार के चोट ने उसके दाहिने हाथ तथा पूरी छाती पर एक गहरी लाल लकीर खींच दी।

अब दोनों पक्ष के सैनिक क्रोध तथा उल्लास से भर कर घोर युद्ध करने लगे परंतु थोड़ी ही देर में हूण सैनिक हटने लगे और क्रमशः भागने लगे। गोपाल तथा रामेंद्र शत्रु को दबाते हुए उन्हें घेरने का प्रयत्न करने लगे, जिससे एक दम बचे हुए हूण सैनिकों ने भागना आरंभ किया। इन लोगों ने उनका पीछा किया, जो लड़ते उन्हें मारते और बाकी को कैद करने लगे। शीघ्र ही युद्ध समाप्त हो गया था और अब ये लोग कैदियों को खोजने लगे पर वे वहाँ थे ही नहीं, मिलें कहाँ से। युद्ध का फल यही निकला कि प्रायः डेढ़ सौ हूण सैनिक मारे गए या कैद हुए और गोपाल के प्रायः पचास सवार मारे गए या घायल हुए। इसने पहिले इन सैनिकों का प्रबंध करना उचित समझ कर सौ सवारों को वहीं रामेंद्र आदि के अधीन छोड़ा और आज्ञा दी कि अपने घायल

सैनिक उसी पार्वत्य स्थली में भेज दिए जायँ तथा मरे हुओं का वहीं संस्कार करा दिया जाय। हूण कैदी वहीं एक ओर निश्शस्त्र कर कैद रखे जायँ तथा उनकी पूरी रक्षा की जाय। यह आज्ञा दे कर वह पचास सवारों के साथ कैदियों की खोज में उसी ओर रवानः हुआ, जिधर से ये हूण आए हुए थे और उनकी भी कई टुकड़ी बना कर इधर उधर भेजा।

अष्टम परिच्छेद

जिस समय हूणराज ने उद्यान घेरा और फाटक तोड़ कर भीतर घुसा तथा युद्ध आरंभ हो गया उसी समय उद्यान से कुछ हट कर एक वृक्ष पर से एक मनुष्य बड़ी शीघ्रता से उतरा और सीधा त्रिपुरी की ओर दौड़ा। कुछ दूर पर एक वृक्ष से बँधा हुआ एक घोड़ा खड़ा था, जिसे खोल कर वह उस पर चढ़ बैठा और बड़ी तेजी से उसे राजधानी की ओर दौड़ाया। स्यात् वह उसी का अश्व था, जिसे सतर्कता के कारण उसने उद्यान से कुछ हट कर बाँध रखा था। यह घोड़े को भगाता हुआ जब फाटक के पास पहुँचा तब यह रोका गया पर इसने शीघ्र अपना परिचय दे कर आगे का मार्ग पकड़ा। यह नगर के उस भाग में पहुँचा जहाँ राजा के उच्च पदाधिकारी, सरदार तथा संपत्तिशाली प्रजा के निवास-स्थान बने थे। यह एक भारी अट्टालिका के सामने पहुँच कर उतरा और घोड़े को वहीं प्रहरी के पास छोड़ कर भीतर चला गया। यह स्थान उन्हीं मंत्री जी का था, जिन पर महाराज कर्णदेव वारेंद्रनारायणसिंह की रक्षा का भार छोड़ गए थे। यह नित्य कार्य से निपट कर अपने कमरे में आकर बैठे ही थे कि वह चर सामने पहुँचा और बड़े सम्मान के साथ अभिवादन कर उद्यान का समाचार सुना दिया। शत्रुसेना की संख्या का अंदाज पूछ कर वे तुरंत उठ खड़े हुए और पहिले एक पत्र लिख कर राजधानी के प्रधान सेनापति को भेजा तथा एक प्रहरी को कुछ आज्ञा देकर स्वयं भीतर चले गए। प्रायः पंद्रह मिनट में वह शस्त्रादि से लैस हो कर बाहर निकले तथा वहाँ द्वार पर दस सवार और एक कोतल घोड़ा

मौजूद पाया। उस चर को आगे कर मंत्री महोदय उसके पीछे चले और जब ये लोग नगर के बाहर पहुँचे तब पाँच सौ अश्वारोहियों की सेना एक प्रौढ़ सरदार की अधीनता में छावनी से आती हुई मिली। अधिनायक ने मंत्री जी का अभिवादन किया और अब यह कुल अश्वारोही दल उद्यान की ओर जाने लगा। जब ये लोग उद्यान तक पहुँचे तब वहाँ युद्ध की अशांति मिट गई थी इस लिये चर, मंत्रीजी तथा अधिनायक कुछ सवारों के साथ टूटे फाटक से भीतर गए और वहाँ का दृश्य देख कर स्तंभित हो गए। गहरी लड़ाई के चिह्न रूप मरे कटों के ढेर लगे थे। हूण सैनिक इन लोगों को देख कर घबड़ा उठे और महाराज की सेना से युद्ध करने का साहस न कर सके। मंत्री की आज्ञा पर उन सब ने शस्त्र रख दिए और वे सब राजधानी में कुछ सवारों की रक्षा में भेज दिए गए। वारेंद्र-नारायणसिंह के एक सैनिक को बुलवाकर इन लोगों ने सब हाल पूछा और मकान के चारों ओर तथा भीतर जा कर जाँच पड़ताल कर उद्यान के बाहर निकले।

अब मंत्रीजी ने कैदियों के छुड़ाने का विचार कर अपनी सवार सेना के पाँच भाग कर डाले और कुछ दूर हट हट कर और एक दूसरे से संबंध बनाए हुए ये लोग उस ओर कुछ फुर्ती से बढ़े, जिधर हूण डाकुओं के जाने का समाचार मिला था। ये हूण किसके नौकर थे, यह भी उनसे छिपा न था और वे जानते थे कि उसकी गढ़ी भी उसी ओर है। ये लोग प्रायः आठ दस मील आगे बढ़े थे कि गोपाल के अधीन जो पचास सवारों का दल कैदियों की खोज में घूम रहा था, उसकी एक टुकड़ी मिल गई, जो तुरंत घेर ली गई। इन लोगों से पूछ ताछ हो रही थी कि गोपाल भी अपनी टुकड़ी के साथ आ पहुँचे, क्योंकि अपनी एक टुकड़ी को उस सवार सेना में घिर जाते हुए उन्होंने देख लिया था। गोपाल के आते ही

चर ने मंत्री से कहा कि यही वे वीर युवक हैं, जिन्होंने पहिली बार दो सहायकों के साथ हूणों के पचीस सवारों को परास्त कर सामंत वारेंद्रनारायणसिंह तथा उनकी पुत्री को छुड़ाया था। मंत्रीजी तथा अधिनायक दोनों गोपाल से मिले और उनसे पूरे वृत्तांत से अवगत हो कर सभी वन में कई दल हो कर कैदियों की खोज में तत्पर हुए पर इसी समय एक सवार वेग से इन लोगों की ओर आता दिखलाई दिया। उसके पहुँचते ही गोपाल उसे पहिचान गए और पुकार कर पूछा 'सबलसिंह, कुछ पता चला कि कैदियों को डाकुओं ने कहाँ भेज दिया है।'

(सतर्कता से मंत्री और अधिनायक तथा उनकी सवार सेना को देखता हुआ) 'क्या, इन लोगों ने आपको भी कैद कर रखा है।'

'नहीं ऐसा क्यों कहते हैं, वे कहाँ हैं शीघ्र बतलाइए।

'पहिले हम लोगों ने आपस में जो धारणा बना रखी थी वह ठीक है। इसी लिये मैं कहने में हिचकिचा रहा था पर यदि ये लोग भी ससैन्य आए हैं तो प्रायः सभी बातों से अवगत होंगे ही। अस्तु, प्रायः बीस सवारों के साथ हमारे स्वामी तथा कुमारी इरा मठ के आचार्य रुद्रशिव के पास भेज दी गई हैं। मार्ग ही में यह पता ले कर मैं युद्धस्थल की ओर गया था और वहाँ से आपके इधर आने का समाचार पा कर चला आ रहा था कि आप यहाँ मिल गए।'

'मंत्रीजी, क्या आप मठ तक चल कर कैदियों को छुड़ाने का साहस कर सकेंगे? अपनी शक्ति समझ लीजिए क्योंकि रुद्रशिव का आपके राजदरबार में बड़ा मान है।'

'क्या कहूँ? पर महाराज की आज्ञा के विरुद्ध मैं चल नहीं सकता और चाहे कुछ भी हो सामंत तथा उनके परिवार की रक्षा के लिये मैं सब कुछ करने के लिये तैयार हो सकूँगा।'

'स्यात् ही आप ऐसा कर सकें क्योंकि अपने महाराज के पूज्यपाद आचार्य के सामने यह विचार दृढ़ न रह सकेगा।

'अब वहीं चलना चाहिए, सब ज्ञात हो जायगा'।

'परंतु ऐसी अवस्था में यह सब सेना ले कर आचार्य के पास एक धर्मसंस्था में जाना अनुचित होगा इस लिये (गोपाल से कुछ संकेत करते हुए) आप अपने ये सवार युद्धस्थल पर भेज दें कि मरे कटे लोगों का यथोचित प्रबंध करें। और मंत्री जी, यदि आप भी उचित समझें तो कुछ सेना साथ ले कर बाकी को छावनी भेज दें। आगे आप लोगों की जो आज्ञा हो।'

गोपाल—'उचित तो यही ज्ञात होता है। कैदियों का पता लग ही गया है और अब हम लोगों को आचार्य की सेवा ही में चलना है। क्यों मंत्री जी आप क्या विचार कर रहे हैं?'

मंत्री—'कुछ नहीं, ठीक राय है, हूण सेना केवल बीस ही है अतः अधिनायक जी, पचास सवार साथ रख लीजिए और दूसरों को जाने की आज्ञा दे दीजिए।'

यह प्रबंध हो जाने पर गोपाल तथा सबलसिंह और मंत्री तथा अधिनायक पचास सवारों के साथ मठ की ओर रवानः हो गए। ये लोग प्रायः एक घंटे में मठ के पास जा पहुँचे। मंदिर के पास प्रायः पंद्रह सोलह डाकू इकट्ठे बैठे हुए आराम कर रहे थे और उनके पास ही वृक्षों की छाया में २२ कोतल घोड़े लंबी डोरों से बँधे हरी घास चर रहे थे। इन लोगों को देख कर वे सभी उठ खड़े हुए और युद्ध के लिये उद्यत हो घोड़ों की ओर बढ़ ही रहे थे कि मंत्री तथा अधिनायक को पहिचान कर तथा राजसेना के साथ देख कर वे सब ठिठक कर खड़े हो गए। मंत्रीजी ने आगे बढ़ कर पूछा कि 'तुम्हारे कैदी कहाँ हैं और तुम लोग यहाँ क्या कर रहे हो।'

'सरदार की आज्ञानुसार हम लोगों के कुछ साथी कैदियों को मठ में पहुँचाने गए हैं और हम लोग उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'ठीक है पर अब राजाज्ञा है कि आप लोग जब तक महाराज युद्ध से नहीं लौटते तब तक राजसेना की रक्षा में रहें। उसके बाद महाराज की जैसी आज्ञा होगी, वह किया जायगा।'

'महाराज की आज्ञा सर्वोपरि है। हम लोगों को यह पता भी नहीं है कि हमारे सर्दार किस अवस्था में हैं और उनकी क्या आज्ञा है।'

'अस्तु, अब आप लोग शस्त्र रख दें और छावनी चले जायँ। आचार्य से मिल कर आने पर आगे के लिये प्रबंध किया जायगा।'

हूण सैनिकों ने आज्ञानुसार शस्त्र दे दिए और अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर दस अश्वारोहियों की रक्षा में नगर की ओर चले गए। इस बीच सबलसिंह गोपाल से धीरे धीरे कुछ कहते रहे। इसके अनंतर गोपाल ने यह बात जोर से कहा कि 'अच्छा इस बात का पता लगा कर शीघ्र ही हमें सूचित कीजिए। या तो हम यहाँ मठ में मिलेंगे या मंत्रीजी के यहाँ। अच्छा जाइए।

इतना सुन कर सबलसिंह बिना कुछ उत्तर दिए एक ओर घोड़ा उड़ाता चला गया। मंत्रीजी ने रोकना चाहा पर वे रोकने के लिये एक शब्द भी मुख से निकाल न सके थे कि वह चल दिया और उसे पुनः बुलाना या सवारों को भेज कर रोकना उचित है या अनुचित इसी विचार में थे कि वह दूर निकल गया। अब सब लोग घोड़ों से उतर पड़े और गोपाल, मंत्रीजी तथा अधिनायक चार सशस्त्र सैनिकों के साथ मठ के फाटक की ओर चल दिए और बचे हुए को वहीं सुस्ताने की आज्ञा देते गए।

जब ये लोग आँगन को लाँघ कर भीतर गए, उसी समय एक साधु, जो इन लोगों की प्रतीक्षा करते हुए ज्ञात हो रहे थे, इन

लोगों को एक दूसरे मार्ग से मठ से सटी एक बड़ी अट्टालिका में लिवा गए और उसके एक कमरे के द्वार पर इन लोगों को खड़ाकर भीतर सूचना देने चले गए। पाँच मिनट बाद आकर वह केवल गोपाल, मंत्रीजी तथा अधिनायक को साथ लिवा कर भीतर गए। इस कमरे में आचार्य रुद्रशिव का दर्बार सा लगता था। बीच में एक बड़ा ऊँचा मंच था, जिस पर चाँदी मढ़ी हुई थी और उस पर बीचोबीच एक बहुमूल्य ऊनी आसन बिछा हुआ था। इस मंच के दोनों ओर भूमि पर बहुत से आसन हर एक प्रकार के क्रमशः रखे हुए थे। मंच पर आचर्यवर न थे पर दस बारह मनुष्य वहाँ आसनों पर बैठे हुए थे। एक ओर आठ नौ साधुगण विराज-मान थे और दूसरी ओर सामंत वारेंद्रनारायणसिंह, कुमारी इरा तथा एक वृद्ध हूण सैनिक बैठे हुए थे। गोपाल तथा अधिनायक ने सामंत का अभिवादन किया और मंत्रीजी उनसे बराबरी से मिले। गोपाल तथा इरा दोनों आँखों ही आँखों मिल लिए। इसके अनंतर सबके बैठ जाने पर सामंत ने युद्ध का वृत्तांत पूछा और उससे अवगत हो जाने पर मंत्रीजी से बोले, 'मंत्रिवर, आपके तथा अधिनायकजी के कष्ट करने की क्या आव-श्यकता आ पड़ी, इसे आप क्या कृपा कर बतलाएँगे।'

'वीरवर, उस दिन जब आप खास दरबार से भावी आशंका का वर्णन कर चले आए तब महाराज अत्यंत विचलित हो उठे और आगे का सब कार्य रोक कर उठ खड़े हुए। अंतःपुर में जाते समय मुझे कठोर आज्ञा दे गए कि आपकी रक्षा का भार मैं स्वयं अपने ऊपर लूँ। न रक्षा होने पर मुझे क्या दंड मिल सकता है, इसका उल्लेख न कर ही महाराज ने उसकी भीषणता हम लोगों पर प्रकट कर दी थी। उसी समय से मैंने कितने चतुर चरों को आपके उद्यान की रखवाली करने को नियत कर दिया था। इन

अधिनायक को हर समय पाँच सौ सवार तैयार रखने की आज्ञा दे दी थी कि संकेत मिलते ही पाँच मिनट में वे यात्रा के लिये तैयार हो जायँ। बस पता लगते ही हम लोग निकल पड़े और आपके उद्यान में होते हुए और (गोपाल की ओर संकेत कर) इनसे मिलते हुए यहाँ आ उपस्थित हुए। पर आचार्यवर को क्या कुछ बतलाया नहीं गया।'

एक साधु से, 'वे कहाँ हैं ?'

'आते ही हैं, घबराइए नहीं।'

इसी समय मंच के पीछे का एक द्वार खुला और आचार्य रुद्रशिव बड़े रोब के साथ सोने की खड़ाऊँ पहिरे बाहर निकले तथा मंच की ओर बढ़े। सभी उपस्थित सज्जन उनके आदर के लिये उठ खड़े हुए और उनके बैठ जाने पर प्रणाम कर सब लोग बैठ गए। अब मंत्रीजी ने सारी बातें आद्योपांत कह डालीं, जो उन्होंने स्वयं देखा या सुना था और अंत में महाराज की आज्ञा भी बतलाई। यह सब सुन कर तथा कुछ देर सोचने के बाद आचार्यजी बोले—

'अवश्य ही, आपने मंत्रीजी, राजाज्ञा का पूरी तरह पालन किया है और इसके लिये आप प्रशंसा के पात्र हैं।'

'परंतु गुरुवर, महाराज के कालिंजर से लौटने में अभी विलंब है और तब तक के लिये सपरिवार इनकी रक्षा का भार हम पर है अतः यदि आप कृपा कर इन्हें हमारे ही गृह पर रहने की आज्ञा दे दें तो अतीव उत्तम है।'

'नहीं, अब इनकी रक्षा का भार हमने स्वयं ले लिया है, इस कारण आप चिंता छोड़ कर अपना राज्य-कार्य देखिए।'

'भगवन्, मेरे लिये राजाज्ञा ईश्वरीय आज्ञा से भी बढ़ कर है। मैं उसके विरुद्ध चल भी नहीं सकता। क्षमा करेंगे।'

अधिनायक से, 'अब इन लोगों को यहाँ से लिवा चलना चाहिए।'

'जैसी मंत्रीजी की आज्ञा।'

'परंतु मंत्रिवर, क्या तुम नहीं जानते कि महाराज भी मेरी आज्ञा मानते हैं और तुम उसका उल्लंघन कर मेरी अवज्ञा कर रहे हो। भूलते हो कि इस अवज्ञा का क्या दंड तुम्हें मिल सकता है।'

'मिल सकता है, पर उसे मैं सहर्ष सहन कर लूँगा क्योंकि वह एक राजाज्ञा पालन करने के उपलक्ष में मिलेगा। भगवन्, मैं तो पहिले ही समझ गया था कि इस सारे उपद्रव में आपका ही हाथ है पर मैं मौन था कि बिना कहे ही अपना कार्य पूरा कर लूँ पर आपकी आज्ञा सुन कर ही मुझे निश्चय हो गया है कि इनकी रक्षा आपके यहाँ नहीं है। आपने सामंत के पुत्र के विषय में कुछ चिंता भी न प्रकट की, इससे इनके उग्र कथन का कि डाकुओं का हम पिता-पुत्री ही को कैद करने का ध्येय था अधिक ठीक ज्ञात होता है। इसलिये मेरी आपसे बारबार नम्र प्रार्थना है कि आप राजाज्ञा पूरी होने दें। महाराज के आने पर आप मेरे लिये जो दंड विधान करेंगे वह मुझे शिरोधार्य होगा।'

'मंत्रिवर, आपकी बातों में कुछ तथ्य अवश्य है। पर मैं ऐसी आज्ञा क्यों दे रहा हूँ इसमें भी कुछ रहस्य है, जो सबके सामने प्रगट नहीं किया जा सकता। अच्छा आप तथा अधिनायक दोनों मेरे साथ आइए और उसे समझने के बाद जो निश्चय कीजिएगा वही किया जायगा।'

यह कह कर आचार्य उठे और उन दोनों को साथ लिवा कर उसी द्वार के भीतर चले गए, जिसमें से वे आए थे। वारेंद्रनारायणसिंह, गोपाल तथा इरा धीरे-धीरे आपस में बातें कर रहे थे कि आचार्य पुनः लौट कर आए पर मंत्री तथा अधिनायक साथ न

थे। आचार्य ने आते ही वृद्ध हूण को संबोधन कर कहा, 'अच्छा, तो तुम जाओ और हूणराज के कुशलपूर्वक गढ़ी में पहुँच जाने की सूचना तुरंत भेजवा देना।'

'जैसी आज्ञा।'

उस हूण के चले जाने पर आचार्य ने एक साधु की ओर देख कर कहा कि, 'इन लोगों के आतिथ्य का भार आप पर है। पास ही पास तीन कमरे इन लोगों के रहने के योग्य ठीक करा दें और ध्यान रखें कि इन लोगों को किसी प्रकार का कष्ट न हो।'

'महाराज, हम दोनों पिता-पुत्री आपके कैदी हैं, हम लोगों की रक्षा करना आपका धर्म है पर इस वीर युवक से इन सबसे क्या संबंध है। इन्होंने यौवन तथा साहस के कारण एक विपन्न की सहायता का प्रयास मात्र किया था। यह न जाने अपने किस कार्य से जा रहे थे कि मार्ग में यह बाधा पड़ गई, जिससे इनके कई दिन व्यर्थ चले गए। अब वह बाधा नहीं रह गई अतः इन्हें अपने कार्य पर जाने की आज्ञा दे दीजिए तो बहुत अच्छा हो।'

'इस विषय में आपसे अभी बातचीत करूँगा पर वह एकांत ही में होना ठीक है। अतः तब तक के लिये इन लोगों को जाने दीजिए। बातचीत करने पर जो निर्णय होगा वही किया जायगा।

'अस्तु, (गोपाल तथा इरा से) तुम लोग इन महात्मा के साथ जाओ, महाराज से बातचीत कर मैं भी आता हूँ।'

इन लोगों के चले जाने पर अन्य उपस्थित साधुओं को भी जाने का संकेत मिला और वे भी चले गए। अब आचार्य बोले—

'सामंत वारेंद्रनारायणसिंह, अब तक जो घटनाएँ इधर हुई हैं और जैसा बर्ताव आपके साथ हुआ है, उसे देखते हुए आप यही सोचेंगे कि यह सब आपके अहित के लिये शत्रुओं द्वारा हुआ

है पर वास्तव में बात यह नहीं है, यह सब आपके हितसाधन के लिये ही किया गया है।'

'अवश्य ही, आपके उपदेश से इतना तो अवश्य समझ गया कि इस हितसाधन में ही प्रायः डेढ़ दो सौ वीर सैनिक प्राण खो बैठे। कहीं अहितसाधन का विचार होता तो न जाने क्या उपद्रव मचता। इस उपदेश के लिये अनेक धन्यवाद।'

'आप रुष्ट न हों और पहिले कुछ बातें समझ लें तब यदि ठीक समझें तो अपना रोष प्रकट करें। संयोग ही ऐसा आ गया कि मार काट बहुत बढ़ गई, नहीं तो सेना की इतनी हानि की ध्यान में भी आशंका न थी। अब मैं आपसे मूल कारण ही बतला देना चाहता हूँ। कुछ दिन हुए कि आपकी पुत्री महारानी के दर्शन को गई थी। संयोग से राजकुमार यशःकर्णदेव भी माता के पास पहुँच गए और उन्होंने कुमारी इरा को वहीं देखा। वह उसके प्रेम में इतने वशीभूत हो गए कि खाना-पीना त्याग दिया। पिता से कहने का उन्हें साहस नहीं हुआ पर माता से सब वृत्त कह दिया। उसके अनंतर मुझसे सम्मति ली गई और अंत में यही निश्चय हुआ कि आपको अज्ञानावस्था में रखते हुए बुला कर इस विषय में सम्मति ली जाय। जब आप स्वीकृति दे दें तब महाराज से कह कर विवाह का प्रबंध कर दिया जाय। यह कार्य सुगमता से अब तक निपट गया होता, इतनी मार काट होहुल्लड़ न होती यदि यह मूर्ख युवक बीच में न आ कूदता।'

'अच्छा, तो आप हम लोगों को अपना कैदी बना कर इस कार्य की स्वीकारोक्ति बलात् लेना चाहते थे और स्यात् अब भी इसी विचार में हैं पर याद रखिएगा कि मैं क्षत्रिय हूँ, हैहय को पुत्री नहीं दे सकता चाहे वह सम्राट् हो या महाराज हो।'

'परंतु वीरवर, इसमें आपत्ति क्यों? हैहय की कन्या लेने में

आपत्ति हो सकती है, क्योंकि उस अवस्था में पूरे वंश के जाति से च्युत होने का भय रहता है पर कन्या देने में वैसा नहीं होने का। ऐसी अवस्था में अपनी पुत्री के हित के लिये आपको यह संबंध प्रसन्नता से कर लेना चाहिए। वही एक दिन त्रिपुरी का अधीश्वरी हो जायगी।'

'क्षमा कीजिए महाराज, आप ही से उपदेशकों ने स्वार्थरंजित सम्मति दे दे कर ही स्वदेश को क्या से क्या बना दिया है। पर आपकी इन थोथी बातों से मेरा जात्याभिमान डाँवाडोल नहीं हो सकता। सारे भारत के एक छत्र सम्राट् की अधीश्वरी बनना, यदि वह अन्य जाति है, तो, मेरी पुत्री अस्वीकार कर देगी। वह भी क्षत्रिय-कन्या है।'

'वीरवर, अभी आप रोष में भरे हुए हैं। शांत हो कर विचार करने के अनंतर आप जो कहेंगे वह किया जायगा।'

'पर उस युवक के संबंध में क्या होगा ? क्या वह भी कैद किया जायगा।'

'अभी उस युवक को भी मैं अपना अतिथि कुछ दिन के लिये रखूँगा, बाद को देखा जायगा।'

'हूँ।'

इसके अनंतर आचार्य ने एक घंटी बजाई, जिससे तुरंत एक हट्टा कट्टा साधु भीतर आकर खड़ा हो गया और संकेत पा कर वारेंद्रनारायणसिंह को लिवा कर चला गया।

नवम परिच्छेद

सबलसिंह गोपाल से अलग हो कर कुछ दूर वन में चले गए और एक साए की जगह में घोड़े को वृत्त से बाँध कर पुन: मठ की ओर लौट आए और मंदिर के पास एकांत स्थान में इन्होंने बैठ कर राजकीय सवारों पर दृष्टि रखी। कुछ देर के बाद एक साधु महोदय मठ से निकल कर इन सवारों के पास आए। सबलसिंह भी उठ कर उस भीड़ में घुस गए और उस साधु की बात सुनने लगे। साधु महाराज ने कहा कि आप लोगों को आज्ञा हुई है कि अपनी छावनी पर चले जायँ। मंत्री जी तथा अधिनायक संध्या तक लौट कर जायँगे या उनके विषय में कोई आज्ञापत्र अध्यत्त के पास भेजवा दिया जायगा।'

एक ने पूछा कि 'कैदी लोग यहीं रहेंगे।'

'उनके संबंध में कोई सूचना मुझे नहीं मिली है और यदि कुछ आवश्यकता होगी तो संध्या तक आप लोगों को समाचार मिल जायगा।'

इसके अनंतर वह साधु चला गया और वे सैनिक भी अपने अपने घोड़ों पर सवार हो कर चल दिए। केवल पाँच घोड़े वहाँ कोतल वृत्त में बँधे खड़े रह गए। सबलसिंह अभी कुछ देर तक ही उस मंदिर पर रुके थे कि कई मनुष्य आए और उन घोड़ों को खोल कर मठ के पीछे की ओर चले गए।

सबलसिंह कुछ चिंतित से हो कर लौटे और अपने घोड़े पर सवार होकर उद्यान की ओर चले। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि तीनों ही मठ में कैद रखे गए हैं पर मंत्री तथा अधिनायक क्यों रोके

गए यह उनकी समझ में न आया। वह सीधे उद्यान में पहुँचे और वहाँ जो बीस सैनिक नियत किए गए थे, उन लोगों को वहाँ के सब प्रबंध के विषय में समझा कर तथा घायलों की सेवा सुशुषा की ताकीद कर एक नया घोड़ा ले उसी सैनिक घाटी की ओर रवानः हुए। मार्ग में वह युद्धस्थल पर भी पहुँचे पर रामेंद्र आदि अपनी सेना तथा घायलों के साथ घाटी की ओर रवानः हो चुके थे और प्रायः बीस सैनिक अपने मृत साथियों के संस्कार करने के लिये वहीं ठहर गए थे। सबलसिंह यहाँ रुक गए और उस कार्य के निपट जाने पर यह उन्हीं सबके साथ घाटी की ओर चले। शत्रु के जितने घोड़े इधर उधर भकटते हुए मिले उन सबको भी ये लोग पकड़ कर साथ लेते गए और पुनः सैनिकों को भेज कर ऐसे सब घोड़ों को तथा युद्धस्थल पर पड़े हुए शस्त्रों को भी मँगवा लिया। सबल-सिंह का विचार था कि यथाशक्ति अधिक सेना एकत्र कर अपने स्वामी को छुड़ाने का पूरा प्रबंध करें।

इसके अनंतर सबलसिंह रामेंद्रनारायणसिंह के पास गए और गोपाल के दोनों साथियों को भी वहीं बुला लिया। अब सबलसिंह ने उस समय से, जब गोपाल पचास सवारों के साथ वारेंद्र-नारायणसिंह तथा इरा को खोजने रवानः हुए थे, आरंभ कर उनके कैद होने तक का कुल वृत्तांत सिलसिलेवार कह डाला और आगे के लिये क्या करना चाहिए इस पर अपना विचार यों प्रकट करने लगे।

'अवश्य ही मंत्रीजी तथा अधिनायक भी मठ में रोक लिए गए हैं। उन्होंने हमारे स्वामी को कैद करने में स्यात् बाधा डाली होगी क्योंकि महाराज की जो आज्ञा उन्हें मिली थी वह मैं सुन चुका हूँ। पर यह मठाधीश क्या महाराज की आज्ञा की अवहेलना कर सकता है?'

'नहीं। यद्यपि इसका मान बहुत है पर तब भी उनकी अनुपस्थिति में इस प्रकार आज्ञा न मानना यही स्पष्ट कह रहा है कि इस कार्य में महारानी तथा महाराजकुमार दोनों का हाथ है और इस तरह तीनों के मिल जाने पर महाराज की आज्ञा की अवज्ञा स्यात् हो सकती है क्योंकि तब वह इन सब पर एक साथ क्रोध प्रदर्शन में हिचकेंगे।' गोपाल के एक साथी ने कहा।

'हो सकता है कि ऐसा ही हो। अच्छा, मठ में रहने में पिता, इरा तथा गोपाल पर कोई आपत्ति आ सकती है।'

'आप लोगों के विरुद्ध जो षड्यंत्र चल रहा है उसका सार इतना ही है कि महाराजकुमार कुमारी इरा से विवाह करना चाहते हैं। यह भी वे लोग निश्चित रूप से जान गए हैं कि हमारे स्वामी इसे स्वीकार न करेंगे तथा महाराज उन पर किसी प्रकार का जोर डालना तो दूर रहा उनसे ऐसा प्रस्ताव भी न करेंगे। इसी लिये यह षड्यंत्र रचा गया है कि यदि बलात् यह विवाह हो जाय तो दोनों ही मौन ग्रहण कर लेंगे। अब यदि आप उसे आपत्ति समझें तो अवश्य आपत्ति है और उससे स्वामी की रक्षा करना हम लोगों का परम धर्म है।'

'ठीक है, आपत्ति पूरी है और इसके प्रतीकार के लिये यथासंभव शीघ्र प्रबंध करना चाहिए। अब हम लोगों को क्या करना चाहिए, यह भी आप ही बतलाइए। मेरी बुद्धि इसमें कार्य न करेगी।'

'आप केवल इतना प्रबंध देखें कि दो तीन दिन के बीच यथाशक्ति अधिक पर कम से कम तीन सौ सवार तैयार हो जायँ। तब तक मैं मठ में घुस कर कैदियों से बात-चीत आरंभ कर छुटकारे का ठीक समय निश्चित कर लूँ। आदमियों की डाक बना रखूँगा, जिसमें आपको हर समय का वृत्तांत मिलता रहेगा।'

'सबलसिंह, यदि आप हम लोगों को भी साथ रखें तो आपके कार्य में हम लोग बहुत कुछ सहायता दे सकेंगे। त्रुटि इतनी ही है कि हम लोग इधर बहुत ही कम आए हैं।'

'अच्छी बात है, तो आइए चलें।'

'अरे, अभी तो आप आ रहे हैं, कुछ सुस्ता कर तब जाइएगा।'

'नहीं कुमार, स्वामी के आपत्तिकाल में सेवकों को सुस्ताना वर्ज्य है और कार्य निपटने पर जन्म भर सुस्ताना ही तो है। साथ ही मैं सुस्ताता हुआ ही आ रहा हूँ।'

इतना कह कर तथा गोपाल के दोनों साथी और दो एक अन्य आदमियों को साथ ले कर सबलसिंह मठ की ओर रवानः हो गए।

इधर आचार्य रुद्रशिव वारेंद्रनारायणसिंह, इरा तथा गोपाल और मंत्रीजी तथा अधिनायक को नजरकैद कर अपने एकांत कमरे में आकर बैठे और अब तक के कार्यों के पूर्वापर पर विचार करने लगे। मामला बढ़ता जा रहा है, इतनी मार काट हो गई और अंत में मंत्रीजी को भी कैद करना पड़ा, जो महाराज की आज्ञा पालन कर रहे थे। इधर वारेंद्रनारायणसिंह ने विवाह संबंध अस्वीकार कर दिया है, अतः बलपूर्वक ही यह कार्य संपन्न हो सकेगा। महाराज यह सब बातें सुन कर क्या सोचें, क्या करें, अभी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इतना ही अच्छा है कि इस षड्यंत्र में महारानी तथा महाराजकुमार भी सम्मिलित हैं नहीं तो इस षड्यंत्र के कारण सम्मान में बट्टा लग जाता। परंतु अब आगे क्या किया जाय यह निश्चित करना आवश्यक है। इसके लिये महारानी तथा राजकुमार के साथ सम्मति कर लेना नितांत आवश्यक है।

इस प्रकार निश्चय कर आचार्य ने घंटी बजाई और एक साधु

के आने पर उसे आज्ञा दी कि 'अघोरशिव को आध घंटे में भेज दो।'

इसके अनंतर उसने महारानी को एक पत्र लिखा, जिसमें सब वृत्त लिख कर अंत में सूचित किया कि आज संध्या काल के अनंतर वह इस विषय पर सम्मति लेने के लिये आवेगा। इस पत्र को अघोरशिव द्वारा भेजने के अनंतर आचार्यजी भोजन तथा आराम करने में दत्तचित्त हो गए।

प्रायः संध्या हो चुकी थी जब आचार्यजी घोड़े पर सवार हो कर तथा चार पाँच शरीररक्षकों के साथ नगर की ओर चल दिए और एक घंटे में वह राजमहल के पास पहुँच गए। यह बड़े सिंहद्वार से भीतर न जा कर आगे बढ़े और प्रायः उसके पीछे पहुँच कर जनानी ड्योढ़ी पर पहुँचे। यहीं यह घोड़े पर से उतरे और घोड़े तथा सवारों को वहीं छोड़ कर एक परिचारिका के साथ, जो इन्हीं की प्रतीक्षा कर रही थी, भीतर गए। एक छोटा सा आँगन डाँक कर यह एक विशाल राजोद्यान में पहुँचे, जो अत्यंत ही रमणीक था। बीच में एक स्वच्छ जल का तालाब था, जिसके चारों ओर कुंज बने हुए थे। उद्यान पुष्पों के आधिक्य से महक रहा था। इसी उद्यान में होते हुए आचार्यजी एक कमरे में पहुँचे, जहाँ कई आसन रखे हुए थे। आचार्य जी एक आसन पर जा कर विराजमान हुए ही थे कि महारानी आवल्ल देवी तथा कुमार यशःकर्णदेव आ पहुँचे। दोनों ने आचार्य को प्रणाम किया और एक-एक आसन पर आसीन हो गए तथा कमरे में एकांत करा दिया गया।

अब रुद्रशिव ने पहिले विस्तार के साथ कुल बातें बतलाईं, जिनका उन्होंने पत्र में संक्षेप में उल्लेख मात्र किया था। इसके अनंतर वे बोले, 'महारानी, मुझे बड़ी शंका इस बात की हो रही

है कि महाराज इन सब बातों को सुन कर अवश्य ही बड़े रुष्ट होंगे और सभी पर रुष्ट होंगे। हम लोगों की सफलता तथा असफलता का भी उनके क्रोध पर कोई असर न होगा। उनका क्रोध अभी ही कुल बातें न जानने पर इस प्रकार भड़क उठा है तब कुल रहस्य जान लेने पर अपराधी को दंड देने में वे कुछ भी संकोच न करेंगे। आप दोनों तो सुरक्षित हैं पर और लोगों की भी रक्षा आप कर सकेंगी यह कहना कठिन है।'

'पर गुरुवर, अब बीच में कहाँ रुका जा सकता है।'

'क्यों नहीं, वारेंद्रनारायणसिंह आदि को छोड़ दिया जाय और उनसे सब बातें बतला कर क्षमा प्राप्त कर ली जाय, जिससे वे महाराज से अपना दावा उठा लें।'

'नहीं, महाराज की प्रकृति ऐसी नहीं है। वे जब तक कुल बातें न जान लेंगे, कभी चुप न बैठेंगे। वारेंद्रनारायणसिंह भी ऐसी अवस्था में यहाँ रहना कभी ठीक न समझेंगे और यहाँ से चले जाने ही में वे अपनी भलाई मानेंगे। फल यही होगा कि यह सब प्रयत्न निष्फल हो जायगा और दंड के संबंध में जो अब होना है वही तब भी होगा।' महारानी ने कहा—

'साथ ही आचार्यवर, क्या आप मेरी इच्छा पूरी करने का वचन दे कर पीछे हट सकेंगे? आपही के भरोसे मैं सुचित्त हो कर बैठा हूँ और आप इस प्रकार की बातें कर रहे हैं। आपसे दूरदर्शी राजनीतिकुशल तथा प्रभावशाली पुरुष इस जरा सी बात में इतना हिचक रहे हैं, यह मेरा दुर्भाग्य ही है।'

'नहीं नहीं, ऐसा नहीं है पर सब बातें समझते हुए चलना ही नीतियुक्त है। देखो, मंत्रीजी तथा अधिनायक को भी मैंने इसी कार्य के लिये रोक रखा है, क्योंकि वे महाराज की आज्ञापालन करने ही का हठ कर रहे थे और यह उनका धर्म भी है। क्या

कहूँ, न जाने किस अशुभ साइत में इस कार्य में हाथ डाला गया है कि कोई न कोई बाधा आपसे आप आ पड़ती है, नहीं तो यह कार्य कभी का पूरा हो गया होता। मैंने यह रुकने की चर्चा इसी लिये चलाई थी कि स्यात् इन बाधाओं के आ जाने के कारण आप लोगों की राय भी कुछ बदल न गई हो।'

'नहीं, हम लोगों का विचार कुछ भी नहीं बदला है और अब शीघ्र यह कार्य पूरा कर डालना ही उत्तम है। पिता पुत्री दोनों ही आपके यहाँ हैं इस लिये वहीं विवाह का प्रबंध करना उचित होगा।'

'अच्छी बात है पर वारेंद्रनारायणसिंह ने कोरा जवाब दे दिया है अतः उनकी ओर से एक ब्राह्मण कन्यादान का संस्कार पूरा करेगा। सब लग्न आदि देख कर सूचना भेजूंगा।'

'शुभस्य शीघ्रम् का ध्या रखिएगा।'

'(मुस्किराते हुए) अब घबड़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि गोपाल भी कैद हो चुका है। केवल एक रामेंद्र स्वतंत्र है। हमारी ओर से पूरी सतर्कता रखी गई है। एक सप्ताह के भीतर ही सब कार्य संपन्न हो जायगा। अस्तु, अब चलें।'

'आप किसी प्रकार की शंका मन में न रखें, महाराज को समझा लेना मेरा काम है। किसी बात के पता लगने के पहिले ही मैं अपनी ओर से पूरा विवरण दे कर उन्हें इस प्रकार समझा दूँगी कि बाद को कोई कुछ भी कहे पर उन पर उन सबका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिये जितने लोग इस रहस्य को जान गए हों और अपने पक्ष में न हों, उन्हें कैद रखना चाहिए।'

'तब आपकी राय है कि मंत्री तथा अधिनायक भी कैद रखे जायँ या आपकी आज्ञा बतला कर अपने पक्ष में कर लिए जायँ।'

'ठीक है, यही उचित है।'

यह कह कर महारानी उठ खड़ी हुईं, और रुद्रशिव भी उठ कर तथा दोनों को आशीर्वाद दे कर कमरे के बाहर चले आए। उसी परिचारिका के साथ उद्यान पार कर महल के बाहर निकले और घोड़े पर सवार हो मठ की ओर चल दिए। उनके जाने के बाद एक मनुष्य, जो दूर पर आड़ में खड़ा हुआ था, उन सवारों के पीछे-पीछे चला पर मठ के पास पहुँच जाने पर वह बाईं ओर मुड़ा और प्रायः एक मील जाने पर एक छोटी सी झोपड़ी के पास पहुँचा, जो घने वृक्षों के बीच बनी हुई थी। यहाँ इसे एक साधु बाबा मिले, जो बड़े आडंबर के साथ तिलक मुद्रा आदि से सुसज्जित थे। उसने आ कर इन बाबाजी से अपना सब वृत्तांत कह दिया और फिर अपने काम पर चला गया।

दशम परिच्छेद

कालिंजर का सुप्रसिद्ध दुर्ग विंध्याचल के एक विशाल खंड पर निर्मित हुआ है, जो विंध्य पर्वतमाला से प्रायः आध मील दूर पर स्थित है। इस खंड का नीचे का भाग बड़ा ढालुआँ है पर ऊपरी भाग प्रायः डेढ़ दो सौ फुट ऊँचा एक दम सीधा अत्यंत विशाल दीवाल सा खड़ा है। यह प्रायः सर्वत्र दुर्भेद्य तथा दुर्गम है। ऊपर की भूमि लगभग तीन चार मील के घेरे में समतल सी है, जिसका कुछ ही अंश कहीं कहीं ढालुआँ हैं। यह दुर्ग एक प्रकार की प्रकृति की देन है और केवल जहाँ जहाँ ऐसे स्थान हैं कि वे अति कठिनाई से चढ़े जा सकते हैं वहाँ पत्थरों की दृढ़ प्राचीर बना कर उसे दुर्गम बना दिया गया है। अन्यत्र साधारण प्राचीर से ही काम चला लिया गया है। इस मैदान में अच्छी खासी बस्ती है और उसके एक भाग में कालिंजराधिप के बड़े बड़े महल, उद्यान आदि बने हुए हैं। बस्ती में विशेषतः राजकर्मचारियों और सरदारों के निवास-स्थान तथा राज्य-संबंधी इमारतें हैं।

कालिंजर राज्य की प्रजा अधिकतर दुर्ग के नीचे की तथा आस-पास की बस्तियों में बसी हुई है। उस समय कालिंजर का राज्य प्रभूत ऐश्वर्यशाली था और प्रजा भी धन-धान्य पूर्ण थी तथा शांतिपूर्वक अपने अपने व्यवसाय में लगी हुई थी। दुर्ग में जाने का एक मात्र मार्ग दक्षिण-पूर्व की ओर ढालू तथा घूमता हुआ ऊपर गया है, जो अनेक फाटकों तथा बुर्जियों से दृढ़ किया गया है। इन फाटकों पर बराबर कड़ा पहरा रहता है, जिससे कोई शत्रु एकाएक उस मार्ग से आक्रमण कर ऊपर नहीं जा सकता।

ठीक दोपहर का समय था कि एक मनुष्य, जो दूर से आया हुआ ज्ञात होता था, उस मार्ग के प्रथम फाटक पर आया और घोड़े पर से उतर कर तथा वहाँ के एक संतरी को उसे सौंप कर ऊपर चढ़ने लगा। वह यथाशक्ति शीघ्रता से ऊपर चला जा रहा था पर कड़ी ढाल होने के कारण उसे ऊपर पहुँचने में बहुत समय लग गया। अंतिम फाटक पार कर जब वह मैदान में पहुँचा तब उसने दीर्घ स्वाँस लिया और चाहता था कि राजमहल की ओर का मार्ग ले कि उसी समय उसने सीतासेज गुफा की ओर से दो तीन साधुओं की एक टोली को आते देखा। वे 'नमः शिवाय' कहते हुए फाटक ही की ओर आ रहे थे। वे पाँच ही मिनट में इसके पास आ पहुँचे और इसके दंडवत करने पर उनमें से एक ने पूछा।

'क्यों बच्चा कुशल तो है, घबड़ाए हुए क्यों हो?'

'कुछ नहीं बाबाजी, आप लोगों को आते देख कर दर्शन को रुक गया था। आप लोग दुर्ग के बाहर कहीं जा रहे हैं?'

'हाँ बेटा, नीचे नदी तक जाने का विचार है। स्नान ध्यान कर के लौटेंगे।'

'एक प्रार्थना है कि संध्या के पहिले ही लौट आइएगा।'

'क्यों, क्या बात है, क्या कुछ रात्रि में भय है?'

'नहीं, दुर्ग में आ जाने पर तो भय नहीं रहेगा पर बाहर रहने में हो सकता है।'

'स्पष्ट बतला दो बच्चा, साधुओं से छिपाने की क्या बात है।'

'शत्रु पास आ गया है। आशा है कि रात्रि होते होते दुर्ग घिर जांय, इसी लिये मैंने प्रार्थना की थी कि संध्या के पहिले ही आप लोग दुर्ग में लौट आवें।'

'शत्रु, हमारे महाराज का कौन शत्रु ऐसा प्रबल हो गया है

कि ऐसे अभेद्य दुर्ग को घेरने का दुस्साहस कर बैठेगा। तुम्हारा भ्रम हो सकता है।'

'नहीं महाराज, अधिक बतलाने का न समय है और न वैसा कर सकता हूँ। प्रणाम।'

'भगवदेच्छा बलीयसी, नमःशिवाय।'

वह पुरुष यह कह कर राजमहल की ओर चल दिया और साधुओं की टोली फाटक से हो कर दुर्ग के नीचे उतर चली। वह पुरुष प्रायः आध घंटे में राजद्वार पर पहुँच गया और प्रधान प्रहरी से कुछ बात कह कर उसने भीतर प्रवेश किया। फाटक के भीतर के आँगन में दाईं ओर घूम कर वह एक कमरे में पहुँचा, जिसमें एक सैनिक पदाधिकारी दो एक मित्रों के साथ बैठा हुआ बातचीत कर रहा था। इसने जाते ही उस सेनानायक का अभिवादन किया और उसने भी इसे पहिचान कर अभ्युत्थान दे कर बैठाया और कहा, 'कहिए शिवराजजी, क्या समाचार है। आप बहुत थके हुए ज्ञात हो रहे हैं।'

'बात बहुत गोपनीय है और अत्यंत शीघ्रता का कार्य भी है अतः यदि आप शीघ्र अमात्यजी के यहाँ चलें तो ठीक है। यद्यपि कष्ट तो होगा पर कार्य अत्यावश्यक है और प्रत्येक पल मूल्यवान है।'

'ऐसी बात है, तो आइए चलें, वहाँ सब सुन भी लेंगे।'

'चलिए।'

अब ये दोनों शीघ्रता से वहाँ से रवानः हुए और कमरे से निकल कर अमात्य के गृह पर पहुँचे। अमात्यजी अभी भोजन कर सो रहे थे पर इन दोनों ने शीघ्रता कर उन्हें जगवाया। जब वे बाहर आ कर क्रुद्ध से अपने कमरे में बैठे तब सेनानयक ने चरराज की ओर देखा। वह पुरुष बोला—

'मंत्रिवर, इधर दो तीन दिनों से दुर्ग में कुछ नए मनुष्यों को देख कर मुझे शंका हो रही थी, जिससे मैंने उनका पता लगाना आरंभ किया। कई चरों को नीचे की बस्तिओं में भेजा है और स्वयं अन्य दो तीन के साथ दुर्ग में खोज करता रहा। कल रात्रि में प्रायः दो बजे के समय बड़े गणेश मंदिर के पास मैंने दो मनुष्यों को बात करते सुना पर केवल एक वाक्य सुन पड़ा कि 'कल रात्रि तक दुर्ग अवश्य घिर जायगा।' मैं यह सुनते ही चौकन्ना हो गया और उन दो की खोज में बहुत देर तक मैंने टक्कर मारा पर फिर वे न मिले। न मालूम कहाँ अँधेरे में चल दिए। घर लौटने पर नीचे भेजा हुआ एक चर मिला, जिससे ज्ञात हुआ कि दक्षिण ओर की बस्ती के एक मकान में कुछ ऐसे लोग आ कर रह रहे हैं, जो अज्ञात हैं और युद्ध व्यवसायी मालूम पड़ते हैं। यह समाचार पा कर मैंने यह निश्चय किया कि दुर्ग को घेरनेवाली सेना बहुत बड़ी ही हो सकती है और आज ही घेरने के लिये वह आस पास भी आ गई होगी। इसलिये उसका पता लगाना आवश्यक समझ दुर्ग के चरों को सतर्क कर बाहर चल पड़ा। नीचे पहुँच कर मैंने कई मनुष्यों को कई ओर भेजे और स्वयं दक्षिण की ओर गया क्योंकि मुझे आशंका उसी ओर की थी। अज्ञात शत्रु दक्षिण की बस्ती में मिले थे और त्रिपुराधिप से कुछ पत्र-व्यवहार भी इस प्रकार का हुआ है, जिससे उसी ओर से युद्ध छिड़ने की आशंका हो सकती थी। प्रायः सात आठ कोस जाने पर मुझे शत्रु सेना का अग्गल मिला, जो पूरे वेग से आ रहा था। वे लोग दुर्ग से चार कोस पर आ कर रुक गए। वह सेना महाराज कर्णदेव की है और वह स्वयं सेनापतित्व कर रहे हैं। आज रात्रि में दुर्ग घेर लिया जायगा। इतना पता ले कर मैं शीघ्रता से लौटा पर आते आते यह समय हो गया।

'कितनी सेना होगी।'

'बीस सहस्त्र से कम नहीं है और अधिक से अधिक पच्चीस हो सकती है।'

यह सुन कर अमात्य जी उठे और इन दोनों को साथ लेकर वह राजमहल की ओर चल दिए। महाराज भी महल में आराम कर रहे थे पर अमात्य के अत्यंत आग्रह पर समाचार भीतर भेजा गया और वह जगाए गए। इसी बीच अमात्य ने राज्य परिषत् के अन्य सदस्यों को भी बुलवा लिया और ये लोग अभी मंत्रणागृह में एकत्र हुए ही थे कि महाराज भी आ गए और आते ही पूछा कि, 'क्या है प्रधानजी, जो इस समय परिषत् को बुला रखा है। क्या कोई आपत्ति आ गई है?'

'देव, ऐसा ही है और इसी कारण ऐसे समय श्रीमान् को कष्ट दिया गया है।'

'क्या है?'

'शिवराज, अपना वृत्तांत कह डालो।'

आज्ञा पा कर चर शिवराज ने वही कुल वृत्तांत दुहरा डाला, जो अमात्य जी से वह कह चुका था। यह वृत्त सुनकर परिषत् में सन्नाटा सा हो गया। महाराज कीर्त्तिवर्मा बोले कि,

'यह आक्रमण बड़े कुसमय में हुआ है। हमारी सेना का एक बड़ा भाग पूर्व की ओर गया हुआ है और दुर्ग में तथा आस पास केवल छ सात सहस्त्र सेना बची हुई है। समय भी कुछ ही घंटे का है और इसी बीच जो कुछ प्रबंध किया जा सकता है वह कर लेना चाहिए। पहिले तो आप एक आज्ञापत्र सेनापति को भेज दें कि वह शीघ्र लौटें और सतर्कता से पास आकर घेरने वाली सेना से युद्ध कर घेरा उठाने का प्रयत्न करें। नीचे की कुल सेना एकत्र होकर सेनापति वीरवर्मा की अध्यक्षता में कटरा में स्थान

बना कर वहीं से शत्रुसेना को यथाशक्ति हानि पहुँचावें और सेनापति शत्रुदमन सिंह दुर्ग की रक्षा का पूरा प्रबंध कर लें। इसके सिवा दुर्ग में सामान की जो कमी हो और इतने समय में पूरी की जा सके उसका शीघ्र प्रबंध कर लिया जाय।'

महाराज इतना कह कर उठ खड़े हुए और महल में चले गए। राज्यपरिषत् कुछ देर तक वहाँ बैठा रहा। आवश्यकतानुसार आज्ञापत्र लिख लिख कर भेज दिए गए और जो कार्य तीन चार घंटे के बीच में होने योग्य थे, उनका प्रबंध शीघ्रता के साथ किया गया। इसके अनंतर ये लोग भी उठ उठ कर अपने अपने कार्य पर चले गए।

प्रायः संध्या हो चली थी कि त्रिपुरी की सेना दुर्ग के पास आ पहुँची और महाराज कर्णदेव की छावनी दुर्ग से एक कोस हट कर पड़ गई। इन्होंने पाँच सहस्र सेना दुर्ग के फाटक के सामने भेज दी, जिसने वहाँ पहुँच कर मोर्चेबंदी कर ली। इसके अनंतर दो दो सहस्र सेना की चार टुकड़ियाँ भेज कर दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। इन सब भागों में संपर्क बराबर बनाए रखने का पूरा प्रबंध भी कर दिया गया। इस प्रकार सब प्रबंध कर लेने पर महाराज कर्णदेव अपने खेमे में जब आराम से बैठे तब बचे हुए सेनापतियों को बुला कर मंत्रणा करने लगे। महाराज बोले,

'ऐसा ज्ञात होता है कि शत्रु सतर्क नहीं थे और घेरे के लिये वे तैयार नहीं हो सके हैं। ऐसी अवस्था में विजय शीघ्र होने की संभावना है। पर शत्रु-सेना क्या सब दुर्ग के भीतर ही है?'

'मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है क्योंकि यदि शत्रु को कुछ पहिले यह सूचना मिल जाती कि त्रिपुरेश्वर ससैन्य दुर्ग घेरने चले आ रहे हैं तो रणनीति के अनुसार शत्रु तुरंत ससैन्य आगे

बढ़ कर मार्ग रोकने और दुर्ग आदि को सामान आदि से सुसज्जित करने का अवसर निकाल लेते। पर स्यात् उन्हें सूचना मिली ही नहीं।'

'वास्तव में यही बात हो सकती है क्योंकि हम लोग बड़ी सावधानी से आ रहे हैं और महाराज की आज्ञानुसार इस बात का पूरा प्रबंध रहा है कि शत्रु को हम लोगों की यात्रा का कुछ भी पता न लग सके।'

'यदि यह बात सच हो तो शत्रु को शीघ्र ही दुर्ग दे देना पड़ेगा क्योंकि तब कालिंजर में कम से कम दस पंद्रह सहस्र सेना होगी और ऐसी हालत में शीघ्र ही वहाँ अकाल पड़ जायगा।'

'नहीं, कालिंजर दुर्ग बहुत बड़ा है और उसमें जल तो काफी हुई है, अन्न भी कम नहीं होता। हाँ यह अवश्य है कि इतनी सेना रहते कुछ दिन में अन्नकष्ट हो जायगा पर इतने दिन व्यर्थ पड़े रहना ठीक नहीं है, कल दुर्ग पर आक्रमण किया जायगा। पर धूर्तराज चरपति कहाँ हैं, उसने क्या कार्रवाई कर रखी है, उसे बुलवाइए।'

इसी समय खेमे के द्वाररक्षक ने आ कर अभिवादन किया और कहा कि, 'चरपति बाहर खड़े हैं और भीतर आने की आज्ञा माँग रहे हैं।'

'आने दो।'

इस प्रकार आज्ञा पा कर एक पुरुष भीतर आया और महाराज को अभिवादन कर तथा संकेत पा कर सरदारों के पास ही बैठ गया। उसने कहा कि, 'आज ही दुर्ग में आती हुई हमारी सेना का पता लगा है और वह भी प्रायः चार पाँच घंटे पहिले। दुर्ग में सेना केवल दो तीन सहस्र ही है और बाकी कुल सेना बाहर है। वह भी दो जगह में बँटी है। एक छोटा भाग पश्चिम

की ओर यहाँ से दस कोस पर है और दूसरा बड़ा भाग पूर्व की ओर विद्रोही जमींदारों को दमन करने के लिये गया हुआ है। दोनों भागों को आज ही आज्ञा भेजी गई है कि वे सुसज्जित हो कर घेरनेवाली सेना को आकर हटाने का प्रयत्न करें।'

'दोनों सेनाओं की संख्या क्या होगी?'

'पश्चिम की तीन चार सहस्र और पूर्व की दस सहस्र के लगभग होगी।'

'अच्छा, दुर्ग में कुछ प्रबंध किया है।'

'हाँ देव, आज्ञानुसार लगभग एक सौ सैनिक अनेक वेश में दुर्ग के भीतर हैं, जो समय पर फाटकों के तोड़ने में सहायता देंगे। जब जिस फाटक पर आक्रमण होगा, उसी समय कुछ लोग भीतर से शत्रु में मिल कर फाटक के पास पहुँच जायँगे और उसे तोड़ने में भीतर की ओर से पूरी सहायता देंगे। केवल सबसे नीचे के फाटक पर वैसा न हो सकेगा क्योंकि वहाँ कोई ऐसा स्थान नहीं मिला, जिसमें वे छिप कर ठहर सकें।'

'ठीक है, कोई हर्ज नहीं। अच्छा, तुम्हें चार पाँच चर ऐसे देने होंगे जो दोनों शत्रुसेना का ठीक पता दे सकें। हम दो सेनाएँ दोनों ओर भेजेंगे, जो शत्रुसेना को उस समय तक रोके रहे, जब तक दुर्ग टूट न जाय। दुर्ग पर कल ही आक्रमण होगा अतः दोनों सेनाएँ प्रातःकाल ही अपने कार्य पर चली जायँगी। प्रतापसिंह, आप पाँच सहस्र सेना ले कर पश्चिम की ओर जायँ और रणवीरसिंह अन्य दस सहस्र सेना ले कर पूर्व की ओर प्रयाण करें। आप दोनों का मुख्य कार्य शत्रु को रोकना है, क्योंकि दुर्ग टूटने पर वे स्वतः भाग जायँगे पर यदि शत्रु युद्ध पर ही तुल जायँ तो आप लोग उसे परास्त करने का प्रयत्न करें। कल प्रातःकाल पाँच बजे ठीक आप लोग कूच कर दें। जाइए और

उचित प्रबंध देखिए। आप भी चरों का प्रबंध कर प्रातःकाल यहाँ इस खेमे में उपस्थित रहिए।'

तीनों आज्ञानुसार अभिवादन कर जब चले गए तब महाराज कर्णदेव ने प्रधान सेनापति रणंजयसिंह की ओर देखा और बोले, 'कल दुर्ग पर आक्रमण हो और उसमें सफलता भी मिले ऐसा ही प्रबंध करना चाहिए। इसके लिये चुने हुए साहसी सैनिक आगे रहें और साथ ही कुछ सैनिक फाटक तोड़ने के लिये योग्य शस्त्र भी साथ रखें। एक फाटक के टूटने पर उसकी रक्षा का भार एक-एक योग्य नायक को कम से कम दो दो सौ सैनिकों के साथ दिया जाय और वे पहिले से ही निश्चित कर दिए जायँ, जिससे वे तुरंत उस कार्य पर दत्तचित्त हो जायँ। भीतर की ओर से हमारे सैनिक-गण सहायता कर सकें या न कर सकें उनका विचार छोड़ कर प्रबंध कीजिए, जिसमें विजय में कुछ भी शंका न रह जाय। आक्रमण के समय हम भी साथ ही चलेंगे। इसके लिये यदि आपको भी कुछ कहना हो तो कहिए।'

'उचित ही आज्ञा है, देव! पहिले ही से इन कुल आदेशों का प्रबंध कर लिया जायगा।'

इसके अनंतर परिषत् के समाप्त होते ही महाराज आराम करने चले गए।

एकादश परिच्छेद

दूसरे दिन प्रायः छ बजा होगा, सूर्योदय हो रहा था कि त्रिपुरी की सेना में कुछ हलचल हुई और कई सहस्र सेना ने कालिंजर दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। सैनिकगण उत्साह के आधिक्य से दुर्ग की पहाड़ी, विशाल दीवाल, पर चढ़ जाने का प्रयास कर रहे थे पर वह सब बेकार था। अंत में सब फाटक के पास इकट्ठे हुए और घोर युद्ध होने लगा। इधर की तीर की बौछार के विरुद्ध फाटक की आड़ से तथा उस पर से शत्रु सेना तीर, पत्थर आदि की वर्षा कर रही थी और छोटी पहाड़ी सा फाटक अटल बीच में खड़ा दोनों पक्ष को युद्ध करने से रोक रहा था। कुछ देर बाद सेनानायक अचलदेव बड़ी-बड़ी ढालों को सिर पर रखे चुने हुए दो सौ बलवान सैनिकों के साथ फाटक तोड़ने वाला यंत्र लिये हुए अचल धैर्य के साथ फाटक की ओर बढ़े। तीर तथा पत्थर की वर्षा इस गुल्म का कुछ न कर सकी। दो चार सैनिक भारी पत्थरों से चोट खा कर गिरे पर दूसरों ने उनका स्थान ले लिया और वे फाटक पर पहुँच गए। अब उस यंत्र द्वारा बड़े वेग के साथ फाटक पर टक्कर दिए जाने लगे और कुछ ही देर में फाटक चरचरा कर टूटने लगा। भीतर की ओर बड़ी फुर्ती से शत्रु पत्थर ला कर फाटक को पाट देने का प्रयास कर रहे थे पर वे सफल न हो सके और फाटक टूट कर भीतर की ओर जा गिरा, जिससे कई सैनिक दब गए। सैनिकों ने मार्ग रोका पर सैनप अचलदेव एक बड़े परशु को घुमाते हुए उन पर टूट पड़े और उनके आघातों तथा उनकी भयंकर मार से शत्रु के पैर उखड़

गए और वे पीछे हटने लगे। अचलदेव के पीछे-पीछे सेना भी भीतर घुस आई और जम कर युद्ध होने लगा। इस फाटक तथा इसके बाद के दूसरे फाटक के बीच में काफी ढालू भूमि थी और उसमें प्रायः एक घंटे तक जम कर तलवार चली। यह समाचार सुन महाराज कर्णदेव स्वयं प्रथम फाटक पर आ गए और उनकी उपस्थिति से उनकी सेना ने भयानक उल्लास से भर कर ऐसे कड़े आक्रमण किए कि शत्रु बाध्य हो कर दूसरे फाटक की ओर हटने लगे। संख्या भी उनकी कम हो रही थी। कर्णदेव ने कुछ ताजे-दम सैनिकों को एक सेनानायक के अधीन कुछ समझा कर भेजा, जो किसी से बिना युद्ध किए, एक ओर से घूमते हुए दूसरे फाटक के पास पहुँच गए और क्रमशः शत्रु सेना में मिल गए। दूसरा फाटक अपने पक्ष के सैनिकों को भीतर लेने के लिये खुला ही था कि सेना वेग से भीतर घुसने लगी और उसके भीतर आते ही फाटक के बंद करने का उपक्रम किया जाने लगा पर वह पूरा नहीं हो सका। महाराज के भेजे सैनिकगण, जो फाटक में घुसते समय उसी के पास एकत्र हो गए थे, रक्षकों पर टूट पड़े और उन्हें बंद करने नहीं दिया। सैनप ने तुरंत अपनी झंडी दिखलाई और त्रिपुरी की सेना अचलदेव के पीछे-पीछे उस फाटक के भीतर पहुँच गई।

यहाँ भी कुछ ही देर में अचलदेव ने अपनी अद्भुत वीरता से शत्रु को परास्त कर दिया और तीसरे फाटक पर शत्रु के पीछे-पीछे पहुँच गए। इस बार अपनी सेना भीतर लेने के लिये फाटक नहीं खोला गया और उस पर से तीर तथा पत्थरों की गहरी मार पड़ने लगी। अचलदेव ने यंत्र लाने की आज्ञा दी पर इसी समय महाराज कर्णदेव दूसरे फाटक पर आ पहुँचे और तीसरे फाटक पर तुरंत आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। आक्रमण हुआ और अचलदेव

अपने विशाल परशु से फाटक पर चोट पर चोट करने लगे। उन्हें तीर तथा पत्थर से कुछ चोट सी आई पर इसी बीच बड़े वेग से झनझना कर फाटक भीतर की ओर खुल गया, जहाँ पाँच छ सैनिक बड़े धैर्य से शत्रुओं को रोक रहे थे। अचलदेव तथा उनके साथ बहुत से सैनिक भीतर घुस गए और शत्रु पर टूट पड़े। यहाँ शत्रुसेना अधिक न थी और काफी स्थान भी न था इसलिये ये लोग धावा करते हुए चौथे फाटक पर जा पहुँचे।

चौथा और पाँचवाँ फाटक भी प्रायः इसी प्रकार भीतरी सैनिकों की सहायता से, जो चरराज की चतुरता से पहिले से ही फाटकों के पास उपस्थित थे, सुगमता से हाथ में चले आए पर छठे फाटक पर गहरी लड़ाई हुई। यहाँ मैदान भी काफी पड़ता था और कालिंजर की प्रायः एक सहस्र सेना सम्मुख युद्ध के लिये फाटक के बाहर सुसज्जित खड़ी थी। पहिले शत्रुसेना के एकाएक धावे पर थकी हुई त्रिपुरी की सेना टक्कर खा कर पीछे हटने लगी। अचलदेव बड़े धैर्य के साथ जम कर युद्ध करते रहे और उनके परशु ने बहुत से शत्रु को काट गिराया। यह बहुत थक गए थे और अत्यंत घायल भी हो गए थे। अकेले ही उन्होंने शत्रु के एक बड़े झुंड को रोका था और बहुत से शत्रु सैनिकों को मार गिराया था। उसी समय नई सेना कई सरदारों के अधीन आ पहुँची और घोर युद्ध आरंभ हो गया। महाराज कर्णदेव की आज्ञा से अचलदेव हट आए और दुर्ग के बाहर सुस्ताने तथा घावों की दवा कराने के लिये चले गए। प्रायः दो घंटे के गहरे युद्ध के अनंतर शत्रु की आधी सेना खेत रही और बचे हुए लड़ते-भिड़ते पीछे हटते हुए छठे फाटक के भीतर चले गए। साथ ही इधर की सेना ने पहुँच कर फाटक पर अधिकार कर लिया। महाराज कर्णदेव ने यहाँ पहुँच कर कुछ देर के लिये युद्ध बंद कर दिया

और सबेरे से लड़ती हुई कुल सेना नीचे भेज दी तथा नई कई सहस्र सेना बुलवा कर उनके स्थान पर नियत कर तब आक्रमण की आज्ञा दी। यह विशाल फाटक दुर्ग की दृढ़ प्राचीर के बीच में निर्मित था, जिस पर से तथा प्राचीर की ओट से दुर्ग के बचे हुए कुल सैनिक पत्थर तीर आदि की बाहरी शत्रु के पास पहुँचते ही वर्षा करने लगे। इस भयंकर मार से इधर की सेना फाटक तक पहुँच पहुँच कर हट आती थी। महाराज कर्णदेव ने चुने हुए धनुर्धरों को दुर्गसेना पर तीर चलाने के लिये नियत किया और इन सबने यथासाध्य प्राचीर के पास पहुँच कर तीरों की बौछार आरंभ कर दी। यह युद्ध कुछ देर तक चलता रहा, जिसमें दोनों पक्ष के बहुत से वीर मारे गए तथा घायल हुए। अंत में पुनः बड़े वेग से फाटक पर धावा हुआ और वही यंत्र काम में लाया गया। महाराज के निरीक्षण में सैकड़ों सैनिक 'बड़ी बड़ी ढालों की आड़ किए हुए उस यंत्र की फाटक पर चोट पर चोट करने लगे। फाटक भी अत्यंत दृढ़ था पर अंत में वह चरचरा कर टूटा और भीतर ही की ओर गिरा। शत्रु ने भीतर की ओर इतने पत्थर इकट्ठे कर रखे थे कि वह फाटक गिर कर भी मार्ग रोकता रहा। पर साथ ही उसी के कारण कुछ सैनिक शत्रु के तीर पत्थर की बौछार से सुरक्षित होकर फाटक में घुस गए और उस विशाल फाटक के पल्लों को उलट कर तथा पत्थरों को इधर उधर हटा कर मार्ग बना लिया और दुर्ग में घुस पड़े। दुर्ग के सैनिकों ने बड़े धैर्य तथा वीरता से आक्रमणकारियों को रोका और फाटक के पास गहरी मार काट हुई। लोथों तथा घायलों के ढेर के ढेर फाटक के पास लग गए पर अब त्रिपुरी की चुनी हुई नई आई हुई वीरवाहिनी ने वेग से धावा किया, जिससे दुर्ग की सेना पीछे हटने लगी और वे भीतर धारा के

समान घुस पड़े। अब ज्यों ज्यों मैदान मिलता गया, त्यों त्यों इधर की सेना बढ़ती गई और अंत में दुर्ग की सेना से कई गुनी सेना भीतर जा पहुँची। महाराज कर्णदेव भी दुर्ग में पहुँच गए और दुर्ग की सेना पूर्णतया परास्त हो कर दुर्ग में फैल गई। संध्या हो गई थी, इसलिये महाराज कर्णदेव ने युद्ध बंद करने की आज्ञा दे दी और अपनी सेना को जहाँ जहाँ वे हों सशस्त्र आराम करने की आज्ञा दी। कई सौ सैनिकों को रात्रि में रक्षा के लिये स्थान स्थान पर नियत कर दिया और दो अनुभवी सेनापतियों को अध्यक्षता सौंप कर नीचे चले आए।

दूसरे दिन सवेरा होते ही महाराज कर्णदेव दुर्ग में पहुँचे और उस समय इनकी पाँच सहस्र सेना दुर्ग में युद्ध के लिये सजग खड़ी थी। कालिंजर के प्रधान मंत्री तथा प्रधान सेनापति ने युद्ध करना नीतियुक्त न समझा क्योंकि उनके पास अब एक सहस्र भी सेना युद्ध के योग्य नहीं बच रही थी। अंत में वे संधि के लिये महाराज कर्णदेव के पास उपस्थित हुए, जिन्होंने इसके लिये स्वयं कहलाया था। यथानियम अभिवादन करने के अनंतर इन्हें बैठने की आज्ञा मिली और तब महाराज ने इनसे पूछा,

'कालिंजराधिपति ने क्या कहा है, आप निश्शंक कहें।'

'महाराज तो इस समय दुर्ग में हैं नहीं क्योंकि एकाएक की इस चढ़ाई का समाचार पाते ही और दुर्ग में सेना तथा सामान की कमी होने से वे हम दोनों को दुर्ग की रक्षा का भार सौंप कर बाहर चले गए। राजन्, आपका दुर्ग पर अधिकार हो गया है और बची हुई थोड़ी सेना को असमान युद्ध में कटा देना हम दोनों अनुचित समझते हैं अतः आपकी आज्ञा हो तो हम लोग दुर्ग खाली कर दें।'

'आश्चर्य है कि इतनी सतर्कता रखते हुए भी वे पता पाकर

निकल गए। आपके पास कोई आज्ञापत्र इस आशय का है।'

'देव उपस्थित हैं।'

यह कह कर मंत्रीजी ने एक आज्ञापत्र कमरबंद से निकाल कर दे दिया, जिसे पढ़ कर कर्णदेव अत्यंत क्षुब्ध हो गए। उन्होंने शत्रु सैनिकों को शस्त्र रख कर दुर्ग के बाहर जाने की आज्ञा दे दी और अपने सैनिकों को दुर्ग की रक्षा के लिये स्थान स्थान पर नियत किया। सेनापति अचलदेव दुर्गाध्यक्ष नियुक्त किए गए और दिन भर दुर्ग में महाराज की खोज की गई क्योंकि त्रिपुरी के चरराज का यही कथन था कि महाराज कीर्तिवर्मा को उसने या उसके किसी अनुयायी ने दुर्ग के बाहर जाते नहीं देखा। राजमहल के प्रत्येक कमरे तथा उसके बाहर के सभी उद्यान आदि कोने कोने खोज डाले गए पर कहीं पता न चला। अंत में संध्या होते होते यह निश्चित हो जाने पर कि कीर्तिवर्मा भी दुर्ग में नहीं हैं, महाराज कर्णदेव दुर्ग के नीचे चले आए और रात्रि के लिये चारों ओर रक्षकदल सेना नियत कर आराम किया।

इसके अनंतर दो तीन दिन तक दुर्ग में तथा उसके चारों ओर कुछ दूर तक कालिंजर के राजपरिवार की खोज होती रही पर कहीं पता नहीं लगा। महाराज ने जो दो सेनाएँ शत्रुसेनाओं को रोकने के लिये भेजी थीं वे भी लौट आईं और उन्होंने सूचना दी कि दुर्ग के टूटने का समाचार मिलते ही शत्रुसेना अस्तव्यस्त हो भाग खड़ी हुई। सभी सैनिक अपने अपने गृह चले गए, अब कोई शत्रुसेना ही नहीं रह गई।

इसी समय के लगभग त्रिपुरी के चर ने सूचना दी कि सामंत वारेंद्रनारायणसिंह उक्त राज्य छोड़ कर अपने निवासस्थान को लौट आए और उसने वहाँ जो घटनाएँ घटी थीं तथा उनका जो कुछ आभास पा सका था, बतला दीं। महाराज ने इस उपद्रव तथा

अन्याय के कारण कुछ भी इस समय सामंत से बोलना अनुचित समझा तथा यह भी ध्यान में रखा कि अब कालिंजर राज्य भी हमारा है इसलिये अब भी सामंत उन्हीं के आश्रय में हैं। इस कारण राजधानी पहुँचने पर तथा कुल घटनाओं का ठीक ठीक पता लेकर ही कुछ कहना न्याय्य होगा।

इन सब विचारों के साथ साथ राजधानी के दक्षिण के किसी अनुगत राज्य में उपद्रव होने का समाचार भी आ रहा था अतः महाराज कर्णदेव ने कालिंजर में व्यर्थ रुकना उचित नहीं समझा और दुर्ग-विजय के छठे दिन दक्षिण की ओर ससैन्य यात्रा आरंभ कर दी।

द्वादश परिच्छेद

मठ के पूर्व की ओर सटा हुआ एक विशाल प्रासाद है, जिसके भीतर कई गृह, उद्यान, मंडप आदि हैं। इन्हीं में एक छोटा पर दृढ़ गृह है, जिससे संलग्न एक छोटा उद्यान भी है। इसी में वारेंद्रनारायणसिंह, इरा तथा गोपाल तीनों को ठहराया गया है, जिसे एक प्रकार उनका कारागार भी कहा जा सकता है। उद्यान के बीच में एक छोटा सा जलाशय है, जिसके चारों ओर कुंज तथा क्यारियाँ बनी हैं और पुष्पों के अनेक प्रकार के पौधों से वह छोटी इमारत महकती रहती है। इमारत में चार कमरे बाग की ओर खुलते हैं और इन चारों के ठीक मध्य में एक मार्ग है, जिससे लोग उस उद्यान में आते जाते हैं। यह सर्वदा भीतर की ओर से बंद रहता है पर इस ओर से बंद करने का कोई प्रबंध नहीं है। इन कमरों के ऊपर जाने की जो सीढ़ी है, उसका द्वार भी दृढ़ ताले से बंद किया हुआ है। इन लोगों को यहाँ रहते हुए तीन दिन व्यतीत हो गए थे और आज ही प्रातःकाल मठाधीश का एक शिष्य सूचना दे गया है कि आज के तीसरे दिन कुमारी इरा के विवाह का लग्न राजकुमार यशःकर्णदेव के साथ निश्चित हुआ है और यदि सामंत वारेंद्रनारायणसिंह स्वतः इस शुभ कार्य को पूरा न करेंगे तो उनके अभाव में ब्राह्मण द्वारा यह कार्य संपन्न करा दिया जायगा। इसी सूचना पर विचार करने के लिए ये तीनों एक कमरे में एकत्र हैं।

'भाग्य क्या नह [illegible] ला सकता। कालिंजर राज्य में हमारे पूर्वजों की कई पीढ़ियाँ राजसुख भोगती रहीं और हमने भी अपने

जीवन का बड़ा भाग वहीं सुख से व्यतीत किया पर आज यह अवस्था है कि जन्म तथा पूर्वजों के गृह आदि को त्याग कर विदेश में आश्रय लिया और यहाँ भी अधिक दिन तक सुख से कालयापन न कर सके।

'पिताजी, आपको कालिंजर छोड़ने की क्यों आवश्यकता पड़ी। क्या कोई विशेष कारण था? आप एकाएक चले आए यह याद है। उस समय मैं इतनी समझ नहीं रखती थी।'

'बेटी, तुम्हें अपनी बूआ की याद है।'

'कौन, वही जो महारानी कहलाती थीं। हम पर बड़ा स्नेह रखती थीं। उन्होंने क्या किया?'

'यदि मेरे सुनने योग्य न हो तो मैं कुछ देर के लिये बाहर चला जाऊँ।'

'नहीं, नहीं, तुमसे कुछ भी गोपनीय नहीं है और न रहेगा। तुम्हें रामेंद्र से कुछ घट कर समझना हमारी घोर कृतघ्नता होगी।'

'यह बात न कहें तभी अच्छा है क्योंकि इससे परायापन ज्ञात होता है, जो मुझे खटकता है। अपने लोगों से कैसी कृतज्ञता या कृतघ्नता? जब अपरिचित थे तब थे, अब उसकी याद न रखी जाय तभी ठीक है।'

'तब आपने बाहर जाने का प्रश्न क्यों छेड़ा? आप ही तो आरंभ करते हैं और फिर पिताजी पर आक्षेप करते हैं।'

'ठीक है, हमारी भूल थी। क्षमा कीजिएगा।'

'(मुस्किरा कर) अच्छा हो गया। बात यह थी कि महाराज विजयपाल के दो विवाह हुए थे। प्रथम धर्मपत्नी मेरी बहन भुवन-देवी हैं, जिनसे एक पुत्र देववर्मा थे और दूसरी रानी से यह वर्त्त-मान नरेश कीर्तिवर्मा हुए। पर देववर्मा की शीघ्र ही मृत्यु हो गई। उन्हें संतान न थी पर उनकी पत्नी गुर्विणी थीं। अतः

कीर्तिवर्मा को गद्दी मिली। अवस्था में बड़े थे और वही गद्दी पर भी बैठे तब भी उन्हें यह शंका बनी रहती थी कि पुत्र होने पर हम उसे राज्य दिलाने का प्रयत्न करेंगे। इस शंका का सूत्रपात अंत:पुर से ही हुआ था और यह बढ़कर हमारे विरुद्ध षड्यंत्र हो पड़ा। हमारे जीवित रहते यह शंका मिट नहीं सकती थी अतः हमी को समाप्त करने का प्रयास आरंभ हुआ। इसका पता हमें अपनी बहिन से मिला और उनकी सम्मति हुई कि हम कुछ दिन के लिए इस राज्य से हट जायँ। उन पर हमारे न रहने पर कोई आपत्ति न आ सकेगी, इसका उन्हें दृढ़ निश्चय था। अतः हमने गुप्त रूप से तुम्हें तथा रामेंद्र को लेकर दुर्ग का त्याग किया और यहाँ त्रिपुरी राज्य में आकर आश्रय लिया। अब देववर्मा की पत्नी मृतपुत्र प्रसव कर मर गई, जिसके लिए मैं दंडनीय समझा गया था।'

'तो अब आप कालिंजर जाकर अपने गृह पर रह सकते हैं। गृहत्याग का कोई कारण, अब, नहीं रह गया।'

'पर जानते हो कि कर्णदेव ने कालिंजर पर चढ़ाई की है और राज्यपरिषत् में जो कुछ बातचीत मैंने सुनी है, उससे उन्हीं के सफलप्रयास होने की विशेष आशंका है। इरा को लेकर जो यहाँ यह षड्यंत्र चल रहा है, उसमें महाराज कर्णदेव का हाथ नहीं है, ऐसा ही हम समझते हैं। वह वीर पुरुष ऐसे उपायों को ध्यान में नहीं ला सकते। यदि उनकी इच्छा होती तो वह स्वतः हमसे कह कर हमारी इच्छा जान लेते। इन थोड़े ही दिनों में उनका हम पर बहुत विश्वास बढ़ गया है पर इधर की इन सब मार काट और षड्यंत्र से, जिनमें महारानी, राजकुमार तथा उनके गुरुवर सभी सम्मिलित हैं, उनके व्यवहार पर क्या असर पड़ेगा, कुछ

निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हम तो समझ रहे हैं कि कोई तीसरा आश्रयस्थल न खोजना पड़े।'

'इसके लिए चिंता ही क्या है? वीर पुरुष का सर्वत्र ही आदर है। पर इस समय जो आपत्ति सामने है, उसे दूर करने का उपाय सोचना है।'

'हाँ, पहिले तो इससे बचना है। शुद्ध क्षत्रियवंश की कुमारी का कैसे अन्य जाति में विबाह हो सकता है? इससे तो वंश मर्यादा ही मिट जाती है। यह किसी प्रकार नहीं हो सकता। शोक है कि हम सब निश्शस्त्र हैं।'

'तब भी क्या हर्ज है, दो चार मनुष्य कुशलपूर्वक यहाँ से कुमारी इरा को लेकर नहीं चले जा सकते। आप घबराइए मत, तीन दिन में बहुत कुछ हो सकता है। सबलसिंह बहुत ही तीव्र-बुद्धि तथा आपके पूरे स्वामिभक्त सेवक हैं, वह कुछ उठा न रखेंगे। हम लोग भी यदि उनकी सहायता कर सकें तो अच्छा ही है।'

इस प्रकार बात समाप्त होने पर गोपाल वहाँ से उठे और इरा से कुछ संकेत कर कमरे के बाहर निकल गए। थोड़ी देर बाद इरा भी उठी और कमरे से निकल कर उद्यान में घूमने चली गई, जहाँ गोपाल उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। अब ये दोनों उद्यान में चारों ओर टहलते हुए उसकी चहारदीवारी तथा कमरों के ऊपर के छत का निरीक्षण करने लगे। इन सबके दूसरी ओर क्या है, उधर से निकल जाने का मार्ग मिल सकता है या नहीं, इन्हीं सब पर बातचीत भी करते जाते थे। इरा ने एकाएक कहा,

'सबलसिंह को इस बात का शीघ्र पता कैसे लग सकेगा कि इस विशाल प्रासाद में हम लोग कहाँ कैद हैं और इसका पता लगाने में उन्हें बहुत दिन लग जायँगे। क्या हम लोग इस कार्य में उनकी कुछ सहायता कर सकते हैं?'

'क्या सहायता की जा सकती है, यहाँ कोई पेड़ भी नहीं है कि उस पर चढ़ कर बाहर की ओर देखा जाय। दीवाल यद्यपि काफी ऊँची है पर यदि एक पुरुष किसी दूसरे पुरुष के कंधे पर चढ़ कर देखे तो भली प्रकार देख सकता है। तुम्हारे पिता से कह नहीं सकता पर यदि तुम उचित समझो तो हमारे कंधे पर चढ़ कर देख सकती हो।'

'चलिए, यह भी हँसी का कोई अवसर है।'

'नहीं नहीं, हम हँसी नहीं कर रहे हैं, आपत्तिकाल में ऐसा करने में हर्ज नहीं है। हम तीन कैदियों के सिवा बाहर के भी लोग स्वतंत्र होते हुए इस आपत्ति में फँसे हुए हैं। ऐसी अवस्था में सबकी रक्षा के विचार से इस कार्य में संकोच या लज्जा करना अनुचित है। यहाँ कोई देख भी नहीं रहा है और समझता हूँ कि हम पर तुम्हारा विश्वास भी कम नहीं है।'

'यदि धनुष तीर होता तो कुछ पत्र लिख कर उसी से प्रासाद के बाहर फेंक दिया जाता। सबलसिंह तथा उसके गण अवश्य ही चारों ओर पता ले रहे होंगे और वह किसी न किसी को मिल ही जाता।'

'इसके लिए भी हमारा प्रस्ताव आवश्यक है। किस ओर खुलता है और किस ओर कितनी ऊँची रुकावट है, इसका भी जानना जरूरी है नहीं तो फेंका हुआ पत्र शत्रु के हाथ में पड़ कर हमारी हानि ही करेगा। क्यों इरा, तुम हमारा इतना अविश्वास करती हो, क्या हम अकारण ही तुमसे ऐसा कह रहे हैं?'

'नहीं, नहीं, रुष्ट मत होइए। हम इसी विचार में पड़ी हैं कि ऐसा करना क्या नितांत आवश्यक है। अविश्वास का प्रश्न इसमें क्यों उठाते हैं, संकोच या लज्जा अवश्य रोक रही है। क्या करूँ यही नहीं समझ पड़ता।'

'तब आओ, वाद विवाद में व्यर्थ समय बीत रहा है। हम देखो यहाँ बैठते हैं, तुम कंधे पर दीवाल के सहारे खड़ी हो जाओ और उसी के सहारे रहना जब हम उठें और तब बाहर की ओर क्या है देख लेना।'

यह कह कर गोपाल ठीक दीवाल के पास जा बैठा और इरा सकुचाई हुई उसके कंधे पर चढ़ गई। गोपाल उसे लिए हुए धीरे धीरे उठ खड़ा हुआ तब इरा ने, जिसका केवल शिर दीवाल के ऊपर निकला हुआ था, बाहर की ओर ध्यान से देखा और उतरने के लिए संकेत किया। गोपाल बैठ गया और वह उतर पड़ी। उसका मुख लज्जा से रक्ताभ हो पड़ा था और कुछ सकुचाती हुई उसने कहा कि 'इस ओर तो छोटा उद्यान तथा बाद को ऊँचा मकान है। उसके बाद क्या है, नहीं मालूम होता।'

इसके अनंतर अन्य दो ओर भी देखा गया पर केवल एक ओर दीवाल के बाद खुलता मैदान दिखलाई पड़ा। जिस ओर कमरे थे उनके दूसरी ओर इमारतें हैं, यह ये लोग जानते ही थे अतः उसी ओर पत्र फेंकने की राय निश्चित हुई। अब धनुष तीर बनाने की राय होने लगी। टहलते टहलते उद्यान में एक पौधे के पास ये लोग रुके, जिसके डंठल कड़े, लंबे तथा उँगली के इतने मोटे थे। गोपाल ने उसमें से चुन कर एक डंठल तोड़ लिया और कई पतले पतले भी चुन लिए। इन सबको ले कर ये लोग अपने कमरे में आए और उसका एक कामचलाऊ धनुष शीघ्र तैयार कर लिया। लिखने पढ़ने का सामान तो था नहीं पर किसी प्रकार सफेद वस्त्र के एक टुकड़े पर ब्योरा लिख कर तथा तीर धनुष लेकर पुनः ये लोग उद्यान में गए। संध्या हो चली थी और कुछ कुछ प्रकाश था तभी उस पत्र को एक तीर में बाँध कर गोपाल ने उसी मैदान की ओर धनुष चढ़ा कर फेंक दिया तथा तुरंत कमरे

में लौट आए। धनुष और तीरों को उद्यान ही में एक पौधे के बीच में छिपाते आए। अब कमरे में बैठ कर दोनों बात करने लगे।

लज्जा के साथ 'देखिए इस निरीक्षण का हाल किसी से न कहिएगा।'

'एक से छोड़ कर किसी से भी न कहेंगे, इसके लिये हम वचन देते हैं।'

'किससे कहेंगे? किसी से मत कहिएगा नहीं तो ठीक नहीं होगा।'

'ठीक हो या न हो पर उससे तो हम अवश्य कहेंगे और बार-बार कहेंगे।'

'जैसी इच्छा, एक से कहा या दस से कहा, दोनों बराबर हैं। अच्छा मैं चलती हूँ।'

'कहाँ चलीं, पहिले पूछा तो हुई नहीं कि किससे कहूँगा, बस रुष्ट हो कर 'चलती हूँ' कह दिया। धन्य हैं, यह सब प्रेम ऊपरी दिखावट भर था।'

'मुझे पूछने से मतलब ही क्या? किसी से कहिए, मुझे उसके जानने की आवश्यकता ही क्या पड़ी है? जरा सी एक बात कहा सो माना नहीं, उस पर हमीं को दोष देते हैं। हमने आपका कहना मान लिया, यही हमारा वास्तव में दोष है।'

'छी, जरा सी हँसी में इतना कोप और मान। अरे हम तुम्हीं को कह रहे थे कि तुमको रोज कह कह कर चिढ़ाएँगे, तुमको छोड़ कर किसी दूसरे से न कहेंगे और तुम एक दम रुष्ट हो गई।'

'बातें मत बनाइए, हँसी में बात मत उड़ाइए, कहिए किससे कहना चाहते हैं?'

'इरा, क्या तुम समझती हो कि तुमसे हम झूठ बोलेंगे। हमें

और है कौन दूसरा जिससे कहने जायँगे। अब तो तुमसे हँसी करने में भी डर लगेगा।'

'नहीं नहीं, हम समझे नहीं थे, हम किसी पर अविश्वास नहीं रखते और न किसी को झूठा समझते हैं तब आपको कैसे समझेंगे ? क्षमा कीजिएगा पर यह अनवसर की हँसी थी, इसी से उस ओर ध्यान नहीं गया। अब आप मत रुष्ट होइएगा।'

'रुष्ट होना चाहते तो थे पर आपने पहिले ही रोक दिया। (हँस कर) पर अब हम दोनों को साथ ही प्रसन्न हो जाना चाहिए।'

'(मुस्किरा कर) सब कार्य क्या साथ ही हुआ करेगा ?'

'इरा, चाहते तो हम यही हैं पर भाग्य के लेख को कौन घटा बढ़ा सकता है। इतना हम तुमसे सत्य ही कह देते हैं कि हमने एक मात्र तुम्हीं को अपना हृदय अर्पण किया है और इस जीवन में अब वह किसी दूसरे का नहीं हो सकता। तुम भी हमसे प्रेम करो, इसके लिए कभी हम तुम्हें बाध्य न करेंगे। हम ब्राह्मण हैं या क्षत्रिय, यह भी निश्चय नहीं और आपके पिता के विचार क्या हैं, यह हम जानते हैं। ऐसी अवस्था में तुम हमसे प्रेम न करो, यही ठीक है। न जाने अंत में क्या हो और तुम्हें हमारे कारण कष्ट पहुँचे।'

'प्रेम न माँगने से मिलता है और न रोकने से रुकता है। प्रेम के कारण सुख भी होता है और कष्ट भी। (लज्जा के साथ) आपका प्रेम एकांगी नहीं है, यह जान कर भी क्यों ऐसा कहते हैं ? हम पितृ-विरोधी हो नहीं सकतीं अतः कष्ट सहना होगा तो दोनों ही को। सहनशीलता में स्त्री-पुरुष में कौन बढ़ कर है इस निर्णय का अवसर नहीं है। अभी से इस बात को छेड़ने की आवश्यकता

ही क्या है। आपत्तियों से तो हम लोग आप ही घिरे हैं, इससे छुटकारा पाने पर उस पर भी विचार किया जायगा।'

'हाँ, इसमें कोई शंका नहीं। देखें हम लोगों का पत्र किसी को मिलता है या नहीं। अब केवल एक दिन बीच में रह गया है। शस्त्र के नाते यहाँ पौधों के डंठल भर हैं।'

'(सोचती हुई) यदि बाहर से सहायता न पहुँचे तो हम लोगों को क्या करना चाहिए। शस्त्र हैं नहीं, नहीं तो दस बीस मनुष्य हम लोगों को यों कैद नहीं रख सकते। (मुस्किराती हुई) क्यों, यदि आचार्य का प्रस्ताव मान लिया जाय तो क्या हर्ज है? कम से कम पिताजी तथा आपको छुटकारा मिल जायगा। हमारा बलि-दान हो जाने दीजिए।'

'यदि त्रिपुरी की राजरानी बनने की आपकी इच्छा प्रबल हो तो अवश्य प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए पर आपके पिता ही इसमें वाधा डालेंगे। आप उन्हें ही समझा लें।'

'तुम्हें जब स्वीकार है, तब तुम्ही उन्हें भी समझाओ।'

'नहीं, इतने महत्व का कार्य मैं नहीं ले सकता।'

'हमारे राजरानी बनने में तुम्हें क्यों ईर्ष्या होती है?'

'ईर्ष्या क्यों, आप सुख से रहें यही मेरी सदिच्छा बनी रहेगी पर मैं स्वयं इस बीच में न पड़ूँगा।'

'ठीक है, समझी। जानते ही हो कि पिताजी से मैं कुछ न कह सकूँगी, उनके सामने इस विषय में एक शब्द भी न बोल सकूँगी। यहाँ अब तुम्हारे सिवा दूसरा और कोई हई नहीं और तुमने साफ अस्वीकार कर ही दिया। अब मैं कैसे राजरानी बन सकती हूँ। (हँस कर) यह सब प्रेम ऊपरी दिखावट मात्र था।'

'नहीं, ऐसा नहीं, यदि आपकी यही इच्छा है, तो जाता हूँ। देखूँ, यदि वे मान जायँ।'

'(मुस्किराती हुई) तब चले कहाँ ? यदि ऊपरी मन से प्रयत्न करोगे तो काम न होगा। पहिले सब बात तो समझ लो, पूरा प्रस्ताव तो सुन लो।'

'कहिए, मैं सावधान हूँ।'

'मेरा प्रस्ताव यही है कि परसों सबेरे पिताजी सूचित कर दें कि वह राजकुमार से अपनी पुत्री का विवाह करने को तैयार हैं, किसी ब्राह्मण से ऐसा शुभकार्य कराना ठीक नहीं है। ऐसा कह देने पर हम लोग सभी उस अवसर पर एक साथ रह सकेंगे।'

'मैं तो न रहूँगा। यहीं कारागार में पड़ा रहूँगा या बाहर निकल जाऊँगा।'

'सुनो भी। कम से कम मठ के भीतर दो चार ही सैनिक रहेंगे और कुछ लोग सशस्त्र भी हो सकते हैं। ऐसे समय अवसर देख कर हम लोग उनके शस्त्र छीन लेंगे और फिर देखेंगे कि कौन हम लोगों का मार्ग रोकता है।'

'(प्रसन्नता से) इरा, इरा, यही प्रस्ताव करना था तो पहिले हमें क्यों दिक कर रही थीं, क्या हमारी हँसी का बदला ले रही थीं।'

'जी श्रीमान्, तभी न आप भागने लगे थे।'

'फिर आप आप शुरू किया, पहिले की तरह तुम कहो।'

'तुम तुम तो इसी लिए कर रही थी कि हमारा विनोद समझ जाओ पर क्रोध में कुछ ध्यान रहे तब न। अब तो आप आप कहूँगी, तुम कहने से क्रोध कीजिएगा।'

'नहीं इरा, क्षमा करो, हम पहिले तुम्हारे प्रस्ताव का रहस्य शीघ्र न समझ पाए थे। वास्तव में तुम बड़ी बुद्धिमती हो। शस्त्र हाथ में आ जाने पर देखेंगे कि कौन हम लोगों को रोकता है ?'

यह निश्चय कर दोनों ही दूसरे कमरे में गए, जहाँ मठ के सेवकगण प्रातःकाल तथा सायंकाल दोनों समय इन लोगों की

आवश्यकताओं की सभी वस्तु नित्य रख जाते थे। इरा ने सब सामान देख कर अपने पिता के उपयोग का सामान उठा लिया और दोनों वहाँ गए, जहाँ वारेंद्रनारायणसिंह बैठे हुए कुछ विचार कर रहे थे। इरा सब सामान यथास्थान रखने लगी और गोपाल ने उनके पास बैठ कर इरा का प्रस्ताव उनसे कह कर उसका समर्थन किया। वह भी कुछ देर तक उसकी उपयुक्तता पर विचार करते रहे और तब अंत में बोले कि 'उपाय तो यह है बहुत ठीक पर मैं वचन-बद्ध न हूँगा। वाग्दत्ता कन्या को फिर दूसरे को कैसे दे सकूँगा।'

'यह कठिनाई तो आप ने बेढब निकाली। अच्छा यदि आपकी ओर से मैं कह दूँ और समय पर आप केवल साथ साथ चले चलें, तो क्या हर्ज है।'

'साथ साथ चले चलने में कुछ हर्ज नहीं है क्योंकि वास्तव में मैं वचनबद्ध नहीं हो रहा हूँ। इरा का विवाह यशःकर्ण से न हो सकता है और न मैं स्वीकार ही कर सकता हूँ। पिता के सिवा किसी दूसरे को वचन देने का स्वत्व भी नहीं है अतः यदि तुम काम निकालने के लिए कुछ कह दोगे तो उससे मैं किसी प्रकार बंधन में पड़ता भी नहीं।'

'तब यही ठीक है।'

इसके ठीक तीसरे दिन प्रातःकाल होने के कुछ ही देर बाद एक वृद्ध साधु इन लोगों के पास आए और आचार्य का यह संदेश लाए। 'आचार्यवर ने पूछा है कि हमने जो सूचना पहिले भेजी थी, उसके विषय में आपने क्या निश्चय किया है। आप स्वयं कन्या-दान करेंगे या उस कार्य को ब्राह्मण द्वारा संपन्न कराया जाय। आप जैसी आज्ञा दें वैसा प्रबंध किया जाय।'

गोपाल ने कहा, 'साधुवर, आप आचार्य जी से कह दीजिएगा कि सामंत जी आपकी आज्ञा का उल्लंघन न कर सकेंगे। मैं उन्हें

समझा कर ठीक कर लूँगा। जो कार्य अपनी शक्ति के बाहर हो गया है, उसके लिए चिंता करना व्यर्थ है और अपनी एक मात्र कन्या का स्वयं न दान करना भी अनुचित है इस लिए वही इसे पूरा करें तो अतीव उत्तम है। अतः आप लग्न से कुछ पहिले हम लोगों को आकर लिवा चलिएगा, जिसमें यह कार्य संपन्न हो सके। भाग्य पर किसी का जोर तो है नहीं। हरेरिच्छा बलीयसी।'

'बहुत ठीक। संध्या की लग्न है, दो घंटे पहिले आकर लिवा चलूँगा।' यह कह कर वह वृद्ध चले गए और पुनः ठीक निश्चित समय पर कई सशक्त साधुओं के साथ आए। ये लोग तैयार बैठे ही थे, इससे तुरंत साथ चल खड़े हुए। कई कमरे, दालान आदि डाँकते हुए सब लोग उस प्रांगण में पहुँचे जहाँ मंडप बना हुआ था। यह बड़े समारोह से सजाया हुआ था। बहुत से साधु तथा विद्यार्थीगण इधर उधर प्रबंध में व्यस्त थे। राजकुमार यशःकर्ण-देव अपने तीन चार समवयस्क सरदारों तथा चार पाँच सैनिकों के साथ उसी समय मठ की ओर से आ पहुँचे और इन लोगों को वहाँ प्रसन्नचित उपस्थित देख कर बड़े आनंदित हुए। उनके साथ के सैनिकगण उसी ओर आ खड़े हुए, जिधर ये लोग एकांत में बैठे हुए वह सब दृश्य देख रहे थे। लग्न का समय पास चला आ रहा था कि इसी बीच मठ के बाहर कुछ शोर सुनाई पड़ने लगा और यह शोर युद्ध के पहिले का सा मालूम होता था। ये तीनों एकाएक एक साथ उठ खड़े हुए और उन सैनिकों के पास जा पहुँचे। बाहर शोर कैसा हो रहा है, यह पूछने का बहाना सा करते हुए एक साथ इन तीनों ने एकाएक तीन सैनिकों के खड्ग उनके मियानों से खींच लिए और झट इरा को बीच में रख कर उस द्वार की ओर झपटे जिधर से लोग आ जा रहे थे। बाहर का शोर बढ़ता जा रहा था और अब भीतर की ओर भी बड़ा

शोर मचा। चारों ओर से 'धरो पकड़ो' की आवाज आने लगी। ये तीनों उस द्वार तक पहुँच गए थे पर मठ की ओर से कई सशस्त्र सैनिक आ पहुँचे और इनका मार्ग रोक दिया। इधर राजकुमार, उसके सरदार तथा सैनिकगण ने पीछे से आक्रमण किया। इनको गोपाल तथा इरा ने रोका और उधर वारेंद्रनारायणसिंह ने द्वार रोक कर भीतर आते हुओं का सामना किया। गोपाल ने पहिली ही चोट में दो सैनिकों को मार गिराया और पैर की एक ऐसी सच्ची चोट एक युवक सरदार की छाती पर जमाई कि वह प्रस्तर निर्मित छत पर गिर कर बेहोश हो गया। इधर इरा ने एक सरदार युवक पर खड्ग का ऐसा सधा हाथ जमाया कि यदि उसके सिर पर भारी साफा न होता तो वह दो टुकड़े हो जाता। तिस पर भी उसके सिर पर एक इंच गहरा घाव हो गया और वह बेहोश हो कर गिर पड़ा। अब उसका यशःकर्ण से द्वंद्वयुद्ध होने लगा। गोपाल ने बचे हुए सैनिक तथा सरदार युवकों को थोड़ी ही देर में परास्त कर गिरा दिया। इसके अनंतर इरा को पिता की सहायता करने का संकेत कर वह यशःकर्ण पर झपट पड़ा और बिना खड्ग का सहारा लिए ही उसने उसे इतनी जोर से पृथ्वी पर दे मारा कि वह गिरते ही बेहोश हो गया।

अब ये तीनों द्वार में एकत्र हुए। बाहर आठ दस सैनिक तथा मठ के पंद्रह बीस साधुगण एकत्र थे। गोपाल ने इन दोनों को पीछे आने का संकेत कर खड्ग घुमाते हुए एक दम बाहर वालों पर टूट पड़ा और द्वार के आस पास जमे हुए सैनिकों को अस्त-व्यस्त कर दिया जिससे वारेंद्रनारायणसिंह तथा इरा भी बाहर निकल आए और जम कर युद्ध होने लगा। इरा ने फुर्ती से पहिले द्वार को अपनी ओर से बंद कर दिया, जिसमें भीतर की ओर से किसी के पुनः आक्रमण करने का भय नहीं रह गया। अब इन

तीन सिद्धहस्त तलवरियों के सामने साधारण आठ दस सैनिक कब तक ठहर सकते थे और थोड़ी ही देर में वे घायल तथा मृत होकर इधर उधर गिर पड़े। साधुगण भागे और ये तीनों इस प्रांगण में से होते हुए मठ के बाहर निकल आए। अब इन लोगों को सामने एक भयानक युद्ध का दृश्य दिखलाई पड़ा, जिसमें एक ओर प्रायः पचास तथा दूसरी ओर प्रायः एक सौ अश्वारोही सेना थी। इन लोगों ने यह भी देखा कि वे सौ सवार रामेंद्र की अध्यक्षता में शत्रु को मारते काटते मठ की ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। यह देख कर ये तीनों मठ की दीवाल की आड़ ले कर बाईं ओर फुर्ती से बढ़ चले और कुछ दूर जाकर तथा घूम कर अपनी सेना के पास पहुँच गए। मरे हुए सैनिकों के कोतल घोड़े, जो इधर उधर दौड़ रहे थे, उनमें से तीन को गोपाल ने शीघ्र ही पकड़ लिया और उन पर सवार होकर ये सेना में जा मिले। इन्हें पहिचान कर कुछ सवारों ने बड़े जोर से इनकी जय जय कार का शोर मचाया, जिससे एक दम युद्ध रुक गया। वारेंद्रनारायणसिंह दोनों सेना के बीच में आकर खड़े हो गए और ललकार कर कहा 'वीरो, जिन लोगों को कैद में रोक रखने तथा छुड़ाने के लिए आप लोग युद्ध कर रहे थे, वे सब छूट कर आप लोगों के सामने आ गए हैं। अब युद्ध करना व्यर्थ है, अतः अब आप लोग शत्रुता बंद करें। (शत्रु सेना की ओर लक्ष्य कर) आप लोग संख्या में भी कम हैं तथा आपके सभी सरदार और राजकुमार मठ में पड़े हुए हैं, इस लिए युद्ध न कर उन लोगों की रक्षा करना आपका परम धर्म है। आशा है कि आप लोग निरर्थक युद्ध की इच्छा छोड़कर अपने स्वामी की रक्षा करें।

यह सुन कर त्रिपुरी के सवारगण, जिनका कोई भी अध्यक्ष वहाँ न था और जिनमें से बहुत से सवार हताहत भी हो चुके थे,

युद्ध से विमुख हो कर मठ की ओर हट गए और वारेंद्रनारायण-सिंह भी अपनी सेना के साथ पीछे हट आए। रामेंद्रनारायणसिंह ने सवार भेज कर सबलसिंह को बुला लिया, जो एक सौ सवारों के साथ मठ के संलग्न विशाल प्रासाद के पीछे की ओर इन्हीं लोगों को छुड़ाने के लिए गया हुआ था। सवारों के सहित सबल-सिंह के आ जाने पर कुल सेना उसी सैनिक घाटी की ओर चल पड़ी और प्रायः दो घंटे में वहाँ पहुँच गई ।

त्रयोदश परिच्छेद

'कहिए, आपको हम लोगों का पत्र मिला था।'

'जी हाँ, आज ही प्रातःकाल एक सैनिक उस तीर को लाया, जिसमें पत्र बँधा हुआ था। उसी पत्र के कारण ही तो हम सवार सेना के साथ मठ के पीछे की ओर से आक्रमण करने गए थे। यों तो मठ सभी ओर से घिरा हुआ था।'

'कैसा पत्र ?'

'जी, परसों आपसे बात चीत करने के अनंतर जब हम लोग उद्यान में टहल रहे थे तभी कुमारी इरा ने प्रस्ताव किया कि यदि हम लोग अपने कारागार का पता किसी प्रकार बाहर भेज सकते तो अच्छा होता, क्योंकि इतने बड़े प्रासाद में हम लोग कहाँ बंद हैं, इसका पता लगाने में सबलसिंह को बहुत समय लगेगा। इसके साथ ही तीर धनुष का अभाव ध्यान में आया तब बाग में खोज कर एक सूखे डंठल से धनुष बनाया गया और उसी डंठल से तीर भी तैयार किया गया। इसके अनंतर कपड़े पर पत्र लिख कर और तीर में बाँध कर बाहर फेंक दिया गया। उसी पत्र के विषय में पूछ रहा हूँ।'

'अच्छा, मुझसे कहा नहीं।'

'इन्हीं ने मना किया था कि यह सब बात पिताजी से मत कहिएगा, कौन जाने पत्र किसी को मिले न मिले। पिताजी हम लोगों का खिलवाड़ समझ कर हँसेंगे।'

'आपने भी इसी का समर्थन किया, इस लिए हमने पिताजी से नहीं कहा।'

'अच्छा, अब तुम बतलाओ सबलसिंह, कि तुमने क्या किया और कैसे ठीक अवसर पर पहुँच गए ?'

'स्वामिन्, जब हूण सैनिक गण आपको तथा कुमारी इरा को मठ में पहुँचा आए और गोपाल मंत्री जी तथा अधिनायक के साथ मठ की ओर चल दिए तब मैं वहाँ से हट आया। मठ के पास ही छिपा रह कर जब यह निश्चय कर लिया कि आप सभी वहाँ रोक लिए गए हैं तब लौटा। उद्यान का प्रबंध ठीक करा कर उस युद्धस्थल पर गया जहाँ आपको मठ की ओर बिदा कर देने पर हूणों से घोर युद्ध हुआ था। इनकी वीरता (गोपाल की ओर इंगित कर) युद्ध में दर्शनीय थी, हूणराज तो बेचारा कुछ दिन के लिए बेकार ही हो गया। हाँ, तो वहाँ युद्धस्थल से अपने मृत सैनिकों के संस्कार का प्रबंध करा कर यहीं सैनिक घाटी में चला आया। यहाँ दो बातों का निश्चय किया गया, एक तो अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाना तथा दूसरे षड्यंत्र का पता लगा कर आप लोगों को छुड़ाना। पहिला कार्य कुमार रामेंद्र ने लिया और दूसरा मुझे सौंपा गया।'

'पिताजी, इन सब कार्यों के संचालक यही हैं, इन्हीं की राय क्या, यही सब उपाय सोचते, क्या करना है सबको बतलाते और दिन रात न किसी को आराम लेने देते और न स्वयं आराम करते। कोई कुछ कहे तो कहते कि जन्म भर तो आराम करते रहे और इस आपत्ति के बीतने पर तो आराम करना ही है, चार दिन में घबड़ा गए।'

'पुत्र, सबलसिह को जो पूर्णतया नहीं जानता उसके लिए इतनी सी बात भी आश्चर्यजनक हो सकती है, मेरे लिए नहीं। सच्चे गुण के यह सच्चे पारखी हैं, और उसकी सच्ची ही प्रशंसा करनेवाले हैं। इनको हमारे सिवा दो आदमी और पहचान सके

थे, एक हमारे महाराज यशःपालदेव और दूसरे हमारे परम मित्र सामंत सोमल्लदेव। शोक कि अब दोनों नहीं रह गए। क्यों सबलसिंह, मित्र के परिवार का कुछ पता न लग सका।'

'नहीं स्वामिन्, आपके इधर चले आने पर फिर मुझे समय ही कहाँ मिला। यदि आपकी इच्छा है तो इस आपत्ति से निवृत्त होने पर उनकी खोज में लगूँगा। हाँ, सैनिक घाटी से गोपाल के दोनों साथियों के साथ विदा होकर अपने कार्य में लगा। इन दोनों ने मेरी बड़ी सहायता की और अंत में सब बातों का पता लग गया। जब बारात त्रिपुरी नगर से मठ की ओर चली, उसी समय समाचार भेजा गया और ठीक समय पर हम लोग ससैन्य पहुँच गए। पर बात यह भी तो है कि आप लोग स्वयं कैसे छूट आए?'

'यह सब इन्हीं दोनों की कार्यवाही है, पत्र जो भेजा था उसका तो वृत्त अभी ही हमने भी सुना है। उसके अनंतर अपनी ओर से गोपाल ने इस प्रकार मठाधीश से कहला भेजा कि मानों मैं कन्या-दान करने को तैयार हूँ, इस पर आज हम सब साथ ही मंडप में बुला लिए गए। तुम लोगों के आक्रमण करने पर शोर मचा, जिससे अवसर मिलते ही हम तीनों ने तीन सैनिकों के खड्ग छीन लिए और फिर लड़ते भिड़ते बाहर चले आए। लड़ाई में भी इन्हीं दोनों ने अधिक भाग लिया था, मैं तो केवल साथ साथ था।'

'यह प्रस्ताव भी कुमारी इरा ने मुझ से किया और जिस अवस्था में हम सब थे उसके लिए उचित समझ कर मैंने सहर्ष सहयोग किया था।'

'अस्तु, निष्कर्ष यही निकला कि अब एक प्रकार हम लोग सब कोई छूट कर एकत्र हो गए पर इस षड्यंत्र से अभी छुटकारा मिल गया है, यह निश्चय नहीं, इस लिए अब क्या कर्तव्य है, उसे निश्चय करना चाहिए।'

'ठीक है, त्रिपुरी के राजकुमार को भी युद्ध में चोट आई है और ऐसा न हो कि राजसेना हम लोगों पर आक्रमण कर दे, इस लिए अब इस राज्य में ठहरना उचित नहीं है।'

'तब क्यों न हम लोग अपनी गढ़ी पर चले चलें। हाँ, एक बात और आपसे कहनी है। त्रिपुरेश्वर का कालिंजर पर अधिकार हो गया है और आपको अब अपनी पति-पुत्र-हीना बहिन महारानी की भी रक्षा का प्रबंध करना होगा। थोड़ी ही देर हुए कि यह समाचार मुझे मिला है।'

'क्या साथ में गुप्तचर लगा रखा था?'

'स्वामिन्, आपका दोनों राज्यों से संबंध है, तब कैसे मैं अपने धर्म से चूकता। मेरे गुप्तचर कालिंजर में पहिले से ही थे और त्रिपुरी की सेना के साथ भी गए थे। अतः वहाँ की कोई कार्रवाई मुझसे छिपी नहीं है। हो सकता है कि चंदेल राज-परिवार आपके अनुचरों की सहायता से बच कर दुर्ग ही में छिपा हो या आपकी गढ़ी में पहुँच गया हो।'

'धन्य हो सबलसिंह, अच्छा यही निश्चय रखो कि कल प्रातःकाल ही हम लोग ससैन्य यहाँ से चल दें।'

यह निश्चय हो जाने पर सबने आराम किया और प्रातःकाल ही अपनी गढ़ी की ओर बन ही बन रवाना हो गए। निरंतर कूच करते हुए यह लोग चौथे दिन अपनी गढ़ी में कुछ रात्रि जाते जाते सकुशल पहुँच गए। यह गढ़ी कालिंजर से प्रायः नौ दस कोस दक्षिण-पश्चिम केन नदी के किनारे विंध्य पर्वत के एक छोटे शृंग पर बनी हुई है, जो मुख्य पर्वतमाला से बहुत हट कर अलग हो पड़ा था। यह शृंग भी काफी ऊँचा था और अत्यंत ढालू भी था। गढ़ी तक जाने का केवल एक मार्ग था, जो कई फाटकों तथा बुर्जियों से दृढ़ किया हुआ था। सबसे नीचे का फाटक समतल

भूमि पर था और काफी भूमि घेर कर बनाया गया था। इसमें गढ़ी की सवार सेना के रहने के लिए स्थान बना हुआ था। एक ओर पहाड़ी थी, दो ओर दीवालें थीं और सामने की ओर दीवाल तथा ठीक मध्य में फाटक था। फाटक से सीधी सड़क गढ़ी में ऊपर जानेवाले मार्ग से जा मिली थी, जहाँ एक फाटक था। गढ़ी का परकोटा भी बहुत दृढ़ तथा प्रस्तर-निर्मित था और उसके एक ओर का प्रायः आधा भाग सामंत के निवासस्थान, उद्यान तथा अंतःपुर ने घेर लिया था। बचे हुए भाग में पैदल सेना, कर्मचारीगण, सेवक आदि के रहने के स्थान थे और कई खुलते आँगन भी थे।

यह गढ़ी प्रकृति की अत्यंत भयावनी रम्यस्थली के बीच में स्थित थी, जिससे कुछ ही हट कर केन नदी की प्रखर धारा वर्षा के दिनों में विशाल नदी का रूप धारण कर लेती थी। इसके उस पार घोर वन था। गढ़ी के अन्य तीनों ओर कुछ दूर तक घनी वन्य शोभा देखने ही योग्य थी, जिसके बाद खेत तथा कृषकों की छोटी छोटी बस्तियाँ दूर तक दिखलाई पड़ती थीं। बीच बीच में विंध्य पर्वतमाला के छोटे छोटे टुकड़े इधर उधर दिखलाई पड़ते थे और दूर पर उस पर्वतमाला की शृंखला भी पश्चिम से पूर्व की ओर जाती हुई दिखलाई पड़ती थी। कहीं कहीं छोटी छोटी बर-साती नदियाँ पड़ती थीं, जिनमें केवल बरसात ही में जल के दर्शन होते थे।

वहाँ पहुँचने पर दूसरे ही दिन सबेरे ही गोष्ठी बैठी, जिसमें वीरेंद्रनारायणसिंह, उनके पुत्र तथा पुत्री, गोपाल और सबलसिंह पाँच सभ्य उपस्थित थे। सबलसिंह ने पहिले विस्तार के साथ महाराज कर्णदेव की चढ़ाई और कालिंजर पर अधिकार कर लेने का कुल वृत्त बतलाया। अंत में यह भी कहा कि 'चंदेल राज परिवार कैद नहीं हुआ है और कहीं छिपा हुआ है जिस कारण

महाराज कर्णदेव अभी कालिंजर में ठहरे हुए हैं। परंतु वह दो ही एक दिन में अपने राज्य की ओर प्रस्थान करेंगे, ऐसी सूचना मिली है। उनके यहाँ से चले जाने पर मैं राज-परिवार को यहीं लाऊँगा और तब जो उचित आप लोग समझेंगे वह किया जायगा।

'वे लोग हैं कहाँ?'

'दुर्ग ही में हैं।'

'उस पर भी पता नहीं लग सका?'

'स्वामिन्, वे दुर्ग के भीतर ही एक ऐसे स्थान पर सुरक्षित हैं, जहाँ की गंध भी शत्रुओं को नहीं मिल सकती। वह मेरा पुराना अड्डा है, ऐसा कह सकते हैं और वे वहीं होंगे। यदि वे कहीं अन्यत्र होते तो अब तक कभी के कैद हो गए होते। उस अड्डे की रक्षा मेरे दो तीन अत्यंत विश्वासपात्र सेवकों के हाथ में है, जिन्हें महारानी भुवनदेवी की आज्ञा ही से आपके इधर आने पर नियत कर आया था, जिसमें कि किसी प्रकार की विपत्ति आने पर वे उनकी सहायता कर सकें। अवश्य ही वह इन लोगों की सहायता से सकुटुंब वहीं सुरक्षित ठहरी हुई होंगी। कर्णदेव के लौट जाने पर ही उन्हें यहाँ ला सकूँगा।'

'अच्छी बात है, पर अब हमारा क्या कर्तव्य है?'

'स्वामिभक्ति तथा अपने ही कुटुंब की रक्षा।'

'तात्पर्य, स्पष्ट कहो।'

'स्वामिन्, मेरा मतलब इतना ही है कि आप चंदेल वंश के कई पीढ़ियों से सामंत रह आए हैं, इसलिए ऐसी विपत्ति के समय उनका पक्ष ग्रहण कर उन्हें पुनः राज्य दिलाना आपका धर्म है और कीर्तिवर्मा आपका भागिनेय भी है। अतः दोनों ही दृष्टि से आपका अब यही प्रधान कर्तव्य है।

'ठीक कहते हो सबलसिंह, तुम्हारी सम्मति ही सम्मति है। कर्णदेव का आश्रय लेकर मैंने उनकी यथाशक्ति सेवा की और उन्होंने भी मेरा वैसा ही आदर किया पर उनके युवराज तथा राजमहिषी ने जो षड्यंत्र रच कर मुझे तथा मेरे कुटुंब को कष्ट दिया है तथा जैसी परिस्थिति अब हो गई है, उस अवस्था में अब मुझ पर उनका कोई ऋण नहीं रह गया है, प्रत्युत् उस कुटुंब से मेरा मर्मांतक वैमनस्य हो गया है। ऐसी दशा में अपने गृह ही का प्रबंध मुझे देखना है। अच्छा यह तो बतलाओ कि कालिंजर की समग्र सेना क्या हुई, क्या सब परास्त हो कर नष्ट हो गई?'

'नहीं स्वामिन्, ऐसा नहीं हुआ है। कालिंजर पर इस प्रकार एकाएक अधिकार हो जाने तथा महाराज का पता न पाने से हमारी सेना युद्ध से विमुख हो गई और सभी अपने अपने गृह चल दिए। थोड़ी थोड़ी सेनाएँ प्रधान सेनापतियों के अधीन यत्र तत्र वनों में पड़ी हुई अवसर देख रही हैं।'

'क्यों न हम सबको एकत्र कर युद्ध की तैयारी करें?'

'अभी नहीं, कर्णदेव के लौट जाने पर ही सफलता हम लोगों को निश्चय रूप से मिल सकेगी क्योंकि तब हमारे महाराज सपरिवार आपके पास आ जावेंगे और सभी सामंत आपकी आज्ञा मानने में कुछ न हिचकेंगे। हाँ, तब तक हम अपनी सेना और गढ़ी को पूर्णरूपेण सुसज्जित कर लें।'

'हाँ, इसका प्रबंध शीघ्र कर लेना चाहिए। तुम इसके लिए यथायोग्य आज्ञाएँ हमारी ओर से सबको दे दो।'

इसके अनंतर जब सबलसिंह आज्ञा लेकर अपने कार्य पर चले गए तब वागेंद्रनारायणसिंह ने रामेंद्र तथा गोपाल की ओर देख कर पूछा, 'तुम लोगों की इस कार्यवाही पर क्या राय है?'

'आपने जो निश्चय किया है, वही कार्यक्रम ठीक ज्ञात होता है।'

'यही उचित ही है।'

'पिताजी, ये दोनों केवल हाँ में हाँ मिला रहे हैं पर आपकी सम्मति को मैं केवल वहीं तक ठीक समझती हूँ, जहाँ तक आपने अपना कर्तव्य माना है पर आगे से मैं सहमत नहीं हूँ।'

'क्यों ?'

'इसीलिए कि महाराज, बूआ जी आदि के आने पर जब वे भी इस कार्यक्रम को ठीक और उचित समझेंगे तभी न यह निश्चित समझा जा सकता है ?'

'हाँ बेटी, यह तू ठीक कहती है और यही तो निश्चय भी हुआ है कि उन लोगों के आने पर ही आगे का कार्यक्रम बनेगा।'

'बड़ी बुद्धिमती न हैं, कुछ न कुछ कहना चाहिए।' रामेंद्र ने मुस्किरा कर कहा।

'नहीं, उक्त निश्चय का समर्थन कर रही हैं।' गोपाल ने कहा।

'इरा, अंतःपुर का सब प्रबंध तुम्हारे हाथ में है। राज-परिवार यहाँ आ रहा है। न जाने कितने दिन तक उन लोगों को यहाँ रहना पड़े। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो इसलिए सब प्रकार के सामान का पूरा प्रबंध कर लेना। मैं जानता हूँ कि तुम इसमें कुशल हो इसीलिए तुम्हें यह कार्य सौंपा है।'

'आपने जो कहा है यथाशक्ति उसे पूरा करूँगी पर भैया तो मुझे मूर्ख ही समझते हैं और अभी तक बुद्धिमती भाभी आई नहीं इसलिए मुझे करना ही पड़ेगा। फिर बुआ जी जब आ जायँगी तब तो वह हमारी ही चिंता में व्यग्र रहेंगी और मैं तब कुछ न करने पाऊँगी।'

'चुप पगली, तब तू बहुत छोटी थी।'

'क्यों नहीं, अब तो सभी से लड़ने को तैयार हो जाती है, युद्ध में तलवार चलाती है, अभी छोटी ही बनी है ?' रामेंद्र ने कहा ।

'जी, आपके लिए तो मैं बड़ी हो गई पर देखिएगा बुआजी के लिए मैं छोटी ही बनी रहूँगी । भाभी को आ जाने दीजिए तब बड़ी बड़ी कह कर निकालने का प्रयास कीजिएगा ।'

वारेंद्रनारायणसिंह तथा गोपाल दोनों ही हँस पड़े और इस प्रकार यह गोष्ठी समाप्त हो गई और सब लोग अपने अपने कार्य में लग गए । संध्याकाल के प्रायः एक घंटे पहिले रामेंद्र, गोपाल तथा इरा शस्त्रों से सुसज्जित हो कर गढ़ी के नीचे उतरे और वहाँ घुड़साल से तीन घोड़े तैयार करा कर सवार हुए तथा वायु-सेवन के लिए केन नदी की ओर चल दिए । गोपाल के दोनों साथी तथा चार पाँच अन्य अश्वारोहीगण भी उन लोगों से प्रायः पचास गज पीछे साथ साथ जा रहे थे । ये लोग केन नदी को पत्थर के पुल से पार कर घोर वन की ओर झुके । रामेंद्र ने गोपाल को लक्ष्य कर कहा, 'वन की यह बीहड़ शोभा भी कैसी आकर्षक है । यहाँ न उद्यानों के समान नियम के अनुसार एक एक प्रकार के पौधों और वृक्षों की क्यारियाँ हैं और न उन्हें नाप जोख कर क्रम से लगाया गया है । इस पर भी इनके गहन गुंजान झुरमुटों तथा विशाल प्राचीन वृक्षावलियों में जो शोभा दिखलाई पड़ती है, वह उद्यानों के भाग्य में कहाँ है ।'

'भई, उद्यान मानवकृति हैं और ये विशाल वन प्रकृति की कृति हैं । मनुष्य कैसा भी विशाल उद्यान, जलाशय आदि बनाए पर वे प्राकृतिक कृतियों के सामने खिलौने से ज्ञात होते हैं । विशालता में भी आकर्षण होता है ।

इरा ने कहा, 'मनुष्य समाजप्रिय है और जिस प्रकार उसने

अपनों ही में जाति, उपजाति अलग अलग बना ली हैं, उन्हें नियमबद्ध कर रखा है, उसी प्रकार अपनी कृति उद्यानों में भी कर रखा है। एक प्रकार के पुष्प के पौधों की एक क्यारी है तो दूसरे प्रकार के पुष्प की दूसरी। पर उनमें वह स्वच्छंदता नहीं है, जो वनों में है। यहाँ सभी प्रकार के वृक्ष-पौधे एक साथ स्वच्छंद निवास कर रहे हैं और उनमें आपस में कोई बिलगाव नहीं है।'

'वन हो या उद्यान, दोनों ही के निजी अस्तित्व हैं और उनके अस्तित्व का आनंद जीव मात्र ले सकते हैं। तब भी उस आनंद का जिस प्रकार मनुष्य उपभोग करता है या कर सकता है वैसा कोई अन्य जीव नहीं करता। साथ ही मनुष्य ही उस आनंद को शब्दों में व्यक्त कर सकता है।'

'यथार्थ ही है। कविता में या लेख में प्राकृतिक दृश्यों या मानवकृतियों की शोभा का जो कुछ वर्णन रहता है, वह वही होता है जो उन्हें देख कर मानव-हृदय-पटल पर अंकित होता है।'

'तब तो प्रसन्नचित्त कवि या लेखक के वर्णन से शोकमग्न कवि या लेखक के वर्णन में बहुत विभिन्नता होनी चाहिए।'

'होती ही है और क्यों न हो? यों कोई मनहूस समालोचक चाहे भले ही सिर हिला कर कह मारे कि अमुक सुकवि ने वैसा शुद्ध प्राकृतिक वर्णन नहीं किया है जैसा संस्कृत में अमुक ऋषि ने किया है और इसने तो अलंकारों तथा सांसारिक उपमाओं से ही वर्णन को भर दिया है। पर यह कथन उसके हृदय की मनहूसियत मात्र है। उदाहरण के लिए भी संसारविरक्त एक साधू बाबा ही मिले क्योंकि दूसरा मिलेगा ही कौन।'

'अवश्य। क्यों भाई, हमें बार बार यही शंका होती है कि तुम ब्राह्मण नहीं हो, तुम्हें क्षत्रिय होना चाहिए पर कभी कभी तर्क वितर्क भी इस प्रकार करने लगते हो कि शंका का समाधान नहीं

होता। तुम्हारे जीवन में कोई रहस्य अवश्य है, हम तो यही समझते हैं। तुम्हें भी कुछ शंका होती है?'

'भाई साहब, न तो वीरता क्षत्रियों ही के बाँटे पड़ी है और न विद्वत्ता ब्राह्मणों के। केवल इसी कारण शंका करना व्यर्थ है। हाँ, यह आपने जो पूछा कि तुम्हें भी इस विषय में कुछ शंका है या नहीं, यह मैं न स्वीकार कर सकता हूँ और न अस्वीकार।'

'क्यों, क्या कारण है?'

'पिता जी ने अपनी मृत्यु के समय इस विषय में कुछ उल्लेख किया था पर वह स्पष्ट न बतला सके और उनकी बोली बंद हो गई। इतना ज्ञात हो गया कि किसी पत्र में सब वृत्त लिख कर उन्होंने किसी पेटी में रख दिया है, जिसे देखने से हम सब कुछ जान सकेंगे। अब तक उनकी मृत्यु के शोक के कारण मैंने उधर ध्यान नहीं दिया था पर अब अवसर मिलते ही देखूँगा।'

ठीक इसी समय दाईं ओर से कुछ दूर पर शेर के दहाड़ तथा साथ ही आर्तनाद का शब्द सुनाई पड़ा, जिससे ये तीनों सतर्क हो कर घूम पड़े और बड़ी सावधानी पर फुर्ती से उस ओर बढ़े। कुछ ही दूर जाते वह आर्तनाद एक अत्यंत गुंजान झुरमुट से आता सुनाई पड़ा पर साथ ही इन लोगों ने देखा कि एक विशालकाय सिंह झुरमुट से कुछ निकलता हुआ इन लोगों की ओर बड़े क्रोध से देख रहा है। वह मारे क्रोध के अपनी पूँछ पटक रहा था और इन लोगों पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। तीनों ने सिंह को देखते ही घोड़े रोक लिए और तुरंत ही तीनों ने तीर संधान कर उस पर छोड़ दिए, जो उसके मुख में जा धँसे। सिंह क्रोध तथा चोट से अंधा हो कर बड़ी जोर से दहाड़ कर उछला और इन पर आ टूटा। पर ये तीनों भी बड़ी सावधानी से तीर चलाते ही अपने स्थान से इधर उधर हट गए

थे, जिससे शेर के बीच में आ गिरते ही पहिले इरा की बर्छी उसकी पीठ फोड़ कर भीतर धँस गई और तब दो तलवारें पूरे वेग से उसके कंधे तथा शिर पर पड़ीं। शेर निर्जीव हो कर वहीं गिर पड़ा। इसी समय इनके सब अनुययी घोड़े दौड़ाते आ पहुँचे और उन लोगों ने झुरमुट में से खोज कर एक भिल्लिनी को निकाला जिसे शेर उठा लाया था। वह अचेतन थी और उसी अवस्था में कभी कभी कराहती भी थी। यह घायल होते भी मरी न थी और उसके बच जाने की आशा थी। वह युवती थी और भिल्लिनी होते भी सुगठित शरीर के कारण सुंदरी भी थी। इरा स्त्री को देखते ही तुरंत घोड़े पर से उतर पड़ी और उसके वस्त्र आदि ठीक कर जल मँगवाया। वह घाव आदि धो ही रही थी कि इसी बीच कई भिल्ल तीर-धनुष, फरसा आदि लिए दौड़ते आ पहुँचे पर यहाँ का दृश्य देख कर वे सब मूढ़ के समान खड़े रह गए।

यह वन सामंत वारेंद्रनारायणसिंह की अधिकारसीमा के भीतर ही था, इसलिये ये भील भी उन्हीं की प्रजा थीं। ये सब इस समय उनके बहुत दिन से अनुपस्थित रहने के कारण विद्रोही हो रहे थे। इन सबने तुरंत ही गढ़ी के सैनिकों तथा रामेंद्र आदि को पहिचान लिया, इसलिए चुप खड़े रह गए। इरा ने इन लोगों को देख कर उनमें से एक को संकेत से पास बुलाया और पूछा, 'शेर इसे कैसे उठा लाया?'

'कुमारी जी, यह हमारे सरदार की स्त्री है और बस्ती से दो तीन स्त्रियों के साथ जलाशय पर स्नान करने गई थी। वहीं से इसे शेर उठा लाया। जब अन्य स्त्रियों ने भाग कर यह वृत्तांत कहा तब हम लोग पता लगाते हुए यहाँ आए। आपने रक्षा कर ली नहीं तो अब तक यह शेर के पेट में चली गई होती।'

'परंतु घायल बहुत है, ठीक दवा न होने से वही हालत हो जायगी ।'

'नहीं कुमारी जी, ठीक दवा की जायगी और दो तीन दिन में यह अच्छी हो जायगी ।'

'इसके पति कहाँ हैं, वह नहीं आए ?'

'वह काम से दूर गए हुए हैं, इसी से साथ नहीं हैं । वे इनसे बहुत प्रेम करते हैं ।'

'(मुस्किरा कर) है भी यह उस योग्य । इसे ले कैसे जाओगे ?'

'अभी प्रबंध कर लेते हैं ।'

'अच्छा देखो, इसे अच्छी होते ही हमारे पास गढ़ी में अवश्य भेजना ।'

'जैसी आज्ञा, सरदार को आपकी आज्ञा सुना दूँगा ।'

शीघ्रता से थोड़ी ही देर में भीलों ने डालियाँ काटकर तथा लताओं से बाँध कर एक डोली सी बना ली और उस युवती भिल्लिनी को उस पर लिटा दिया । इसके अनंतर इरा से आज्ञा लेकर वे सब चले गए । तब ये लोग भी अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर गृह लौटे क्योंकि रात्रि हो चली थी ।

'ठीक अवसर पर पहुँच जाने से ही उसकी रक्षा हो सकी, नहीं तो कुछ देर होने से उसे शेर खा जाता ।'

'इसमें क्या शक है । (मुस्किरा कर) उसे तुमने निमंत्रण क्यों दिया है ?'

'अच्छी हो जाने पर उसे देखूँगी, अपनी प्रजा है, इसमें हँसने की क्या बात है ?'

'ये सब इस समय पिता से विद्रोही हो रहे हैं, यह भी ध्यान है ?'

'हाँ, आवे या न आवे, अपना धर्म समझ कर कह दिया। मैं तो समझती हूँ कि अवश्य आवेगी।'

'आपका विचार ठीक है, भाई साहब यों ही कह रहे हैं। आपकी आज्ञा न मानेंगे, देखिए न वे सब आपही को हम लोगों का सरदार मान कर आपके आदेशानुसार कार्य कर रहे थे।'

'चलिए, मैं घायल के पास थी, मैंने बुलाया और बातचीत की इसलिये मुझी से पूछ कर चले गए इसमें मेरी सरदारी कैसी।'

इसी प्रकार बातचीत करते ये लोग गढ़ी में पहुँच गए।

चतुर्दश परिच्छेद

कालिंजर दुर्ग का भीतरी भाग समतल होते भी पहाड़ी है, अतः कई स्थानों पर ऊँचा नीचा है। अंतिम फाटक के बाईं ओर सीतासेज से आगे बढ़ कर प्राचीर के पास ही एक ऊँचा टीला सा भारी चट्टान है, जिस पर चढ़ना संभव नहीं है। वह केवल एक ओर नीचे से कुछ ढालू है, जिस पर बड़ी कठिनाई से कुछ दूर तक चढ़ा जा सकता है। इस कारण अगम्य समझ कर इस पर न उस समय तक कोई चढ़ा ही था और न उधर कोई जाता ही था। दुर्ग की प्राचीर इसके एक ओर आकर समाप्त होती है और दूसरी ओर से पुनः आरंभ होती है। एक प्रकार दुर्ग के किनारे पर यह स्थित है और बिलकुल दीवाल सा दुर्गशृंग के कमर तक खड़ा होने से अगम्य है। दुर्ग की ओर का वह भाग, जो किसी प्रकार चढ़ने के योग्य नहीं है, ऐसे स्थान पर पड़ता है, जहाँ मनुष्यों का आना जाना उसकी बीहड़ता तथा एकांत के कारण कभी नहीं होता। इस ओर कुछ ऊपर चढ़ कर नीचे से दो तीन छोटे छोटे मोखे से दिखलाई पड़ते हैं, जो वास्तव में छोटी छोटी गुफाएँ हैं और जिनमें एक इतनी बड़ी है कि उसमें आदमी खड़े होकर भीतर जा सकता है। पर ये गुफाएँ पत्थरों के निकले ढोंकों से इस प्रकार छिपी हुई हैं कि दूर से ये मोखे ही सी दिखलाती हैं। पास जाने पर ऐसा ज्ञात होता है कि सबसे नीचे पर सबसे बड़े मोखे तक पहुँचने के लिए मनुष्य के हाथों ने कुछ ऐसा उपाय बना रक्खा है, जिसे देख कर साधारणतः कोई मानवकृत न कहेगा। जिस रात्रि कालिंजर दुर्ग घेरा गया था, उसी में अर्द्धरात्रि के

समय एक मनुष्य उस मोखे से नीचे उतरा। उसके हाथ पैर ऐसे सधे हुए थे कि वह चट्टान के बगल के निकले हुए पौधों के तथा पत्थरों के सहारे कुशलपूर्वक बड़ी सुविधा के साथ उतर आया और चट्टान की परिक्रमा देता हुआ राजमहल की ओर चला। राजमहल के पीछे विशाल जनाना उद्यान पड़ता है, जिसकी कनाती दीवाल काफी ऊँची है। वह मनुष्य यहाँ पहुँच कर तथा बाहर के एक वृक्ष के आश्रय से उद्यान में उतर पड़ा और बड़ी सतर्कता से वृक्षों की ओट लेता हुआ राजमहल के एक भाग के पास जा खड़ा हुआ। यह कुछ ही देर प्रतीक्षा कर पाया था कि नीचे का एक द्वार खुला और किसी ने इसे संकेत कर भीतर बुला लिया। परिचारिका उसे एक कमरे में लिवा गई, जहाँ महारानी भुवनदेवी एक आसन पर पहिले ही से बैठी हुई थीं। महारानी की चालीस वर्ष से कुछ अधिक अवस्था होगी। वह अत्यंत सुंदरी रही होंगी और अब भी सौंदर्य में कुछ कमी नहीं आई है, केवल दो चार बाल श्वेत हो गए हैं। वैधव्य के कारण शरीर पर शृंगार नाम को नहीं है और वह साक्षात् श्वेतांबरा देवी सी वहाँ विराजमान थीं।

उस मनुष्य ने पहुँचते ही एक बार महारानी की ओर दृष्टि डाली और तब शिर नवा कर अभिवादन किया। आज्ञा मिलने पर उसने कहा, 'आपके आदेशानुसार मैंने वहाँ कुल प्रबंध ठीक कर लिया है और दस मनुष्यों के निर्वाह के लिए एक महीने तक का सब आवश्यक सामान जुटा लिया है। कालिंजर पर चढ़ाई होने का हमारे स्वामी को पूरा वृत्तांत ज्ञात है और आज सबेरे उनका एक पत्र भी आया है, जिसे महारानी देख लें।'

यह कह कर उसने वह पत्र परिचारिका को दे दिया, जिसने महारानी के आगे उसे रख दिया। उन्होंने उसे उठा कर देखा और

लंबा पत्र पाकर बाद को पढ़ने के लिये रख छोड़ा। इसके बाद पूछा,

'यहाँ केवल तुम और भीखू मिश्र दो ही आदमी हो न ?'

'जी हाँ।'

'दुर्ग चारों ओर से घिरा है और कल ही आक्रमण होगा यह निश्चय है अतः यदि देखा जायगा कि दुर्ग दो ही एक दिन में टूटेगा तो कल रात्रि में हम लोग वहाँ चले चलेंगे और यदि दुर्ग के शीघ्र टूटने की आशंका न होगी तब जैसा उचित होगा वैसी आज्ञा दूँगी।'

इसके अनंतर वह मनुष्य अभिवादन कर परिचारिका के साथ चला गया और महारानी भीतरी कमरे, अपने शयनकक्ष में जा कर पलंग पर लेटीं तथा पत्र पढ़ने लगीं। प्रायः तीन पृष्ठों में यह पत्र लिखा गया था और उसे पढ़ लेने पर महारानी ने कुछ देर तक शयन किया। सुबह के चार बजे होंगे जब महारानो उठीं और कई कमरों में होती हुई छोटी महारानी के शयनगृह में पहुँचीं, जो उस समय भी सोई हुई थीं। यह उनकी पलंग पर एक किनारे बैठ गईं और धीरे धीरे उन्हें जगाया। वह उठ बैठीं और बड़ी महारानी को देख कर झट पलंग से उतर कर खड़ी हो गईं।

'आपने मुझे ही क्यों न बुलवा लिया। इतना कष्ट करने की आवश्यकता क्या थी ?'

'आओ बैठो, कुछ सम्मति करनी है। किसी को भेजती और बुलवात्ती तो उतना समय व्यर्थ ही जाता। अच्छा, बात यह है कि दुर्ग घिर गया है, इस समय अपनी शक्ति बँटी हुई है और शत्रु पूर्ण शक्ति से आ गया है। त्रिपुरेश्वर बहुत ही योग्य और अनुभवी सेनापति हैं, ऐसी अवस्था में दुर्ग की रक्षा की आशा कम है। यदि रक्षा हो सकी तो कोई बात नहीं है पर न हो सकी तब

के लिए चिंता है। कीर्त्ति दुर्ग ही में है और हम सब भी हैं। शत्रु के हाथ में पड़ने पर क्या होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐसी अवस्था में सबकी रक्षा के लिए कुछ उपाय सोचना चाहिए। कीर्त्ति अभी युवक ही है, सब उसी पर छोड़ बैठना ठीक नहीं है। तुमने कुछ विचार किया है, हमारा क्या कर्तव्य है ?'

'हमने तो अब तक इस पर कुछ विचार नहीं किया है। कीर्त्ति कहता था कि शत्रु दुर्ग नहीं ले सकते अतः कोई चिंता नहीं है। इसी विचार से मैं तो निश्चिंत थी।'

'वैसा ही हो तो कोई चिंता ही नहीं पर मैंने जो समाचार कल पाए हैं उससे तो मैं वैसा नहीं समझ रही हूँ। त्रिपुरेश्वर पचीस सहस्र सेना के साथ आ पहुँचे हैं और दुर्ग में केवल दो तीन सहस्र सेना है। साथ ही उनके चर तथा कुछ सैनिक पहिले ही से दुर्ग में आ घुसे हैं, जिनका अपने यहाँ के चरों को कल ही पता लगा है। वे क्या कर रहे हैं, कहाँ हैं, समय पर क्या करेंगे, इसका भी निश्चयपूर्वक अपनी ओर वालों को कुछ पता नहीं है। ऐसी स्थिति में हमारी आशंका बढ़ती जा रही है, रात्रि में निद्रा तक नहीं आई।'

'तब क्या किया जाय, आप ही उपाय सोचिए, हमारी बुद्धि कुछ काम नहीं देती, दुर्ग घिर ही गया है, बाहर जाना संभव नहीं।'

'घबड़ाओ मत, इसी चिंता में हम भी पड़ी हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि कर्णदेव अधिक दिन तक यहाँ नहीं ठहरेंगे क्योंकि दक्षिण में उनका कोई शत्रु उभड़ा हुआ है, जिससे वे दुर्ग-विजय होने के बाद शीघ्र ही लौट जायँगे। अब देखना यह है कि दुर्ग के भीतर ही ऐसा कोई स्थान है जहाँ हम लोग इस प्रकार छिप कर एक दो सप्ताह रह सकें कि शत्रु क्या हमारे अनुचरवर्ग भी हमारा पता न पा सकें, तभी रक्षा हो सकती है।'

'ऐसा स्थान कहाँ से आवेगा ? सभी यह जानते हैं कि यहाँ के राजा तथा राजपरिवार दुर्ग में मौजूद हैं, जिससे शत्रु को भी पता लग जायगा। वे पूरी खोज करेंगे।'

'ठीक है, इसीलिये तो इस समय तुम्हें कष्ट दिया है। कीर्त्ति प्रायः चार बजे परिषत् में गया था उसके बाद बाहर गया नहीं। शत्रु के दुर्ग घेरने तथा इसके बीच कई घंटे का समय मिलता है, जिसमें अज्ञात रूप में कई मनुष्य दुर्ग के बाहर चले जा सकते हैं।'

'पर हम लोग गए तो नहीं।'

'सुनो भी, घबड़ाती क्यों हो। कीर्त्ति एक आज्ञापत्र अपने मंत्री तथा प्रधान सेनापति के नाम इस आशय का लिखे कि हम दुर्ग की रक्षा का भार तुम दोनों पर छोड़ कर सपरिवार बाहर जाते हैं और शीघ्र ही सेना एकत्र कर सहायता को आवेंगे तथा बाहर से शत्रु पर आक्रमण कर देंगे। वे राजपरिवार की रक्षा के लिए चिंतित न होकर शत्रु से अच्छी तरह युद्ध कर दुर्ग की रक्षा में दत्तचित्त रहें। कल कीर्ति बाहर न जाय और दोपहर तक शत्रु के आक्रमण की सफलता या विफलता की प्रतीक्षा करे। फिर जैसा देखा जायगा वैसा समझ कर किया जायगा।'

'पर रक्षास्थल कौन है, कहाँ है, यह तो बतलाया नहीं।'

'उसकी चिंता मत करो, उसका प्रबंध हमारे हाथ में रहने दो। वहाँ केवल हम, तुम, कीर्त्ति और बहू ये ही रहेंगे। एक परिचारिका तथा दो सेवक हम लोगों की सेवा के लिए रहेंगे। इससे अधिक आदमियों का स्थान भी नहीं है। कीर्त्ति को बुलाकर अभी सब समझा दो और अच्छा होगा कि सुबह के पहिले ही तुम सब हमारे ही कमरे में चली आओ और वहीं एकांत में रहो, जिसमें अंतःपुरवाले भी दिन में हममें से किसी को न देख सकें। हम जाती हैं, यदि आवश्यकता हो तो बुला लेना।'

यह कह कर बड़ी महारानी चली गईं और छोटी महारानी कुछ सोचती समझती अपने पुत्र के राजशयनगृह के द्वार पर पहुँचीं। पुत्र तथा पुत्रवधू दोनों उसमें थीं अतः द्वार पर धीरे-धीरे थपथपाया। कई बार ऐसा करने पर भीतर से जागने का शब्द हुआ और इनकी पुत्रवधू कुछ क्रुद्ध सी द्वार पर आई। द्वार खोलते ही इन्हें देख कर वह झट लज्जा से सिमिट सी गई। महारानी ने उसे आलिंगन कर लिया और कहा, 'कीर्त्ति को जगा दो और कहो कि माता आ रही हैं, आवश्यक कार्य है।'

'आइए न, हम जाग रहे हैं।'

यह कहते हुए राजा कीर्त्तिवर्मा भी द्वार पर पहुँच गए तब महारानी बहू को लिवाए हुए भीतर चली गईं और द्वार बंद कर बड़ी महारानी से जो बातचीत हो रही थी वह सब कह सुनाया। यह सब सुनकर राजा कीर्त्तिवर्मा ने कुछ सोचते हुए कहा कि,

'बड़ी माता जी की ओर से अब तो कोई शंका करने का अवसर नहीं है और अब वह हमारी ही भलाई में राज्य की भलाई समझती हैं। उनकी सम्मति ही इस समय एक मात्र त्राण का उपाय ज्ञात होता है। जितनी बातें वह बतला सकी हैं, उतनी हमें अपने मंत्रि-परिषत् से ज्ञात न हो सकीं, नहीं तो हम स्वयं अपने को दुर्ग में बंद न करते। यदि दुर्ग न ले सकने पर बाहर से शत्रु न हटा तो दस पंद्रह दिनों में दुर्ग दे देना पड़ेगा, क्योंकि इस एकाएक की चढ़ाई के कारण दुर्ग में सामान संचय नहीं किया जा सका है। इस समय भीतर के खेतों में भी अन्न नहीं है। दुर्ग के बाहर निकले बिना तो शत्रु से न युद्ध किया जा सकता है और न दुर्ग लौटाया जा सकता है।'

तो उन्हें बुलवावें। वही सब बतला सकेंगी।'

'अच्छा यही होगा कि वहीं चलें। उन्होंने बुलाया ही है, जैसा

कहेंगी समझ बूझ कर किया जायगा। आप चलिए हम अभी आए।'

छोटी महारानी के चले जाने पर कीर्त्तिवर्मा ने अपनी पत्नी से कहा,

'प्रिये, देखो इस आपत्तिकाल में घबड़ाना नहीं।'

'आर्यपुत्र, मैं अपने लिए कभी न घबड़ाऊँगी, इसके लिये कभी चिंता न कीजिएगा। अपनी रक्षा का प्रबंध कीजिए, छाया की आपसे आप हो जायगी।'

'तब यहाँ का ऐसा प्रबंध कर दिया जाय कि कोई देख कर यह न समझे कि रात्रि में यहाँ कोई सोया था।'

इतना प्रबंध कर ये दोनों भी साथ ही बड़ी महारानी के कमरे में पहुँच गए। दोनों महारानियाँ भीतरी कमरे में थीं और वही परिचारिका केवल बाहरी कमरे में खड़ी थी। उसने इन दोनों को अभिवादन कर भीतर पहुँचा दिया और स्वयं बाहर चली आई। कीर्तिवर्मा ने पूछा, "माताजी, दुर्ग से बाहर निकलने का क्या उपाय सोचा है? क्योंकि बिना बाहर गए तो कुछ भी न हो सकेगा।'

'पुत्र, तुम क्यों चिंता कर रहे हो? क्या बिना कुछ सोचे ही यह सब कर रही हूँ। हाँ, तुम नहीं जानते इससे पूछ रहे हो। बात ऐसी है कि हमें यह सब सूचना पहिले मिल नहीं सकी, नहीं तो यह अवस्था आने ही नहीं पाती। पर जो हो चुका वह मिट नहीं सकता। भैया अपनी गढ़ी में आ गए हैं और सेना एकत्र कर रहे हैं। तुम्हारी सेनाएँ भी रोक दी गई हैं कि शत्रु से युद्ध न कर रुकी रहें, जिसमें अवसर पर सब शक्ति एकत्र हो कर शत्रु को परास्त कर सके। भैया क्यों आए हैं? कैसे आए हैं? यह ठीक नहीं कह सकती पर यह निश्चय है कि स्वदेश की आपत्ति की पूरी

सूचना पाकर ही वह आए होंगे। वह इतने दिनों तक बाहर रहे हैं कि अब उनकी आज्ञा कालिंजर की सेना बिना तुम्हारी उपस्थिति के कभी न मानेगी। इसलिये तुम्हारा दुर्ग के बाहर जाना भी नितांत आवश्यक है। अतः अवसर समझ कर सब कार्य करना होगा।'

'माताजी, हम कैसे मामाजी से साक्षात करेंगे। हमारी मूर्खता ही से उन्हें इतने दिनों तक देशत्यागी होना पड़ा था।'

'छी, इस समय गत गृहकलह की चर्चा क्यों छेड़ रहे हो जब राज्य ही संकट में पड़ा हुआ है। इसकी रक्षा कर लो, जो हम सबका परम कर्तव्य है, तब फिर इसकी चर्चा की जायगी।'

'जैसी आपकी आज्ञा। जब आपने क्षमा कर दिया है तो मामाजी भी क्षमा कर देंगे। तो अब यही निश्चय है कि हम लोग सभी यहीं रहें। अच्छा, आज्ञापत्र लिख डालूँ, जिसमें समय पर वह तैयार रहे।'

इसके अनंतर ये लोग वहीं एकत्र रहे। नित्यकर्म से निवृत्त हो कर राजा कीर्त्तिवर्मा ने आज्ञापत्र लिख कर उसी परिचारिका को दे दिया कि अंतःपुर की प्रधान परिचारिका को दे आवे कि वह उसे प्रधान मंत्री जी के पास पहुँचा दे। वह उस पत्र को लेकर प्रधान परिचारिका के पास पहुँची और उससे कहा, 'महाराज ने यह आज्ञापत्र कल ही संध्या के पहिले देकर आदेश किया था कि कल सबेरे यह प्रधान मंत्रीजी के पास पहुँचा दिया जाय। इसीलिये इसे आपके पास लाई हूँ, आप इसका प्रबंध कर दें।'

'महाराज कहाँ हैं? कल दिया था, इस समय कहाँ हैं?'

'वे तो महारानियों के साथ कल संध्या होने के पहिले ही

कहीं चले गए। मुझे कुछ ज्ञात नहीं है कहाँ गए, जो आज्ञा हुई वह पूरा कर रही हूँ।'

'अच्छा, इसे तो अभी भेजती हूँ पर यह कैसी घटना है। कहाँ शत्रु सिर पर और महाराज का पता नहीं। महल ही में होंगे, गए कहाँ होंगे। तू झूठ तो नहीं बोल रही है?'

यह कह कर वह अंतःपुर के फाटक पर गई तथा वहाँ के एक द्वाररक्षक को तुरंत मंत्रीजी के पास आज्ञापत्र पहुँचा देने को कह कर भेज दिया। लौटते ही उसे महाराज के महल की परिचारिकाएँ मिलीं, जो कुछ संदेश लेकर ही आई थीं। इसने पूछा, 'क्या है?'

'महाराज तथा महारानी कहाँ हैं? रात्रि में शयनगृह में वे सोए भी नहीं, ऐसा ज्ञात होता है।'

'संध्या के समय तुम लोगों ने कब तक उन्हें देखा था?'

'संध्या के समय वे छोटी महारानी तथा महारानी के साथ उसी कमरे में गए और हम सब को बिदा कर दिया। सबेरे जब हम सब वहाँ गईं तो कोई न था।'

'रात्रि की परिचारिका कौन थी? उसे क्या ज्ञात है?'

'मैं रात्रि भर अपने स्थान पर रही पर कोई आज्ञा नहीं मिली। सबेरे जब ये सब आईं तब मैंने अपनी शंका कही और सबने मिल कर सर्वत्र खोजा पर कहीं पता नहीं।'

'बड़ी महारानी की मुख्य परिचारिका कहती है कि सभी राज-परिवार एक साथ संध्या को कहीं चले गए, कहाँ गए, कुछ पता नहीं। चलो वहाँ का महल भी देख लिया जाय।'

सब एक साथ ही उस ओर गईं और बहुत से कमरे देखती हुई उस कमरे में पहुँचीं, जिसके भीतरी भाग में वे सब मौजूद थे। बाहर वही परिचारिका खड़ी थी, जिससे ये सब प्रश्न पर प्रश्न

करने लगीं। उसने कहा कि वे लोग चले गए, तुम लोग व्यर्थ शोर कर रही हो। देखो न अपने निजी कमरे में महारानी ताला लगा गई हैं और मुझे इसी कमरे में हर समय रहने का आदेश दे गई हैं।'

ताला देख कर सब निश्चिंत हो कर लौट आईं। प्रधान परिचारिका फाटक पर पहुँची और उस द्वाररक्षक को देख कर, जो पत्र ले गया था, पूछा कि, 'पत्र दे आए, मंत्रीजी कुछ पूछ रहे थे।'

'जी हाँ, वह पत्र पढ़ कर सन्नाटे में आ गए और मुझसे धीरे से पूछा कि क्या महाराज महल में नहीं हैं। मैंने कहा कि महल के बाहर तो नहीं आए, भीतर ही होंगे। उन्होंने उस पर मुझे बिदा कर दिया। क्या बात है? महाराज कहाँ गए, आप ही बतला सकती हैं।'

'देखो किसी से कहना मत पर महाराज महल में नहीं हैं।'

बड़ी महारानी के महल में से इन सब परिचारिकाओं के चले जाने के बाद वहाँ की परिचारिका ने ताला खोल दिया और स्वयं बाहरी कमरे के बाहर आकर इधर उधर का समाचार लेती रही। आक्रमण का जो वृत्तांत मिलता वह जाकर कह आती। प्रायः दो पहर बीतते बीतते जब छ फाटकों के टूटने का समाचार मिल चुका तब संध्या होते ही रक्षास्थल को चल देना ही निश्चय हुआ। भोजन आदि का कुल प्रबंध बड़ी महारानी पहिले ही से कर चुकी थीं, इसलिये किसी प्रकार का कष्ट नहीं हुआ था और अब लोगों ने बाहर जाने की तैयारी की। अंतःपुर में इन लोगों के पास जो कुछ बहुमूल्य जवाहिरात थे वे सब छोटे-छोटे थैलों में भर लिए गए थे और संध्या होते-होते अंतिम फाटक के टूटने तथा दुर्ग के भीतर घोर युद्ध होने का समाचार मिल गया। अब इन लोगों ने

ठहरना उचित न समझा और उस परिचारिका को वहीं छोड़ कर बड़ी महारानी आगे-आगे चलीं और उनके पीछे-पीछे पुत्रवधू, छोटी महारानी तथा राजा कीर्त्तिवर्मा चले। ये लोग उद्यान में आए और पूर्व की ओर दीवाल में जो छोटा द्वार था, उसे बड़ी महारानी ने एक ताली से खोल डाला। सबके बाहर निकल आने पर उसी ताली से उसे बंद कर दिया, जो दोनों ओर से लगती थी। ये लोग दीवाल ही के ओट-ओट आगे बढ़ने लगे। जब उद्यान तथा मैदान को पीछे छोड़ कर ये लोग एक टीले के पीछे पहुँचे तब उन्हें वहाँ दो मनुष्य प्रतीक्षा करते दिखलाई दिए। बड़ी महारानी ने पूछा, 'कौन है ?'

उत्तर मिला, 'देवनारायण और भीषम।'

अब बड़ी महारानी ने वे थैले उन दोनों को सौंप दिए और आगे बढ़ीं। वे मार्ग बतलाते हुए साथ-साथ चले। घूमते फिरते वे उस पहाड़ी टीले के पीछे पहुँचे, जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। जब उस स्थान पर पहुँच गए, जहाँ से ऊपर जाना था, तब सब कोई रुक गए। अब बड़ी महारानी ने उन आदमियों में से एक को आगे जाने के लिए कहा और उसे सहेज दिया कि देखो तुम्हारे पीछे-पीछे महाराज जा रहे हैं, ध्यान रखना। उसके अनंतर राजा कीर्तिवर्मा से कहा कि 'इन पौधों तथा इन निकले हुए पत्थरों के आश्रय से ऊपर जाना है, निश्शंक हो कर जाओ, जरा भी भय नहीं है, मैं कई बार जा चुकी हूँ।' राजा कीर्त्तिवर्मा वीर पुरुष तथा सशक्त भी थे, वह ऊपर बिना किसी दूसरे की सहायता के पहुँच कर उसी गुफा में चले गए। अब बड़ी महारानी ने दो पग ऊपर चढ़ कर बहू को अपने पीछे आने के लिए कहा। वह ज़ब एक पग ऊपर चढ़ गई तब बड़ी महारानी आगे बढ़ीं। जब ये लोग पाँच छ पग ऊपर बढ़ गईं तब छोटी महारानी भी

साहस कर उसी प्रकार पीछे-पीछे चलीं और थोड़ी देर में सभी कुशल मंगल से गुफा के भीतर पहुँच गईं।

यह गुफा भीतर से बड़ी लंबी चौड़ी है, जो पहाड़ी के बीच में फट जाने से प्रकृत्या बन गई है। जिस ओर से ये लोग भीतर चले गए थे उसके ठीक दूसरी ओर भी इसी प्रकार खुलता सा भारी मुख था, जिसे मनुष्य ने पत्थर चुन कर कमर तक ऊँचा द्वारजा सा बना दिया था। इन लोगों ने झुक कर देखा कि नीचे एक विशाल पहाड़ी कूप सा है, जो प्रायः बीस गज लंबा तथा दस बारह गज चौड़ा है और जिसमें निर्मल जल भरा हुआ है। ऊपर सिर उठाने पर देखते हैं कि पहाड़ वहाँ से प्रायः बीस ही गज ऊपर जाकर खुल गया है, जिससे वह गुफा बड़ी हवादार हो रही है। ये लोग यह स्थान देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इस गुफा को कपड़े के पर्दों द्वारा कई भागों में बाँट दिया गया था, जिससे भोजनगृह, शयनगृह आदि अलग-अलग बन गए थे। शयनगृहों में पलंग तो न थे पर मोटे-मोटे गद्दों के बिछावनों से वह अत्यंत आरामप्रद हो गया था। यहाँ एक परिचारिका भी पहिले से ही उपस्थित थी।

बड़ी महारानी ने अब उन दोनों अनुचरों को यह कह कर बिदा कर दिया कि तुममें से एक रात्रि भर का समाचार लेकर सबेरा होने के पहिले यहाँ आ जाय और दूसरा दिन भर का समाचार लेकर संध्या को आवे। उन दोनों के चले जाने पर सबने भोजन किया और बातचीत करते हुए आराम किया। गुफा का मुख एक प्रकार के लकड़ी के बने फाटक से दृढ़ता से बंद कर दिया गया।

दूसरे दिन संध्या तक यह निश्चय रूप से इन लोगों को पता मिल गया कि दुर्ग पर शत्रु का पूर्णतया अधिकार हो गया तथा

राजपरिवार की दिन भर खोज की गई और अंत में इन लोगों का पता न मिलने पर त्रिपुरेश्वर दुर्ग में पाँच सहस्र सेना एक अध्यक्ष के अधीन नियत कर अपने पड़ाव में लौट गए। इसके अनंतर इस प्रकार रहते हुए इन लोगों को चार दिन व्यतीत हो गए और कोई नया समाचार नहीं मिला। आज पाँचवाँ दिन भी उसी प्रकार बिना किसी नई घटना के व्यतीत हो गया और रात्रि आ गई। अर्द्धरात्रि हो चुकी थी कि कोई पुरुष उसी मार्ग से गुफा के द्वार पर आया और खटका करने लगा। बड़ी महारानी गुफा के मुख के पास ही के भाग में सोती थीं, यद्यपि राजा कीर्त्तिवर्मा ने वहाँ सोने के लिए कई बार कहा था। गुफा के मुख पर स्वयं रहना ही उन्होंने उचित समझा पर महारानी ने यह समझा कर कि शत्रु यहाँ आ ही नहीं सकता और जो आ सकते हैं उन्हें केवल वही पहिचानती हैं इसलिये उन्हीं का वहाँ रहना ठीक है, उनका समाधान कर दिया। खटका सुन कर वह उठीं और द्वार के पास जा कर पूछा—'कौन है ?'

'मैं हूँ'

'कौन, सबलसिंह ?'

'महारानी, मैं ही हूँ।'

'अच्छा, द्वार खोलती हूँ।'

इसके अनंतर भीतर से महारानी ने द्वार खोला और सबलसिंह की सहायता से उसके हटाए जाने पर यह भीतर पहुँचे। द्वार पुनः बंद कर यह महारानी की आज्ञा से उनके बिछावन के पास ही बैठ गए तब दोनों में एक दूसरे की ओर देखते हुए इस प्रकार बातचीत होने लगी।

(भर्राई सी आवाज में) 'बहुत दिनों पर, कई वर्षों पर तुम्हें भला हमारी याद तो आई।'

(उसी प्रकार) 'छ वर्ष सात महीने ग्यारह दिन हुए कि महारानी का दर्शन नहीं कर सका। मेरा दुर्भाग्य।'

'क्या दिन गिना करते हो ? तुम्हारा ही क्यों सबल ?'

'मन गिना करता है जिस पर मेरा वश नहीं। (धैर्य के साथ) अस्तु, अब आगे क्या कर्तव्य है, इस पर विचार करना चाहिये।'

'दूर रहते भी तुम्हारे ही कारण आज कालिंजर का राजपरिवार शत्रु के हाथ से बच कर तुम्हारे आश्रय में निरापद वास कर रहा है। अब आगे जिस प्रकार राज्य का उद्धार हो, उसका उपाय सोच निकालना भैया का और तुम्हारा काम है, इसमें हम क्या राय दे सकती हैं।'

'क्यों न कहेंगी। हम लोगों की बुद्धि को आप ही के कारण स्फूर्ति मिलती है, चाहे आप प्रत्यक्ष सामने हों या न हों।'

'अच्छा-अच्छा, बातें न बनाओ। क्या हो चुका और क्या करना है, सब सिलसिलेवार पहिले बतलाओ, तब मैं भी कुछ बतलाऊँ।'

'तब जिस दिन से हम लोग देशत्यागी हुए हैं उस दिन से आरंभ कर सब वृत्त कह डालें तभी ठीक होगा। आज रात्रि में तो कुछ काम करना नहीं है, इसलिये अवकाश भी है।'

इसके अनंतर सबलसिंह ने कुल वृत्त उस समय तक का कह डाला, जब कि सब कोई गढ़ी में सुरक्षित पहुँच गए। इसमें महारानी के भाई, भतीजे तथा भतीजी पर जो कष्ट पड़े थे वह सब सुनने से उनके नेत्रों से जल की धारा सी बह रही थी। धैर्य धारण कर महारानी ने कहा—

'न जाने किस कुयोग में हम दोनों भाई बहिन का जन्म हुआ

है कि कष्ट भोगते ही जीवन बीत रहा है, हैं तो अब सब कोई कुशलपूर्वक ?'

'जी हाँ।'

'यह गोपाल कौन है, कुछ पता है ?'

'अभी इतना ही ज्ञात है कि यह ब्राह्मणपुत्र है पर इसके जीवन में रहस्य अवश्य है। इसका पता इस राज्यविप्लव से छुटकारा मिलते ही लगाऊँगा। है यह अत्यंत सुशील तथा वीर युवक। देखेंगी तो पुत्र सा स्नेह करेंगी।'

'अच्छा, भैया ने कितनी सेना एकत्र की है ?'

'एक सहस्र सवार और तीन सहस्र पैदल। इनमें प्रत्येक चुना हुआ बलवान तथा रणकुशल सैनिक है। अपनी सेना का आधिपत्य सामंत ने इन्हीं गोपाल को सौंपा है और रामेंद्र स्वयं इनके सहकारी बने हैं।'

'अच्छा।'

'पिता-पुत्र दोनों ही इनकी रणदक्षता पर मुग्ध हैं।'

'अपनी राय बतलाओ, तुम क्या समझते हो ?'

'है वह इसी योग्य। हाँ, जिन भीलों ने विद्रोह कर रखा था वे इस समय इन्हीं लड़कों के सुव्यवहार से दास बन गए हैं और युद्ध में एक सहस्र धनुर्धरों के साथ सहयोग देने को तैयार हैं। भिल्ल सरदार की स्त्री को वन में शेर उठा ले गया था, जिससे गोपाल, रामेंद्र तथा इरावती ने बचाया और इसी कारण वे सब शांत हो गए हैं।'

'अच्छा ही हुआ। महाराज की सेना का क्या हाल है ?'

'सब ठीक है, प्रायः पंद्रह सहस्र सेना तैयार है, जो अवसर आते ही एकत्र हो जायगी। इस प्रकार बीस सहस्र सेना का प्रबंध

हो गया है और महाराज के गद्दी पर पहुँचने पर बचा प्रबंध भी ठीक हो जायगा।'

'यहाँ से हटने का समय कब आवेगा ?'

'जब कर्णदेव अपने राज्य को लौट जायगा। कोई कष्ट तो यहाँ है नहीं और न किसी वस्तु की कमी ही है। हमने दस बारह मनुष्य और भी यहाँ नियत कर दिए हैं जो समय पर काम आ सकेंगे। और कुछ आज्ञा है क्योंकि अब चलूँगा। रात्रि प्रायः बीत रही है। (महारानी की ओर देखता हुआ) बहुत से काम हैं, इसीसे शीघ्रता कर रहा हूँ।'

'कैसे कहूँ, बहुत दिनों पर तो दर्शन दिया है। (शीघ्रता से) यहाँ अवसर के अनुसार कोई कमी नहीं है और न कष्ट ही है। हाँ, देखो यह समय बहुत ही सतर्क रह कर चलने का है। भैया से भी कह देना और इरा तथा रामेंद्र से मेरा स्नेहाशीष भी कह देना। (भर्राई आवाज से) तो अब जाओगे। देखो फिर कहीं मत चल देना। यथाशीघ्र फिर आ कर आगे का वृत्त कहना।'

'जैसी आज्ञा।'

यह कह कर तथा द्वार खोल कर सबलसिंह नीचे उतर गए। प्रायः पाँच बज रहा था और महारानी गुफा के मुख पर कुछ देर तक खड़ी रह कर बाहर की ओर देखती रहीं। इसके अनंतर द्वार बिना बंद किए ही अपने स्थान पर आ बैठीं। कुछ ही देर में पक्षियों के कलरव सुनाई पड़ने लगे, जो व्यथित हृदया महारानी को अत्यंत शांतिप्रद मालूम हो रहे थे।

पंचदश परिच्छेद

उक्त बातचीत के तीन दिन बाद गुफा में राज-परिवार भोजन आदि से निवृत्त होकर शयन करने का प्रबंध कर रहा था कि सबलसिंह शीघ्रता के साथ उस गुफा में आ उपस्थित हुए और बड़ी महारानी को संबोधन कर बोले,

'महारानीजी, आप लोगों के दुर्ग के बाहर निकल चलने का अवसर आ गया है। अभी दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा मिल जाने पर दौड़ा आ रहा हूँ। दुर्ग के बाहर सवारी का प्रबंध है पर आप लोगों को वहाँ पहुँचने तक पैदल ही चलना होगा। शोक है कि मैं दूसरा प्रबंध कर नहीं सका।

'सबलसिंह, क्या अभी चलना निरापद है? यदि तुम निरापद समझते हो तो हम निश्चिंत हैं।'

'ठीक है, कोई भय नहीं है। मैंने इस प्रकार प्रबंध किया है। शत्रु-दुर्गाध्यक्ष से यह कह कर आज्ञा ले ली गई है कि दुर्ग के एक निवासी के यहाँ पुत्रवधू को बिदा कराने के लिए कुछ लोग युद्ध के पहिले ही से आए थे और युद्ध ही के कारण उन्हें कई दिनों तक रुक जाना पड़ा था। अब शांति हो गई है, और आज ही तीन बजे प्रातःकाल प्रस्थान करने की साइत है इसलिये दुर्ग के बाहर जाने की आज्ञा दे दी जावे। उन्होंने आठ स्त्री पुरुष को बाहर जाने का आज्ञापत्र दे दिया है; इससे अब मैं निश्चिंत हूँ। प्रायः बारह का समय हो रहा है, इसलिये अब उसी मकान में चलना चाहिए, जहाँ से बिदाई होगी, जिसमें अवस्थानुकूल कपड़े आदि से सुसज्जित हो सकें।'

'तब ठीक है (मुस्किरा कर) हमारी पुत्रवधू को लिवा जाने के लिए हमारा पुत्र साथ में हई है।'

'एक परिचारिका तथा दो नौकर मायके वाले पहुँचाने को साथ देंगे, तीन हुए और एक पुत्रवधू ये चार दुर्ग के निवासी हुए और कई स्त्रियाँ तथा दो पुरुष पिता-पुत्र बुलाने वाले लिखा दिए गए हैं। आप दोनों महारानियाँ दो स्त्री बनेंगी और महाराज तथा मैं दोनों पुरुष बनेंगे।'

'सबलसिंह, यह सब कैसा नया संबंध जोड़ रहे हो। कहीं समय पर कोई भूल हो जाय तो बड़ी आपत्ति आ जायगी।'

'कुछ नहीं महारानी, आपत्तिकाल में देश की रक्षा के लिए सब कुछ करना पड़ता है। आप लोगों को कुछ भी बोलना न पड़ेगा, केवल मेरे पीछे-पीछे चले आना है। बक-बक करने, झूठ-सच बोलने के लिए तो फालतू मैं हई हूँ।'

'ठीक है, फालतू अवश्य हो। क्यों पुत्र, अब चलना चाहिए।'

'जैसी आपकी आज्ञा। मैं तो इन्हें पहिचानता भी नहीं इस-लिये मैं कुछ नहीं कह सकता।'

'पुत्र, हमारा विश्वास इन पर भैया से अधिक नहीं तो कम भी नहीं है इसलिये यह जो कह रहे हैं, वही करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ।'

'तब ठीक है, पर रत्नादि के ये थैले किस प्रकार जायँगे।'

'बिदाई के समय कुछ गठरियाँ साथ रहेंगी, उन्हीं में ये सब रख ली जायँगी।'

'तब चलिए।'

'सबलसिंह ने सब थैले एकत्र कर अपने कमर के चारो ओर बाँध लिए और पहिले आगे-आगे उतरे। उनके पीछे-पीछे महाराज कीर्त्तिवर्मा, पुत्रवधू, छोटी महारानी और तब बड़ी महारानी

बड़ी सतर्कता से धीरे-धीरे उतरीं। नीचे आ जाने पर ये लोग फुर्ती पर सावधानी से टीले, वृक्षों की आड़ लेते हुए महल की ओर न जाकर उस ओर चले, जहाँ कुछ वैसी प्रजा बसी हुई थी, जो महल में सामान रसद आदि पहुँचाने का कार्य करती थी। घोर रात्रि थी अतः शत्रु सैनिक कहीं न मिले और ये लोग एक छोटे से मकान में निरापद जा पहुँचे। यहाँ इन लोगों ने कुछ सुस्ता कर अपने अपने वस्त्र बदल कर साधारण कोटि के गृहस्थों से कपड़े पहिर लिए और दुर्ग के बाहर चलने की तैयारी की गई। सबलसिंह ने ये कपड़े पहिले ही से जुटा रक्खे थे और खाने पीने तथा अन्य प्रकार के सामान, जो बिदाई के समय साथ दिए जाते हैं, कई गठरियों में बँधे हुए तैयार रखे थे। इन्हीं में उन थैलों को छिपा कर बाँध दिया गया। बड़ी महारानी की मुख्य परिचारिका यहाँ उपस्थित थी और दो आदमी भी साथ जाने को तैयार थे। कई स्त्री पुरुष भी घर में इन लोगों को बिदा करने के लिए मौजूद थे।

प्रायः तीन बज गया था कि ये सब लोग यहाँ से रवानः हुए। कुल सामान तो दोनों सेवकों तथा परिचारिका ने ले लिए थे पर दो एक छोटी पोटली बची थीं उन्हें सबलसिंह ने स्वयं ले लिया और सबके आगे आगे चले। जब ये लोग पहिले फाटक पर पहुँचे तब द्वाररक्षकों ने इन्हें टोंका। सबलसिंह ने जोर से कहा,

'हैं हैं, टोंको मत, यात्रा के समय टोंकना भले आदमियों का काम नहीं है। देखो, अपने नायक को बुलाओ, आज्ञापत्र मेरे पास है। खुशी के समय ऐसे न टोंकना चाहिए।'

यह सुन कर एक तो नायक को बुलाने चला गया, जो पास ही खेमे में था और दूसरे ने पूछा,

'क्या बात है भई, कैसी खुशी?'

'अरे देखते नहीं, पुत्र और पुत्रवधू को बिदा करा कर लिवा

जाता हूँ अब इससे बढ़ कर क्या खुशी होगी। बुढ़ौती में भइआ इससे बढ़ कर और क्या प्रसन्नता हो सकती है।'

'हाँ भइआ ठीक है, ईश्वर करे यात्रा शुभ हो। माल भी खूब मिला है, अपने भी लादे हो।'

'हाँ यार छोड़ कैसे दें। पुत्र के ससुराल का माल छोड़ा जा सकता है।'

'हम लोगों का भी कुछ मुख मीठा न कराओगे।'

'अवश्य, अकेले पचेगा भी नहीं।'

यह कह कर सबलसिंह ने कुछ निकाल कर दिया ही था कि नायक भी आ गए और आज्ञापात्र देख कर तथा इन लोगों को गिन कर जाने की आज्ञा दे दी। फाटक खोला गया और इन लोगों के बाहर निकल जाने पर बंद कर दिया गया। इसी प्रकार क्रमशः सभी फाटकों पर आज्ञापत्र दिखलाते और द्वाररक्षकों का मुख मीठा करते हुए सबलसिंह सबको लिवा कर दुर्ग के बाहर निकल गए और कुछ दूर जाने पर पेड़ों के एक झुरमुट में पहुँचे। यहाँ दो तीन मनुष्य कई घोड़े तथा एक रथ लिए हुए ठीक उसी समय आ पहुँचे, जो कुछ दूर पर ठहरे हुए थे। उस रथ पर सब सामान रख दिया गया और तीनों रानियाँ भी उसमें जा बैठीं। दासी भी रथवाहे के पास बैठ गई। इस रथ में दो भारी नागौरी बैल जुते हुए थे, जो बड़े वेगगामी थे। महाराज कीर्तिवर्मा, सबलसिंह तथा दोनों सेवक घोड़ों पर सवार हो गए और पश्चिम की ओर कुछ दक्षिण झुकते हुए रवाने हो गए। ये कुछ ही दूर गए थे कि गोपाल पचास सवारों के साथ इनसे आ मिला और चारों ओर सवार बाँट कर साथ साथ चलने लगा।

सुबह होते-होते ये लोग वीरगढ़ी के फाटक पर पहुँच गए, जहाँ इन लोगों का स्वागत करने के लिए सामंत वारेंद्रनारायण-

सिंह, रामेंद्रनारायणसिंह तथा कुमारी इरावती पहिले ही से उपस्थित थीं। सामंत ने महाराज कीर्त्तिवर्मा का अभिवादन कर उन्हें हाथ पकड़ कर घोड़े पर से उतारा। रामेंद्र तथा अन्य उपस्थित सरदारों और सैनिकों के अभिवादन कर लेने पर महाराज इन सरदारों के साथ ऊपर गढ़ी पर गए। इरा ने अब बाहरी लोगों को हटा कर रथ पर से तीनों रानियों को उतारा और अपनी बुआ तथा छोटी महारानी के पैर छुए वह महाराजा कीर्तिवर्मा की पत्नी के पैर भी छूने को झुक रही थी कि उन्होंने उसे पकड़ कर गले लगा लिया। अब ये सब गढ़ी पर जाने लगीं, जिनके पीछे-पीछे सबलसिंह, रामेंद्र तथा गोपाल थे। सबलसिंह ने बड़ी महारानी को लक्ष्य कर कहा,

'महारानी जी, आपके रामेंद्र आपका पैर छूना चाहते हैं पर अन्य रानियों के कारण चुपचाप हैं, क्या आप अपना सारा स्नेह इरा पर ही लुढ़का देंगी ?'

'ओह, मैंने समझा था कि वह गढ़ी पर चला गया है। आओ बेटा, हाँ, यह तुम्हारी छोटी बुआजी हैं, इनके पैर भी छुओ; कीर्ति तुम से बड़ा है, यह उसकी राजवधू है, हाथ जोड़ो। सबलसिंह, हमें अब दो पुत्र हैं, एक कीर्ति और दूसरा रामेंद्र। देखें तीसरा पुत्र इरा का पति कब प्राप्त होता है।'

'यही गोपाल हैं, जिनके बारे में मैंने सब वृत्त आप से कहा था। आशीर्वाद दीजिए।'

गोपाल ने इसी समय अभिवादन किया और इरा अचानक सबलसिंह की यह बात सुन कर सिहर सी उठी। अब ये लोग ऊपर पहुँच गईं और इरा रानियों को लिवा कर महल में चली गई। शीघ्र ही राजपरिवार के रहने के लिए स्थान, दास दासियों आदि का यथायोग्य सब प्रबंध कर दिया गया और अंतःपुर का

कुल प्रबंध बड़ी महारानी ने स्वयं अपने हाथ में ले लिया। महाराज कीर्तिवर्मा एक प्रकार अपने नानिहाल में थे और राज्य छिना हुआ था अतः राज्य-प्रबंध से निश्चिंत थे। रामेंद्र तथा गोपाल प्रायः इनके समवयस्क थे, इसलिये शीघ्र ही इन लोगों से मित्रता हो गई और ये लोग साथ-साथ घूमने तथा अहेर खेलने जाया करते थे। कभी-कभी इरा भी साथ जाती थी, जिसपर कीर्तिवर्मा छोटी बहिन सा स्नेह रखते थे। उसकी घुड़सवारी, अस्त्र चलाने की निपुणता आदि देख कर प्रसन्न होते और प्रशंसा करते। कीर्तिवर्मा की रानी ऐसी ननद पाकर इतनी प्रसन्न थी कि उसका कभी साथ नहीं छोड़ती थी। दोनों महारानियाँ भी उसपर समान स्नेह रखती थीं। वास्तव में बड़ी महारानी भुवनदेवी ने जब महल का सब प्रबंध अपने हाथ में ले लिया तब इरा को बिलकुल छुट्टी मिल गई। इसे ही जो आवश्यकता होती वह बूआजी से जा कर कहती थी। उसने अपने भाई पर यह बात ले कर कई बार व्यंग्य भी कसे थे।

इन लोगों के गढ़ी में आने के एक सप्ताह बाद गुप्त मंत्रणा के लिये परिषत् बैठी, जिसमें राजा कीर्तिवर्मा, वारेंद्रनारायणसिंह, रामेंद्र, गोपाल तथा सबलसिंह के सिवा बड़ी महारानी भी उपस्थित थीं। राजगद्दी लगी हुई थी पर कीर्तिवर्मा उस पर न बैठ कर रामेंद्र के पास ही बैठे हुए थे। वारेंद्रनारायणसिंह ने पूछा,

'सबलसिंह, अब तक क्या क्या कर चुके हो, सब बतलाओ।'

'महाराज के सब आज्ञापत्र सामंतों के पास पहुँचा दिए गए हैं और वे लोग भी दत्तचित्त हो कर तैयारी कर रहे हैं। दोनों सेनापतियों ने भी आदेशानुसार प्रबंध कर रखा है और सभी आज्ञा की प्रतीक्षा में हैं। इस समय सभी देशभक्ति तथा राजभक्ति के उल्लास से भरे हुए हैं।'

'दुर्ग में शत्रु क्या कर रहे हैं ?'

'दुर्ग में पूरी पाँच सहस्त्र शत्रु-सेना है और उसके लिए रसद इकट्ठा करने का वे बहुत प्रयत्न कर रहे हैं पर कुछ मिल नहीं रहा है। जहाँ जहाँ से मिल सकता था वहाँ से पहिले ही हटवा कर मैंने अपनी गढ़ी में भरवा लिए हैं और ऐसा प्रबंध किया है कि होते हुए भी उन्हें न मिले। दुर्गाध्यक्ष ने त्रिपुरी समाचार भेजा है।'

'मामाजी, यदि वहाँ से काफी रसद आ जायगी तो दुर्ग टूटने में कठिनाई पड़ेगी।'

'क्यों सबलसिंह, इसके बारे में क्या सोचा ?'

'स्वामिन् समाचारवाहक के साथ मेरे चर गए हुए हैं। वहाँ से रसद के रवाने होते ही समाचार आ जायग और वह बीच ही में से लूट कर यहीं पहुँचा दिया जायगा। त्रिपुरी से कालिंजर तक के मार्ग में मुख्य मुख्य स्थानों पर छिपे हुए थाने स्थापित कर दिए हैं, जिससे उनसे छिप कर कोई भी आ जा नहीं सकता।

'महाराज कर्णदेव इस समय क्या कर रहे हैं और उन्हें हम लोगों की कार्यवाही का कुछ पता लगा है या नहीं।'

'अभी वे निश्शंक हैं, केवल राज-परिवार के न पता लगने के कारण वे कुछ चिंतित रहते हैं और बराबर दुर्गाध्यक्ष को पता लगाने के लिए लिखते रहते हैं। अचलदेव भी बराबर प्रयत्न कर रहे हैं।'

'अचलदेव कौन ?'

'कालिंजर के वर्तमान दुर्गाध्यक्ष। महाराज कर्णदेव इस समय दक्षिण के विद्रोह से भी कुछ व्यस्त हैं और आपके साथ उनकी अनुपस्थिति में जो व्यवहार हुआ है, उससे भी वे अत्यंत क्षुब्ध हैं। परम न्यायप्रिय होने के कारण उन्होंने आचार्य रुद्रशिव को उस मठ से हटा दिया है और युवराज को दूर स्थित किसी दुर्ग में रहने के

लिए भेज दिया है। हूणराज की गढ़ी छीन ली गई है और महारानी आवल्लदेवी के महल में महाराज ने जाना छोड़ दिया है।'

'महाराज कर्णदेव से जैसी हमें आशा थी, वैसा ही उन्होंने किया है।'

'त्रिपुरी के चर भी घूम रहे हैं। धूर्तराज इस गढ़ी का भी एक चक्कर काट गया है पर वह युद्ध की इस गुप्त तैयारी का कुछ भी पता अब तक नहीं पा सका है। हो सकता है कि उसे इसकी अभी आशंका भी न हो। शीघ्रता भी सफलता के लिए आवश्यक है। दूसरे त्रिपुरी से आती हुई रसद को छीन लेने पर तुरंत ही महाराज कर्णदेव सशंक हो उठेंगे और न छीन लेने पर दुर्ग में रसद पहुँच जाने पर उसे लेना भी कठिन होगा। इस चिंता को अभी मिटा नहीं पाया।'

'और आशा यही है कि शीघ्र ही वहाँ से रसद रवाना हो जायगी।'

'पिताजी, यदि हमारे भील उस रसद को वहीं घोर वन में छीन लें तो क्या यह समस्या हल नहीं होती? शत्रु समझेगा कि जंगली डाकुओं का यह कार्य है।'

'बात तो तुमने ठीक कहा, कुमारी इरा।'

'कभी कभी बाल-चापल्य भी अच्छी युक्ति सोच निकालती है। यदि इससे अच्छा उपाय न मिले तो यही ठीक रखा जाय।'

'इसका प्रबंध किए देता हूँ। वे लूटेंगे भी और उसे उठा ला कर ठिकाने पहुँचा भी देंगे। अच्छा आप लोग यह तो निश्चय कर लें कि सेनापतित्व किसे दिया जायगा क्योंकि प्रधान सेनापति जी तो दुर्ग में बंद हैं।'

'हमारी सम्मति है कि मामाजी ही हमारी सेना का आधिपत्य अपने हाथ में लें। क्यों माताजी, आपकी क्या राय है ?'

'इस विषय में हमारा ठीक राय देना कुछ कठिन है। यों तो मैं अपने भाई ही को सबसे योग्य, कुशल और अनुभवी समझूँगी पर इस पद के योग्य और भी किसी का नाम प्रस्तावित हो तो कुछ अधिक कह सकूँ। तुम क्या समझते हो सबलसिंह ?'

'महारानीजी, मेरे लिए ऐसे कार्य में हस्तक्षेप करना अनधिकार चेष्टा है।'

'नहीं, तुम्हारी सम्मति का मूल्य भैया और हम दोनों समझते हैं। यहाँ और ये सब लड़के ही हैं, इस लिये हम लोगों का एक राय निश्चित कर लेना ठीक है।'

'यदि ऐसी आज्ञा है तो मेरी यही सम्मति है कि महाराज ने जो कहा है वही उचित है पर तत्त्वतः अर्थात् कुल सैन्य के संचालन का वास्तविक भार तो सामंतजी ही पर रहे पर प्रकट रूप में, दिखलाने के लिए, महाराज स्वयं प्रधान सेनापतित्व करें। इससे कई लाभ हैं। मुख्यतः गृह ही के झगड़े न हो सकेंगे क्योंकि तब किसी सरदार को आज्ञापालन में हिचकिचाहट न होगी और उनमें से कोई यह प्रश्न न उठा सकेगा कि प्रधान सेनापतित्व के लिए हमारा स्वत्व है या नहीं। साथ ही सामंतजी पर देशत्याग कर उसी शत्रु के आश्रय लेने के कारण, जिससे वे अब युद्ध करने को सन्नद्ध हैं, जो आक्षेप हो सकते हैं वह भी न हो सकेगा।'

'बहुत ही उचित है और तब मैं पूर्ण अधिकार के साथ कुल शक्ति काम में ला सकूँगा। वास्तव में स्वतंत्र अधिकार के होते भी इस जरा सी ओट से हम पर कोई भी देशत्याग तथा शत्रु-आश्रय को लेकर आक्षेप न कर सकेगा और न महाराज का कान भरने का उपाय सोचेगा। ऐसे कठिन समय में किसी के भी

मन में कुछ शंका न रहे और सब एक हृदय हो कर इस स्वातंत्र्य-युद्ध में योग दें, यही हम लोगों का ध्येय होना चाहिए।'

'तब यही राय निश्चित हुई। क्यों कीर्त्ति ?'

'जैसी आज्ञा।'

'साथ साथ हमारा एक प्रस्ताव और है। सामंतजी की कुल सेना एक स्वतंत्र दल के रूप में रहे, प्रधान राजकीय सेना से एक दम अलग और उसके अध्यक्ष हों हमारे नवयुवक अपरिचित गोपालजी।'

'इसका कोई विशेष कारण है क्या ?'

'जी हाँ, इस दल का कार्य होगा अपनी गढ़ी की रक्षा करना, शत्रुसेना के इस ओर चले आने पर उसके तथा शत्रुराज्य के बीच में संबंध-विच्छेद स्थापित करना और युद्ध के समय अपने जिस भाग को निर्बल देखें उसकी सहायता करना आदि। यह चलता दल होगा जो आवश्यकता पड़ने पर सर्वत्र उपस्थित ज्ञात हो और इसी से युवक सेनापति ही इसके उपयुक्त होगा। गोपाल के अथक उत्साह, सहनशीलता आदि गुणों का अनुभव मिल चुका है, इस लिये इन्हीं को मैंने चुना है।'

'ठीक है, यह तुम्हारी आशा से बढ़कर ही काम करेंगे। अच्छा तो आज से गढ़ी का कुल सैनिक प्रबंध गोपाल, तुम्हारे अधीन हुआ। इसका उत्तरदायित्व तुम पर है और याद रखना कि संसार में उन्नति का तुम्हारे लिए यह प्रथम सोपान है। यद्यपि जो कार्य तुम्हें सौंपा गया है वह विशेष परिश्रम, जोखिम तथा उत्तरदायित्व का है पर यही अवस्था ऐसे कार्य के लिए उपयुक्त भी है। सबलसिंह, अब समय आ गया है कि सेनाएँ क्रमशः एकत्रित की जायँ और उनके अभावों का निरीक्षण कर उन्हें सुसज्जित

भी किया जाय, जिससे वे अवसर आते ही तुरंत युद्ध के लिए तैयार हो सकें।'

'उचित है, ऐसा ही होगा।'

इस प्रकार आगे का कार्यक्रम निश्चित हो जाने पर यह मंत्रणा-परिषत् समाप्त हो गई और भुवनदेवी महल में चली गईं। इरा भी साथ गई पर जाते समय रामेंद्र से कहती गई कि, 'भैया, आज मैं भी वायुसेवन के समय साथ चलूँगी।' थोड़ी देर बाद रामेंद्र, गोपाल और इरा तीनों वायुसेवन के लिए उसी वन की ओर रवाने हुए। सबलसिंह भी आज साथ थे। इन लोगों के साथ पच्चीस सवारों का एक दल कुछ दूर पीछे-पीछे आ रहा था। ये लोग वन में घूमते-फिरते उसकी शोभा देखते हुए एक विशाल जलाशय के पास पहुँचे, जिसका निर्मल जल वायु द्वारा परिचालित हो कर लहरें ले रहा था। उसके चारों ओर के वृक्ष पौधे झुक-झुक कर कहीं-कहीं जल में लटक रहे थे, जिनकी ओट में कितने जलपक्षियों की नीड़ें थीं, बड़े-बड़े जलपक्षी जल में तैरते हुए उसकी शोभा बढ़ा रहे थे और उनके शब्द भी कानों को अत्यंत प्रिय लग रहे थे। ये लोग घोड़ों पर से उतर कर उसी जलाशय के तट पर टहलने लगे। इधर उधर की बातचीत करते हुए सबलसिंह ने एकाएक गोपाल से पूछा,

'आपने धारा को कितने दिनों से छोड़ा है?'

'यही प्रायः तीन मास के होते हैं।'

'आप वहाँ किस स्थान पर रहते थे?'

'फूल चौक के पास ही पिताजी का प्रासाद है।'

'मैं समझ गया। पंद्रह सोलह वर्ष हुए, जब मैं धारा में कुछ समय तक रहा था। अच्छा आपके पिता का नाम क्या था?'

'ज्योतिर्विद् पं० बटुकनाथजी शास्त्री।'

'अच्छा, आपकी अवस्था क्या होगी ?'

'बीस वर्ष पूरे हो गए, इक्कीसवाँ आरंभ हुआ है।'

'(चुपचाप गोपाल की ओर देख कर) क्या रहस्य है ? कुछ समझ में नहीं आता।'

'कैसा रहस्य, क्या बात है, कुछ बतलाओ।'

'पहिले जो मैं पूछूँ वह बतलाइए। उक्त पंडितजी ने आपसे कभी आपके जन्म के विषय में भी कुछ कहा था ?'

'कुछ नहीं और कहने को था ही क्या ? मृत्यु के समय वह कुछ कह रहे थे किंतु कह न पाए।'

'आपके यहाँ कोई पुराना सेवक भी है, जो आपके जन्म के पहिले से हो ?'

'है, एक वृद्ध मल्लाह है, जो बचपन से नौकर है।'

'तब कुछ स्यात् पता लग सकेगा।'

'क्या पता लगेगा, रहस्य क्या है ? अब बतलाइए।'

'भई, बात यह है कि पंद्रह सोलह वर्ष हुए होंगे, जब मैं कार्यवश धारा गया था और इन ज्योतिषीजी के यहाँ बहुधा जाया करता था। उन्होंने अपने निस्संतान होने तथा तज्जनित दुःख की कई बार चर्चा की थी। उनके पुत्र आप बीस वर्ष के हुए। दोनों का मेल नहीं खाता। अतः अब केवल एक बात हो सकती है कि आप उनके पोष्य-पुत्र हों पर आपको इस विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। संभव है कि चार पाँच वर्ष की अवस्था में उन्होंने आपको दत्तक लिया हो।'

'या न लिया हो, कहीं रास्ते में पड़ा पा गए हों। तुम तो इन पर इतना विश्वास करते हो और यहाँ इनके जन्म ही का पता नहीं है।'

'(मुस्किरा कर) क्यों कुमारी, क्या तुमसे अधिक विश्वास

करता हूँ ? तुम डरो मत, मैं शीघ्र ही पता लगाऊँगा कि यह कौन बला है ? मेरी समझ में यह अब्राह्मण है और यही कारण है कि पंडितजी ने इन्हें निरा पंडित नहीं बनाया है।'

'तब तो इन्हें इनके गुणों के अनुसार क्षत्रिय ही कह सकते हैं।'

'ठीक है, भैया।'

इसी समय इन लोगों से कुछ हट कर दो मनुष्यों के जल में धमाधम कूदने का शब्द सुनाई दिया और उसके अनंतर खिल-खिला कर हँसने तथा तैरने की आवाज आई। ये वृक्षों की ओट में थे और संध्या भी हो गई थी, इस लिये तैरनेवाले इन्हें देख न सके। चंद्र निकल आए थे, जिनकी प्रकाशकिरणें जल की लहरियों पर नृत्य कर रही थीं। वे तैरनेवाले जब जल में आगे बढ़े और इन प्रकाशित लहरियों को काटते हुए आपस में एक दूसरे पर जल फेंकने लगे तो ऐसा दृश्य दिखलाई पड़ा मानों वे एक दूसरे पर सुनहली मुक्ताओं की बौछार कर रहे हों। इन लोगों ने देखते ही पहिचान लिया कि उनमें एक उस दिन की भील युवती है और दूसरा उसी का पति भील सरदार है। वे स्वच्छंद हो जल विहार कर रहे थे और उनकी हँसी, विनोद, गाना तथा तैरना उस दृश्य को सजीव बना रहा था। ये लोग इस दृश्य को देख कर प्रसन्न हो रहे थे पर ऐसा करना अनुचित समझ कर वे वहाँ से हट कर अपने घोड़ों की ओर टहलते हुए चले। इन लोगों के साथ चलने से और बीच-बीच में खुलती जगहों में दिखला जाने से तैरने वालों की भी दृष्टि इन पर पड़ी तथा वे शांत हो गए। शीघ्र ही वे दोनों स्नान से निवृत्त हो कर तथा अपने साधारण वस्त्र पहिर कर वहाँ पहुँचे, जहाँ ये लोग अपने घोड़ों पर सवार हो रहे थे। युवती को देखते ही इरा ने मुस्किरा कर कहा,

'सोमी, भाग क्यों आई ? हम लोगों को मालूम नहीं था, नहीं तो तेरे जलविहार में विघ्न न पड़ता।'

'(लज्जित सी) नहीं कुमारीजी, स्नान ही तो करने आई थी।'

'झूठी कहीं की, तब क्या इसने जबरदस्ती तुझे पानी में ढकेल दिया था। यदि ऐसा है तो इसे दंड देना चाहिए। क्या दंड दिया जाय, बतला।'

'इरा, क्यों बेचारी को लज्जित कर रही हो, यह सब शरारत वास्तव में इसी की है, कैसा चुपचाप खड़ा है, मानों बिलकुल निर्दोष है। क्योंजी, कुछ बोलो।'

'कैसे बोलूँ, सभी ने जो मुझे दंडनीय बतला दिया है।'

सभी हँस पड़े। सबलसिंह ने पूछा, 'क्योंजी, त्रिपुरी से कुछ संदेश मिला ?'

'जी, रसद का सामान एकत्र हो रहा है और दो तीन दिन में वहाँ से रवाने भी किया जायगा। कुछ धन तथा शस्त्र आदि भी भेजे जायँगे।'

'अच्छा ही है। हाँ, एक नई आज्ञा भी हुई है। मार्ग में कुल सामान लूट लेने का कार्य आपको ही सौंपा गया है, जिसमें त्रिपुरीवाले यही समझें कि यह कार्य डाकुओं का है, कालिंजर-नरेश का नहीं।'

'जैसी आज्ञा, तब मैं कल ही से इस प्रबंध में लगूँगा। सुना है कि दो सौ सवार साथ में रक्षार्थ आवेंगे इस लिये मार-काट अवश्य होगी।'

'मार्ग में वही घाटी इस कार्य के लिए उपयुक्त होगी क्योंकि टीलों की आड़ से तुम्हारे धनुर्धारियों को शत्रुओं को मार गिराने में विशेष सुविधा होगी।'

'ठीक है।'

'अच्छा यह भी सुन लो कि गढ़ी की कुल सेना के अध्यक्ष यह गोपालजी नियत किए गए हैं और आगे की आज्ञा यही दिया करेंगे।'

'(अभिवादन करता हुआ) जैसी आज्ञा।'

'सोमी, अब तो तुझे तीन चार दिन की छुट्टी रहेगी, अवश्य आना, आवेगी न ?'

'अवश्य।'

इसके अनंतर वे दोनों चले गए और ये लोग भी गढ़ी को लौट आए।

षष्ठदश परिच्छेद

आज गढ़ी में कुछ रात्रि रहते ही बड़ी हलचल मच गई है। सैकड़ों भील भैंसों तथा बैलों पर सामान लादे हुए बराबर चले आ रहे हैं और फाटक के भीतर उन्हें आज्ञानुसार यथा स्थान रख कर लौट रहे हैं। यह कार्य कुछ देर तक चलता रहा और प्रायः आठ बजते-बजते पूरा हो गया। अंत में कई सौ कोतल घोड़ों के साथ, जिन पर भी कुछ सामान था, भील सरदार आया और वह उन सबको वहीं सौंप कर गढ़ी के ऊपर जा कर गोपाल के पास पहुँचा, जहाँ रामेंद्र भी बैठे थे। अभिवादन करने पर इसे बैठने की आज्ञा मिली और तब गोपाल ने पूछा।

'कुल वृत्त सविस्तर बतलाइए।'

'उस दिन के आज्ञानुसार मैंने दूसरे ही दिन अपने आदमियों के चार झुंड क्रमशः उसी घाटी में भेज दिए, जो चारों ओर के वन्य प्रांतों में छिप कर रहने लगे। यह प्रबंध कर रात्रि में मैं भी वहाँ पहुँचा और सभी आवश्यक स्थानों पर निरीक्षकों को नियुक्त कर दिया। उसके दूसरे दिन यह पता चला कि काफला रवाना हो गया है। तीसरे दिन वह रात्रि के समय प्रायः संध्या को उसी घाटी में पहुँच कर रुका। मैंने अपने कुछ आदमियों को एकत्र कर पहिले पीछे लौटने का मार्ग रोक दिया और तब दोनों ओर से काफिले को घेर लिया। प्रातःकाल होते ही उन पर आक्रमण करने का निश्चय भी कर लिया। सबेरा होते ही प्रायः आधे सवार अर्थात् सौ के लगभग धीरे-धीरे आगे बढ़े और तब हम लोगों ने दोनों ओर से उन पर तीर की वर्षा आरंभ की। वे मैदान में थे और

हम लोग वृक्षों पर या उसकी ओट में थे। उन लोगों ने खूब घोड़े दौड़ाए, कुछ ने तीर भी चलाई तथा तलवारों से हवा काटते रहे पर कुछ कर न पाए। बड़ा हल्ला मचा और बचे हुए सवार भी इनकी सहायता को आए पर प्रायः सभी मारे गए या आहत हो गिर गए। इसके अनंतर कुल सामान लूट लिया गया और वे सब बोझ ढोने वाले मनुष्य या बचे हुए घायल सिपाही अवसर पाते ही भाग गए। हम लोगों ने उन्हें रोका भी नहीं और सामान उसी प्रकार लदा लदाया हुआ तथा बचा हुआ सामान सैनिकों के कोतल घोड़ों पर लदवा कर लौट पड़े। दो दिन में यहाँ पहुँचे। अब, सारा सामान गढ़ी में पहुँच गया है, जिसका आप निरीक्षण कर लें।'

'वह तो होता रहेगा पर तुम्हारी प्रशंसा किस तरह से करें यही सोच रहा हूँ।'

'जैसी आज्ञा हुई थी उसी प्रकार कार्य पूरा कर दिया, इसमें प्रशंसा कैसी ?'

'जी, कार्य पूरा न करते तब प्रशंसा करना चाहिए था, क्यों ? जो कुछ हो इस महायज्ञ का आरंभ तुमने किया है और सफलता से किया है, इस लिये वह भी अवश्य सफल होगा।'

इसी समय एक सैनिक ने आ कर अभिवादन किया और कहा कि 'महाराज ने आप लोगों को स्मरण किया है।' यह सुन कर रामेंद्र, गोपाल तथा भील सरदार तीनों उस बड़े कमरे में पहुँचे, जहाँ महाराज कीर्तिवर्मा, वारेंद्रनारायणसिंह तथा सबल-सिंह बैठे हुए कुछ बातचीत कर रहे थे। ये लोग भी यथास्थान बैठ गए तब सामंत ने भील सरदार की ओर देख कर कुल वृत्त कहने की आज्ञा दी। उसने भी वही हाल दुहरा कर कह डाला, जिस पर प्रसन्न हो कर सामंतजी ने कहा,

'जो बाकी कर देने की तुमने प्रतिज्ञा की है, वह सब इस समय तुम्हें क्षमा किए देता हूँ, बाद को और पुरस्कार भी देने का निश्चय करूँगा।'

'यह तो निश्चित है कि अब तक सामान के लुट जाने का समाचार त्रिपुरी पहुँच गया होगा और दुर्ग की सेना की रक्षा के निमित्त अवश्य ही वहाँ से रसद पहुँचाने का तुरंत कोई भारी आयोजन होगा। दुर्ग में रसद की इतनी कमी हो चली है कि सैनिकगण तलहटी की बस्तियों में उसके लिए उपद्रव करने लगे हैं। इस लिए मैं सोच रहा हूँ कि क्यों न अब युद्ध छेड़ दिया जाय।'

'हाँ, समय युद्ध के लिए अब उपयुक्त है। चार पाँच दिन में अब दुर्ग में अन्न का अकाल पड़ जायगा और दक्षिण से आता हुआ सामान का काफला अधिक से अधिक दो चार सहस्र सेना से सुरक्षित रहेगा। मेरी तो यही सम्मति है कि गढ़ी की सेना दक्षिण से आती हुई शत्रुसेना का मार्ग रोक कर उसे परास्त करे और महाराज की वह सेना, जो कटरा में एकत्र हो रही है, वह दुर्ग का घेरा आरंभ कर दे, जिसमें शत्रु किसी प्रकार से बाहरी सहायता न प्राप्त कर सके। सेनापति राजेंद्रसिंह को भी आज्ञा भेज दी जाय कि वह भी अपनी सेना सुसज्जित करें।'

'आपकी राय बहुत उचित है। महाराज भी ठीक समझें तो ऐसा ही प्रबंध किया जाय।'

'मामाजी, आप जो ठीक समझें करें, आज्ञा पत्रों पर हमारे हस्ताक्षर की आवश्यकता हो तो हम तैयार हैं।'

'गोपाल को तो यहीं समझा दिया जाता है, तुम दोनों सेनापतियों के नाम आज्ञापत्र लिखवा कर लेते आओ तो हस्ताक्षर करा लिया जाय और उनके भेजने का भी प्रबंध कर दिया जाय।'

सबलसिंह यह सुन कर चले गए तब वारेंद्रनारायणसिंह ने गोपाल को संबोधन कर कहा,

'इस बार शत्रु की सेना अत्यंत सतर्कता के साथ आवेगी, इस लिये तुम्हें भी बड़ी सावधानी के साथ उसका सामना करना होगा। तुम्हारे वैयक्तिक साहस, वीरता तथा रणकौशल का हम लोगों को काफी अनुभव हो चुका है पर सैन्य-संचालन का स्यात् यह पहिले ही पहल तुम्हें अवसर मिल रहा है। यदि इसमें भी तुमने उसी प्रकार की दक्षता दिखलाई तो तुम्हारा भविष्य अत्यंत उज्ज्वल हो जायगा और क्रमशः तुम उन्नति के शिखर तक पहुँच जाओगे। सेनापति में वीरता से अधिक धीरता तथा दूरदर्शिता की आवश्यकता होती है, इसका सदा ध्यान रखना। गढ़ी की रक्षा के लिए पाँच सौ सैनिक बहुत हैं, इसलिए बची हुई कुल सेना ले कर यात्रा करना। आक्रमण का स्थान तथा समय तुम स्वयं अवसर के अनुकूल ठीक कर लेना, उस विषय में अभी से कुछ सम्मति देना अनावश्यक है।'

'जैसी आज्ञा।'

'पिताजी, यदि आज्ञा हो तो मैं भी गोपाल के संग जाऊँ।'

'जा सकते हो, यहाँ तो अभी कुछ काम भी नहीं है।'

'पर यहाँ हम अकेले रह जाएँगे।'

'आप अकेले कैसे? और ऐसी क्षुद्र सेना के साथ आपका जाना भी ठीक नहीं, हम लोग भी शीघ्र ही लौट आएँगे।' मुस्किराकर रामेंद्र ने कहा।

'यही ठीक है। हमने निश्चय किया है कि जब तक वास्तव में युद्ध आरंभ नहीं होता तब तक सभी सामंतों को यहीं बुला कर उनसे सम्मति ले ली जाय और वे भी यह जान लें कि उनके राजा यहीं हैं और वही सेनापतित्व कर रहे हैं। इससे वे अपनी अपनी

सेना की तैयारी खूब मन लगा कर करेंगे और किसी दूसरे के बहकावे से दूर रहेंगे। इस समय यथाशक्ति अधिक से अधिक सेना एकत्र करना ही नीतियुक्त है।'

'जैसी आपकी आज्ञा। यह कार्य भी आवश्यक है। हमने केवल रामेंद्र को रोकने को ऐसा कहा था।'

'पर रामेंद्र को साथ जाने के लिए मैंने इसी कारण कहा था कि गढ़ी की कुल सेना गोपाल से पूर्णरूपेण परिचित नहीं है, इससे रामेंद्र के साथ रहने से वे उसकी आज्ञा मानने में इतस्ततः नहीं कर सकेंगे।'

'ठीक है, उचित है। बिना अच्छी प्रकार विचार किए आप कुछ नहीं करते।'

'और इरा भी तो यहीं है, वह कम चंचल नहीं है। घूमने फिरने में वह आपका बराबर साथ देगी।'

यह निश्चय हो जाने पर गोपाल तथा रामेंद्र भील सरदार को साथ लेकर वहाँ से चले गए और यात्रा की तैयारी में लग गए। इन लोगों ने यह राय ठीक किया कि भील सरदार अपने पाँच सौ धनुर्धारियों को साथ लेकर आगे रवाना हो जाय और उसके पीछे ढाई सहस्र पैदल सेना भी रात्रि ही में कूच कर दे। सुबह होते होते ये लोग निश्चित स्थान पर पहुँच कर पड़ाव डाल दें। प्रातःकाल गोपाल तथा रामेंद्र आठ सौ घुड़सवारों के साथ यात्रा करते हुए जब पड़ाव पर पहुँच जायँ तब सम्मिलित सेना आगे की यात्रा आरंभ करे। ऐसा निश्चय कर भील सरदार को बिदा किया गया और पदाति तथा अश्वारोही सेना के नायकों को भी आज्ञा भेज दी गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोपाल तथा रामेंद्र शस्त्रों से सुसज्जित हो कर तथा सबसे विदा होकर गढ़ी से उतरे और आठ सौ चुने

हुए वीर अश्वारोहियों का दल, जो पहिले ही से मैदान में तैयार खड़ा था, साथ लेकर इन लोगों ने यात्रा आरंभ कर दी। प्रायः तीन घंटे कूच करने पर ये लोग उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ आगे की भेजी पैदल सेना पड़ाव डाल कर पड़ी हुई थी। ये लोग भी यहीं टिक गए और सुस्ता कर तथा भोजनादि से निवृत्त हो कर आगे की यात्रा उस समय आरंभ कर दी, जब प्रायः संध्याकाल आ पहुँची थी। यह सम्मिलित छोटी सेना रातोंरात कूच करती हुई उस स्थान पर पहुँच गई जहाँ पहिली बार काफला लूटा गया था पर गोपाल यहाँ न रुक कर और आगे बढ़े। इस घाटी के बाद पहाड़ियों से घिरा एक विशाल बन था, जिसमें प्रायः उषाकाल होते होते पहुँच कर इन्होंने पड़ाव डाला और रक्षा के लिये यथा स्थान छोटी टोलिओं के थाने बैठा दिए।

प्रातःकाल हो जाने पर तथा नित्यकर्म से छुट्टी मिलने पर गोपाल ने बहुत से भीलों तथा घुड़सवारों को आनेवाले शत्रु का पता लेने के लिए कई दलों में आगे भेजा और स्वयं रामेंद्र के साथ उपयुक्त युद्धस्थल की खोज में उस वन्यप्रांत का निरीक्षण करने निकले। ये लोग घूमते फिरते बहुत दूर का चक्कर काटकर जब फिर पड़ाव पर लौट कर आए तब ज्ञात हुआ कि शत्रुसेना इस बार पहिले मार्ग से न आकर कुछ पूर्व की ओर हट कर उत्तर की ओर बढ़ रही है। वह दिन ही में कूच करती है और रात्रि में पड़ाव डाल देती है। साथ में चार सहस्त्र से कम सेना नहीं है और संध्या होते होते वे अमुक स्थान पर पहुँच जायँगे। गोपाल ने यह सब वृतांत सुन कर रात्रि में शत्रु सेना का पीछा करना निश्चय किया और इसके लिए सेना में आज्ञा प्रचारित कर दी। शत्रुसेना ने कहाँ पड़ाव डाला है, इसका भी संध्या तक पता लग गया और तब कूच की तैयारी होने लगी।

अर्द्धरात्रि हो चली थी कि चंदेल सेना ने शत्रु सेना का पीछा आरंभ किया। यह दो दलों में विभक्त हो कर आगे बढ़ रही थी। प्रायः चार घंटे तक कूच करने के उपरांत सेना उस स्थान के पास पहुँच गई जहाँ शत्रु-सेना टिकी हुई थी और तब गोपाल ने उसे रुकने की आज्ञा दी। इसके अनंतर गोपाल ने घुड़सवार सेना एक ओर कर दिया और पैदल सेना के दो भाग किए। भील सेना का अलग दल रख कर उसके सरदार को आज्ञा दी कि वह शत्रु के पीछे पहुँच कर उन पर तीरों की वर्षा करे, और उन्हें भागने से रोके। पैदल सेनाओं को रामेंद्र तथा एक अन्य सेनापति के अधीन शत्रु पर दो ओर दाहिने तथा बाएँ से आक्रमण करने के लिए आदेश दिया और साथ ही उनको यह भी सम्मति दी कि पहिले यथाशक्ति शत्रु पर वाणों की वर्षा कर उन्हें नष्ट करने का प्रयत्न किया जाय तथा उसके बाद ही उन पर आक्रमण किया जाय। इस प्रकार प्रबंध कर वह स्वयं अश्वारोही दल को लेकर शत्रुसेना के मार्ग से कुछ बाएँ हट कर आगे बढ़ा, जिसमें वह सामने से शत्रु पर आक्रमण कर सके। इस प्रकार शत्रुसेना को चारों ओर से घेर लेने का प्रबंध पूरा हो गया।

प्रातःकाल हो चला था और शत्रुसेना में यात्रारंभ का हलचल मच रहा था कि इसी समय तीन ओर से उन पर तीरों की वर्षा होने लगी। शत्रु सेनापति ने यह देखते ही तुरंत अपनी सेना के कई भाग कर डाले और कुल सामान के काफले को बीच में रख कर शत्रु का सामना करने को उद्यत हुआ। इसकी ओर से भी तीर का उत्तर तीरों से दिया जाने लगा और कुछ देर तक वाण-विद्या का द्वंद्वयुद्ध होता रहा पर इसमें शत्रुसेना की ही अधिक हानि हो रही थी। उनका पड़ाव खुलते मैदान में था, जिसमें यत्र तत्र केवल छोटे-मोटे पेड़ पौधे थे और आक्रमणकारी पहाड़ी

टीलों तथा घनी वृक्षावली की आड़ में थे। शत्रु सेनापति ने आक्रमणकारियों की संख्या का बिना विचार किए हुए अपनी हानि देखकर क्षुब्ध हो धावा करने की आज्ञा दे दी, जिससे उसकी सेना के कई दल हो गए और वे आक्रमणकारियों से कई स्थानों पर बँट कर युद्ध करने लगे। ठीक इसी समय गोपाल आठ सौ सवारों के साथ शत्रु सेनापति पर आ टूटा, जो दो तीन सौ सवारों तथा प्रायः इतने ही पैदलों के साथ युद्ध का निरीक्षण कर रहा था। पहिले ही टक्कर में इसकी सेना अस्त-व्यस्त हो गई और गोपाल ने सेनापति को ललकार कर द्वंद्वयुद्ध में शीघ्र ही उसे मार गिराया। इस छोटी सेना को नष्ट भ्रष्ट करता हुआ वह दाईं ओर की शत्रुसेना पर पीछे से जा गिरा, जो शीघ्र ही दोहरी मार में पड़ कर तथा बहुत हानि उठाकर भाग खड़ी हुई। अब गोपाल पदाति सेना को पीछे की ओर की शत्रुसेना पर आक्रमण करने की आज्ञा देकर अश्वारोही दल के साथ बाईं ओर पहुँचा, जहाँ उसका पक्ष पहिले से ही प्रबल था। शत्रुसेना अपने सेनापति के मारे जाने से भग्नहृदय हो चुकी थी और अब इस घुड़सवार दल के पहुँचते ही उसने भागना आरंभ कर दिया। यही हाल पीछे के भाग का भी हो गया और भागते समय बहुत से शत्रु भीलों के बाणों से बिंध बिंध कर मारे गए। प्रायः आधी शत्रु सेना हताहत हुई और बची हुई भाग कर निकल गई।

गोपाल ने यहीं पड़ाव डाल दिया और दिन भर का समय अपनी सेना को सुस्ताने तथा नित्यकर्म से निपटने के लिये दिया। उसने लूट का कुल सामान सहेज लिया और संध्या होते ही गढ़ी की ओर प्रस्थान कर दिया। दो रात्रि कूच करते हुए तथा एक दिन पड़ाव डालते हुए ये लोग तीसरे दिन प्रातःकाल होते होते गढ़ी पहुँच गए। गोपाल तथा रामेंद्र का स्वागत वारेंद्रनारायणसिंह

तथा कार्तिवर्मा ने बड़े प्रेम से किया और इससे भी कहीं अधिक स्नेह के साथ महारानी भुवनदेवी तथा इरावती ने इन लोगों के कुशलपूर्वक विजय प्राप्त कर लौटने पर प्रसन्नता प्रकट की। इरा ने गोपाल की ओर एक बार सलज्ज दृष्टिपात कर आँखें नीची कर लीं पर बाद को रामेंद्र तथा गोपाल दोनों से बातचीत करने में योग देती रही।

उसी दिन दो पहर के बाद मंत्रणा के लिए राजपरिषत् बुलाई गई, जिस में राजा कीर्तिवर्मा, सामंत वारेंद्रनारायणसिंह, रामेंद्र, गोपाल और सबलसिंह के सिवा गढ़ी में उपस्थित अन्य पाँच छ सामंत भी सहयोग दे रहे थे। पर्दे में महारानी भुवनदेवी तथा इरा भी बैठी हुई थीं। आज्ञा मिलने पर पहिले गोपाल ने सविस्तर अपनी कृति का वर्णन कर दिया तब वारेंद्रनारायणसिंह ने सबल-सिंह से कहा, 'अब तुम दुर्ग का वृत्तांत बतलाओ।'

'दुर्ग के भीतर की स्थिति इस समय बहुत ही खराब हो रही है। वहाँ अब एक दिन के लिये भी अन्न नहीं रह गया है और मुझे विश्वास है कि वे कल दुर्ग से बाहर निकल कर अवश्य युद्ध करेंगे। दुर्गाधिप अचलदेव अत्यंत वीर तथा धीर सैनिक हैं और उन्होंने भूखों मरने से युद्ध कर वीरगति पाना निश्चित किया है। उनकी धारणा है कि वे शत्रुसेना को, जो दुर्ग के नीचे पड़ी है और संख्या में उनकी सेना से अधिक नहीं है, परास्त कर देंगे और अन्न एकत्र कर दुर्ग पर भी अधिकार बनाए रख सकेंगे।'

'तब तो उन्हें कल ही युद्ध करना आवश्यक हो गया। वास्तव में दुर्ग घेरनेवाली सेना बहुत कम है और दुर्ग की शत्रुसेना जान पर खेलकर लड़ेगी। समय कम है, ऐसी अवस्था में सहायता यहीं से भेजना आवश्यक है।'

'यही संभव है। मेरी राय है कि गोपाल को अवश्य भेजा

जाय। सेनापति सिंहराज बड़े वीर हैं, यह सभी जानते हैं पर उनकी वह अवस्था नहीं रही कि द्वंद्व युद्ध में अचलदेव को ललकार सकें। अचलदेव का सामना करने के लिए गोपाल के सिवा यहाँ कोई मुझे नहीं दिखलाई देता। सिंहराज ही सेनापति रहें पर समय पड़ने पर अचलदेव से युद्ध करने के लिए इनका वहाँ रहना नितांत आवश्यक है।'

'आप गोपाल को जरा भी आराम लेने देना नहीं चाहते।'

'यही अवस्था आराम न करने की है। जिसे यश प्रिय हो उसे आराम से बहुत दूर रहना चाहिए। फिर हमारा इन पर स्वत्व है, इन्हें न भेजेंगे तो क्या गैर को भेजेंगे?'

'(मुस्किरा कर) आपकी आज्ञा मुझे मान्य है।

'बस इन्होंने स्वीकार कर लिया, अब आप तथा महाराज जो आज्ञा दें वही किया जाय।'

'ठीक है, यही होना चाहिए। अच्छा, गोपाल जी अब आप कब और कितनी सेना लेकर जाना चाहते हैं।

'कल ही यदि युद्ध की संभावना है तो आज ही संध्या को चले जाना उचित है और वहाँ अपनी पाँच सहस्र से अधिक ही सेना है अतः केवल सवार सेना के साथ ही जाना समीचीन है। तीन घंटे में वहाँ पहुँच जाऊँगा और सेनापतिजी से मिल कर उनकी आज्ञा के अनुसार युद्ध में सम्मिलित हो जाऊँगा।'

'कुल घुड़सवार सेना कितनी है?

'प्रायः बारह सौ है, पर मैं केवल एक सहस्त्र लेकर जाऊँगा।'

'ठीक है, आप इसका प्रबंध करें।'

गोपाल ने संध्या होते ही एक सहस्र सवारों के साथ कालिंजर की ओर यात्रा कर दी और प्रायः तीन घंटे बीतते बीतते दुर्ग के पास पहुँच कर घेरने वाली सेना से कुछ दूर हट कर अपना

पड़ाव डाल दिया तथा सेना को सबेरे युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाने की आज्ञा दे दी। इसके अनंतर यह दो तीन सवारों के साथ सेनापति सिंहराज के खेमे में पहुँचा। वह इनसे बड़े तपाक से मिला क्योंकि इनकी प्रसिद्धि बढ़ती जा रही थी और यह भी उसके समकक्ष का सेनापति था। दोनों में बैठ कर दूसरे दिन के युद्धकार्य के विषय में बातचीत होने लगी। गोपाल ने कहा—

'मुझे आपकी सहायता के लिए आज्ञा मिली है और उसी के अनुसार मैं उपस्थित हुआ हूँ। अब आगे के लिए आप जैसी आज्ञा दें वैसा मैं करने के लिए तैयार हूँ।'

'यह कैसी बातें करते हैं? आप हम बराबर के सेनापति हैं, अतः एक दूसरे को आज्ञा कैसे दे सकते हैं, मिल कर ही काम करना हम लोगों का ध्येय है।'

'यह आपका बड़प्पन है। स्वामी की आज्ञा हम सभी को हर अवस्था में मान्य है पर छोटे होते बड़ों की बराबरी करना भी तो उतनी ही उच्छृंखलता है।'

'(गद्गद कंठ से) युवक, तुम्हारी यह नम्रता तुम्हें बहुत ऊँचे उठाएगी। हम हृदय से तुम्हें यह आशीर्वाद देते हैं। हाँ, युद्ध के विषय में पहिला प्रश्न यह उठता है कि कल शत्रु दुर्ग से निकल कर युद्ध करने की तैयारी कर रहा है। अब उसे फाटक ही पर रोका जाय और बाहर निकलने न दिया जाय या उसके लिए मैदान छोड़ कर युद्ध की तैयारी की जाय। इन दो में आप क्या उचित समझते हैं?'

'यह तो स्पष्ट है कि शत्रु अन्नकष्ट से ही दुर्ग छोड़ कर बाहर निकल रहा है और ऐसी अवस्था में उसे उसी में रोक रखना भूखों मारना है। वे वीरगति चाहते हैं और एक प्रकार से वे युद्ध के लिए हमें ललकार रहे हैं। वे यदि चाहते तो दुर्ग देकर अपने

देश चले जाने के लिए संधि कर सकते थे पर ऐसा कायरोचित कार्य वे नहीं करना चाहते। अतः उनके रणनिमंत्रण को अस्वीकार करना वीरोचित नहीं है, इसलिए दूसरी ही बात मुझे उपयुक्त जान पड़ती है।'

'उचित सम्मति है और मैंने भी यही ठीक समझ कर प्रबंध किया है। यह भी प्रबंध किया है कि शत्रु के बाहर निकल आने पर अवसर मिलते ही हमारे कुछ सैनिक फाटक पर अधिकार कर लें और उसे भीतर से बंद कर शत्रु को फिर घुसने न दें।'

'बहुत ठीक है। एक बात और है। शत्रु के पास घुड़सवार सेना नहीं है और हमारी ओर एक सहस्र सवार हैं। इनकी सहायता से शत्रु को बहुत शीघ्र परास्त किया जा सकता है इस लिये ऐसा प्रबंध रखें कि मैं उन पर पूरी तौर धावे कर सकूँ।'

'हाँ, यह अवश्य होना चाहिए। ऐसा ही प्रबंध रहेगा। दाएँ बाएँ का भाग बहुत हलका रखूँगा और वे समय पर शीघ्र पीछे हट कर मैदान खाली कर सकेंगे।'

'तो अब आज्ञा हो, कल युद्धस्थल पर भेंट होगी।'

'अच्छी बात है।'

दूसरे दिन सूर्य का प्रकाश पूर्णरूपेण व्याप्त होने लगा था कि कालिंजर दुर्ग के सब फाटक खुल गए और त्रिपुरी की समग्र सेना युद्ध के लिये सन्नद्ध होकर दुर्ग से बाहर निकलने लगी। सेनापति सिंहराज ने पहले ही काफी मैदान छोड़ कर अधिकतर सेना पीछे हटा ली थी और सम्मुख युद्ध की तैयारी कर रखी थी। जो थोड़ी सेना उस छूटे हुए मैदान में फैली हुई थी, वह भी पीछे हट गई। अब दोनों सेनाएँ सिंहराज तथा अचलदेव की अधीनता में व्यूहबद्ध होकर युद्ध में गुँथ पड़ीं और घोर युद्ध होने लगा।

दोनों सेनापति अपने अपने सैनिकों को उत्साह दिलाते हुए बड़ी वीरता से युद्ध करने लगे और उनकी तलवारों से कितने ही साधारण सैनिक हताहत होकर गिरने लगे। विशालकाय अचल-देव के भयंकर परशु तथा खड्ग से बहुत से वीर मारे गए और उनके आगे ठहरने का किसी सैनिक का साहस नहीं पड़ रहा था। वे बढ़ते चले आ रहे थे और उनके सामने की सेना काई सी फटती जा रही थी। यह देख कर सिंहराज भी उनको रोकने को आगे बढ़े और शीघ्र ही दोनों का सामना हो गया। दोनों ही रणकुशल वीर थे और इस कारण यह द्वंद्वयुद्ध खूब जम कर होने लगा। आस पास के दोनों पक्ष के सैनिकगण यह दृश्य देखने लगे पर युद्ध अब एक स्थान ही पर डट कर होने लगा और बढ़ती हुई शत्रुसेना रुक-सी गई।

इसी समय गोपाल अपनी एक सहस्र सवार सेना के साथ पूर्ण वेग से शत्रु पर बाएँ तथा पीछे की ओर से आ टूटा और बहुतेरी पैदल सेना को नष्ट भ्रष्ट करता हुआ प्रायः दूसरी ओर निकल सा गया। फिर लौट कर उसने धावा किया और अब शत्रु-सेना पूर्णतया दोनों ओर से घिर गई। इस दोहरी मार से वह घबड़ा-सी उठी पर फिर भी मरने को तैयार होकर युद्धार्थ आए हुए वीरगण बड़े धैर्य के साथ दोनों ओर का लोहा लेने लगे। अचलदेव भी यह देख कर क्रोध से प्रज्वलित हो उठा और अपने प्रतिद्वंद्वी पर उसने बड़े वेग से आक्रमण किया। सिंहराज अनुभवी वीर थे और अवस्था अधिक होने से धीरता से उन्होंने बहुत काम लिया पर वे अधिक न ठहर सके और अंत में विशेष आहत होकर वे युद्धस्थल पर गिर गए। वे शीघ्र ही वहाँ से हटा कर सेना के पीछे भाग में भेज दिए गए। इस पर भी उनकी सेना जम कर युद्ध कर रही थी क्योंकि दूसरे सेनापति गोपाल की उपस्थिति से

उसमें निरुत्साह नहीं आया था। अचलदेव भी अपने प्रतिद्वंद्वी को भूमिशायी कर गोपाल की ओर घूम पड़े थे, जो उनके सामने ही उनकी सेना नष्टःप्राय कर रहा था। उन्होंने गोपाल ही का सामना करना उचित समझा, जो उनके सैनिकों को गाजर मूली-सा काट कर गिरा रहा था। उसकी चलती हुई तलवार शत्रु पर आग बरसा रही थी, कहीं किसी का सिर काट कर गिराती थी, तो कहीं किसी का हाथ भुट्टे-सा उड़ा रही थी। अचलदेव ने एक कोतल घोड़े को, जिसका सवार युद्ध में मारा जा चुका था, पकड़ लिया और उस पर चढ़ कर वह सीधा गोपाल की ओर झुका।

गोपाल की कुशल सेनापति के समान पूरे युद्धस्थल पर दृष्टि थी और वह सिंहराज को गिरा कर आते हुए अचलदेव से युद्ध को सन्नद्ध हो चुका था। उसने दो तीन सवारों को भेज कर सिंह-राज के अधीनस्थ सेना के नायकों को कहला दिया था कि वे निडर होकर शत्रु का नाश करें, सेनापति के आहत होने का जरा भी ध्यान न रखें। अचलदेव भी अपनी सेना को प्रोत्साहित करते हुए बड़े वेग से गोपाल तक पहुँच गए और उस पर चोट पर चोट करने लगे। गोपाल ने उनके सब आक्रमणों को व्यर्थ कर दिया और हँस कर कहा।

'वीर, घबड़ाइए नहीं, जम कर युद्ध कीजिए।'

'ढीठ बालक, तू मुझे युद्ध करना सिखला रहा है। आप तो सँभल।'

'(उसी प्रकार हँसते हुए) जैसी आपकी आज्ञा पर आपके मुख से ये शब्द शोभा नहीं पा रहे हैं।'

अचलदेव ने क्रोध से विचलित होकर अपने भयंकर परशु को बड़े वेग से घुमा कर गोपाल पर चलाया पर उसने शीघ्रता से अपने घोड़े को इस प्रकार घुमा दिया कि वह परशु उसी वेग के

साथ हवा को चीरता हुआ पृथ्वी में जा धँसा। उधर गोपाल की तलवार का ऐसा सच्चा हाथ अचलदेव के दाहिने हाथ पर पड़ा कि उसे काटता हुआ तथा उनके जंघे पर गहरा घाव करता हुआ निकल गया। अचलदेव घोड़े पर से गिर कर धराशायी होते होते एकदम बेहोश हो गए। इनके गिरते ही इनकी सेना में भगदड़ मच गई, आधी से अधिक शत्रुसेना कट चुकी थी और बचे हुओं ने जिधर मार्ग पाया उसी ओर भागे। गोपाल ने भागती सेना पर हाथ नहीं उठाया और अपने सैनिकों को भी रोक दिया। थोड़ी देर में युद्धस्थल पर एक भी शत्रु नहीं रह गया।

गोपाल ने पहिले एक सहस्र पदाति सेना दुर्ग में अधिकार करने को भेज दी और तब दोनों पक्ष के हताहतों का प्रबंध करने लगा। इस कार्य में उसने अपने और शत्रुपक्ष के सैनिकों में कुछ भी भेद नहीं रखा तथा सभी के साथ समान रूप से व्यवहार किया। यह सब प्रबंध होते होते दोपहर हो गया तब वह सेनापति सिंहराज से मिलने गया और सैनिकों को पड़ावों पर जाने की आज्ञा दे दी। सिंहराज इससे मिल कर अत्यंत आनंदित हुए और बोले—

'वीर युवक, इस युद्ध की विजयलक्ष्मी तुम्हारी है और इसी प्रकार वह तुम्हें सदा अपनाती रहे यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है। मैं वृद्धावस्था तथा इस युद्ध में प्राप्त इन घावों के कारण स्यात् ही अब फिर युद्धस्थल में जा सकूँगा।'

'आपका प्रतिद्वंद्वी अचलदेव वीरलोक को सिधारा।'

'वीरों की यही गति अनिवार्य है। दुर्ग पर अधिकार हो गया? इसकी सूचना महाराज को भेज दी गई?'

'दोनों कार्य हो गए हैं। अब आज्ञा हो तो मैं भी दुर्ग में जाकर वहाँ का प्रबंध देख लूँ। प्रबंध ठीक होने पर आप अपनी

कुल सेना सहित वहीं रहें, तब तक महाराज की आज्ञा भी आ जावेगी। राजवैद्यजी आपकी देखभाल भी वहाँ कर सकेंगे।'

'ठीक है, जाओ।'

दूसरे दिन प्रायः आठ बजे सुबह महाराज कीर्तिवर्मा सपरिवार कालिंजर आए और गोपाल ने सैनिक प्रथानुकूल बड़े समारोह से उनका स्वागत किया। महाराज ने भी गोपाल का मित्रवत् अत्यंत आदर किया और दोनों साथ-साथ दुर्ग में पधारे। दुर्ग का हर प्रकार से ठीक प्रबंध हो जाने पर तीनों रानियाँ भी इरावती को साथ लेकर चली आईं। इरा के साथ भीलनी सोमी भी आई और कुछ दिन यहाँ रह कर पुनः दोनों गढ़ी लौट गईं। गोपाल भी इन लोगों के साथ लौट गया।

सप्तदश परिच्छेद

सामंत वारेंद्रनारायणसिंह अपने एकांत कमरे में बैठे हुए कुछ देर तक किसी विचार में मग्न रहे और तब एक द्वार-रक्षक को बुला कर कहा कि 'सबलसिंह को बुला लाओ।' इसके अनंतर वह चिंता-ग्रस्त से थोड़ी ही देर तक बैठ पाए थे कि सबलसिंह आ पहुँचे और आते ही उन्होंने पूछा कि 'कहिए, आप किस चिंता में हैं ?'

'बैठो, त्रिपुरी से कुछ संदेश मिला है ?'

'महाराज कर्णदेव अभी दक्षिण के युद्ध में व्यस्त हैं पर उन्हें कालिंजर के इस प्रकार हाथ से निकल जाने का अत्यंत क्षोभ है। वे शीघ्र ही इसके लिए एक बार और प्रयत्न करेंगे।'

'पर यह प्रयत्न कब तक हो सकता है ?'

'दक्षिण का विद्रोह अभी भी दो तीन महीने ले सकता है और यह आशा नहीं है कि उसके शांत होने के पहिले इधर की ओर चढ़ाई की जा सके।'

'गोपाल अब जाने का विचार कर रहे हैं और यह उचित भी है पर महाराज से बिना आज्ञा लिए बिदा करना भी अनुचित है क्योंकि वह राज्य का बहुत कुछ उपकार कर चुके हैं। इधर हमारे साथ जैसा उन्होंने व्यवहार किया है और जितना उपकार उनका है उसके लिए हम या हमारा परिवार उनसे कभी उऋण नहीं हो सकता। कैसे बिदा करूँ और क्या कह कर रोकूँ इसी दुश्चिता में पड़ा हूँ।'

'ऐसा ही अवसर आ पड़ा है। मै भी इस चिंता में बहुत दिनों से हूँ पर कभी इस विषय में आपसे बातचीत नहीं कर सका। इसके साथ इसी विषय में मुझे और भी चिंता के कारण मिले हैं। गोपाल अपने को ब्राह्मण संतान समझता है पर मैं वैसा नहीं समझ रहा हूँ। कम से कम वह धार-निवासी ज्योतिषीजी का पुत्र तो हई नहीं। अब उसके पूर्वजों के संबंध में पता लगाने की चिंता है क्योंकि उस पर अत्यंत स्नेह हो जाने के कारण मैं अब उसे रहस्य ही में छिपे रहने नहीं देना चाहता। उसकी भलाई हर प्रकार से चाहना हम लोगों का कर्तव्य है।'

'अवश्य, रामेंद्र से बढ़ कर उसका हितचिंतन करना हम लोगों का परम धर्म है।'

'इसके सिवा स्वभावतः इतने दिन साथ रहने से कुमारी इरा का उसकी ओर आकर्षण हो गया है और वह भी प्रेम रखते हुए अपने को क्षत्रियेतर समझ कर दूर होने ही में सबका भला समझता है। इसमें तो जरा भी शंका नहीं है कि गोपाल हर प्रकार से योग्य है पर एक यही वाधा बीच में है। ऐसी अवस्था में उसके रहस्य का उद्‌घाटन होना और भी आवश्यक हो पड़ा है।'

'ऐसा, मैंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। तुम्हारी यह राय कि गोपाल योग्य है, बहुत ठीक है। इसके विरुद्ध कोई भी कुछ नहीं कह सकता पर उसके जन्म-विषयक रहस्य के खुलने ही पर इस विषय में आगे बातचीत चल सकती है। यदि यह निश्चय हो जाय कि वह शुद्ध क्षत्रिय है तब वह चाहे कितना भी निर्धन हो मैं उसे अपनी पुत्री सहर्ष देने को तैयार हूँ।'

'मैं शीघ्र ही इस विषय में प्रयत्न करूँगा और मेरा विचार एक बार गोपाल के गृह पर जाने का है। क्यों न मैं गोपाल को भी साथ ले जाऊँ और वहाँ कुछ दिन रह कर तथा पता लेकर फिर

लिवा लाऊँ। वह भी अपने गृह की देख भाल कर लेगा और कुल बातों के पता लगाने में भी मुझे सुविधा होगी।'

'अच्छी बात है, जाने का एक बहाना भी मिल जायगा और तुम्हारे साथ रहने से मुझे कोई आशंका भी न रहेगी। सबलसिंह, मुझे कुछ ऐसी शंका हो रही है कि गोपाल पर कोई विपत्ति आनेवाली है। यह कैसे मन में उठी, और क्यों उठी, नहीं कह सकता। यह अत्यंत स्नेह और विदा माँगने के कारण भी हो सकती है, पर मुझे तुम्हारे ऊपर इतना विश्वास है कि मैं अब प्रसन्नता से उसे जाने की आज्ञा दे सकूँगा।'

'यह आप कुछ बतला सकते हैं कि यह शंका कब उठी?

'भाई, यह बतलाना तो कठिन है पर कुछ ऐसा ध्यान आता है कि जब यहाँ बहुत से सामंत एकत्र हुए थे उस समय हमारे परम मित्र बाल्य सहचर सोमल्लदेव के वर्तमान अधिकारी जाजल्लदेव भी आए थे। उनसे बहुत सी बातचीत भी हुई थी, जिसमें गोपाल का भी हमने उल्लेख किया था। गोपाल को जब राज परिषत् में उन्हों ने देखा तब उनकी कुदृष्टि उस पर कई बार पड़ी, यह मैंने लक्ष्य किया, पर उसका कोई कारण नहीं समझ पड़ा। उसके बाद ही से स्यात् यह शंका मेरे मन में समा गई है।

'हूँ, हो सकता है। (सोचता हुआ) सोमल्लदेव दो भाई थे, एक संसार-विरक्त हो गया था और दूसरे शीघ्र ही संसार से उठ गए थे। उनकी धर्मपत्नी का पता भी नहीं चला कि वह क्या हुई और कहाँ गई? अस्तु, अब धार से लौटने ही पर इस विषय में बातचीत होगी, क्योंकि हो सकता है कि एक के सिलसिले में दूसरे के संबंध में कुछ पता चल सके।

'अच्छा गोपाल को भी बुला लो तो उससे भी इस बारे में राय ले ली जाय। तुम कब जाना चाहते हो?

'यथा शीघ्र ।'

यह कह कर सबलसिंह ने एक द्वाररक्षक को पुकार कर गोपाल को बुला लाने के लिए भेज दिया और सामंत जी से कहा--

'अभी आप गोपाल से अपनी आशंका के संबंध में कुछ न कहिए। केवल धार जाकर रहस्य खोलने या पता लगाने में मेरी सहायता के लिए सम्मति दे दीजिएगा। देखतां हूँ कि बहुत सी गुप्त बातों का इस में पता मिलेगा और मुझे पूरी तैयारी से जाना पड़ेगा।

'अवश्य, अपने कुछ अनुभवी चर तथा अत्यंत विश्वासपात्र सैनिकों को भी साथ लिवा जाना। धन की शक्ति भी साथ रखना क्योंकि इसके बिना परदेश में काम चल ही नहीं सकता।'

'आप निश्चिंत रहें, मेरे रहते गोपाल पर जरा भी आँच नहीं आ सकती।

इसी समय गोपाल आ पहुँचे तब सामंत जी ने कहा—

'गोपाल, तुम अपने गृह जाने के लिये कहते थे पर मैं स्नेह के कारण तुम्हें अकेले जाने देने में हिचक रहा था। अब सबलसिंह तुम्हारे साथ जाने को तैयार हैं, इसलिये मेरी वह चिंता मिट गई। हाँ, यह स्वीकार करो कि इनके साथ ही कुछ दिन गृह पर रह कर लौट आवोगे तो मैं सहर्ष जाने को कह सकता हूँ। यों तो तुम स्वतंत्र हो, जब चाहे चले जा सकते हो, पर स्यात् इसी स्नेह के कारण मनमाना नहीं कर सकते।'

'आपकी आज्ञा हमारे लिए सदा मान्य है। ऐसे क्यों कहते हैं, जितने दिन की आप छुट्टी दें उतने ही दिन रह कर मैं पुनः आ जाऊँगा पर मेरे लिए इन्हें क्यों कष्ट देते हैं?'

'भैया, यह कष्ट तो मैं स्वयं उठा रहा हूँ, इसमें आपको क्या

कष्ट है। आपके लिये मैं जितना कष्ट पाऊँगा उतना ही आप भी मेरे लिए उठा लीजिएगा, बस बराबर हो जाएँगे।'

'आप लोगों की जैसी इच्छा, और आप की बराबरी और हम करें, यह हमारी शक्ति के तो अवश्य ही बाहर है।'

'अच्छा तो यह तै हुआ, अब जाने का कब विचार है?'

'कल। और एक महीने के भीतर ही लौट आने का भी विचार है।'

'यदि बीच में त्रिपुरी से आक्रमण हो जाय?'

'तो उसका समाचार आपसे पहिले ही मुझे मिल जायगा। आप जरा भी चिंता न करें, अभी सबलसिंह जराग्रस्त नहीं हुआ है।'

'(हँस कर) यह तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अच्छी बात है, अब मैं सुचित्त रहूँगा। कालिंजर की सेना भी बराबर सजग रहेगी।'

यह सुन कर सबलसिंह गोपाल को साथ लेकर कमरे से निकल आए और उससे यह कह कर कि कल सबेरे यात्रा के लिए तैयार रहना एक ओर चल दिए। गोपाल चिंता करता हुआ अपने कमरे में चला गया। उसने कुछ देर बाद अपने दोनों साथियों को बुलवाया और उनसे दूसरे दिन यात्रा के लिए तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी। इसके अनंतर यह चिंतित से टहलते हुए भीतरी बाग में चले गए और कुछ देर तक घूमते रहे क्योंकि इन्हें वहाँ जाने की स्वतंत्रता थी। यह इतने चिंतामग्न थे कि एक सुंदरी स्त्री जब प्रायः इनके पास आ पहुँची तब इन्होंने उसे एकाएक देखा और पूछा—

'सोमी, इसी समय क्या तुम आ रही हो या कुमारी इरा से मिल कर आ रही हो?'

'(लज्जा से) अभी चली आ रही हूँ और कुमारी जी से मिलने ही आई हूँ। आप क्या कहीं बाहर जा रहे हैं ?'

'हाँ, क्यों तुम्हें कैसे समाचार इतनी शीघ्र मिल गया ?

'वही कह रहे थे। सुनते ही मैं तुरंत दौड़ी आई कि कुमारी जी से कह दूँ, स्यात् उन्हें अब तक न मालूम हुआ हो।'

'(मुस्किरा कर) क्यों सोमी, इसकी तुम्हें इतनी चिंता क्यों हुई ? हम चले जाएँगे और इरा को मालूम न होगा तो हर्ज ही क्या है ?

'(उत्साह से) इसे पुरुष नहीं समझ सकते। हमीं लोगों का हृदय कोमल होता है, उस पर जिन बातों का पूरा अमिट चिह्न पड़ जाता है, उसका पुरुषों के हृदय पर स्यात् चिह्न भी नहीं पड़ता और वे ही कोमल हृदय कष्ट उठाते समय पुरुषों के हृदय से भी कठोर हो जाते हैं।'

'अच्छी तुलना की, पर सोमी क्या तुम पुरुषों के हृदय को समझ लेती हो ?'

'जी हाँ, हमीं लोग जब बतलाते हैं कि आप लोगों के भी हृदय है, तभी आप लोग उसे समझ पाते हैं अन्यथा नहीं।'

'(कुछ व्यथापूर्ण स्वर से) ठीक कहती हो सोमी, हमें भी ऐसा ही अनुभव हुआ है, आओ यहाँ बैठ कर बातें करें।'

(लज्जा तथा उत्सुकता से) आपको कुछ कष्ट है क्या, कुमारी जी को लिवाती आऊँ।'

'नहीं, पहिले तुमसे कुछ बातें कर लें तब। (मुस्किरा कर) डरो मत।'

बगल के एक कुंज में एक बड़ी चौकी पड़ी थी, उसी पर यह जा बैठे। सोमी उसके नीचे ही बैठ रही थी कि इन्होंने टोंक कर उसे उसी पर बैठने के लिए कहा। वह एक किनारे बैठ गई पर

लज्जा से सिमटी सी जा रही थी। यद्यपि वह भीलनी थी पर उस जाति के एक सरदार की कन्या तथा दूसरे सरदार की पत्नी भी थी। इससे वह बहुत सभ्य, सरल, बातचीत में पटु तथा व्यवहारकुशल थी। कुछ श्यामवर्ण की होने पर भी वह अति सुंदरी कही जा सकती थी, कृशांगी होते भी उसका शरीर सांचे में ढला सा था और उसकी चाल, बातचीत के ढंग आदि भी अत्यंत आकर्षक थे। गोपाल से वीर, साहसी तथा सुंदर युवक के पास उसी के कहने पर इस प्रकार एकांत में बैठने में उसे लज्जा तथा भय मालूम हुआ पर गोपाल की ओर से उसे कुछ भी आशंका नहीं थी क्योंकि उन पर उसे पूर्ण विश्वास था। पर यदि किसी ओछे की दृष्टि पड़ जाय तो न मालूम वह क्या कहानी गढ़ ले इसी की चिंता उसे थी। वह यही सोच रही थी कि गोपाल ने कहा—

'सोमी, इस थोड़े ही परिचय से हमारा तुम पर इतना विश्वास बढ़ गया है कि मैं स्वयं आश्चर्य में हूँ पर यह तुम्हारे गुणों ही के कारण है। मुझे कोई अधिकार नहीं था कि मैं तुम्हें इस प्रकार एकांत में रोक रखूँ पर यह जान कर ही कि यदि मैं रोकूँगा तो तुम अवश्य रुक जाओगी, इसी लिये कहा था। जिस प्रकार मुझे तुम पर विश्वास है, उसी प्रकार तुम्हारा हम पर है, यह तुम्हीं ने हमें बतला दिया है, इस तरह रुक कर। मैं एक बात में तुम्हारी सम्मति चाहता हूँ और यहाँ कोई भी तुम्हारे सिवा ऐसा नहीं है जिससे वह कह सकूँ। तुम यह जानती हो कि इरा पर मेरा कैसा प्रेम है और वह भी मुझ से कितना प्रेम करती है। इस प्रेम में जातिविचार-रूपी वाधा ऐसी आ पड़ी है कि नहीं कहा जा सकता कि यह दो हृदयों को नष्ट कर शांत होगी या पहिले ही। यदि इसकी कुछ भी आशंका पहिले रही होती तो मैं कभी

इरा की दृष्टि में अपने को न लाता। कम से कम एक हृदय की रक्षा तो होती पर दैव ने ऐसे-ऐसे अवसर उपस्थित कर दिए कि जो होना था वह हो गया।'

'इससे आप क्यों दुःखी होते हैं, बीती बात मिट नहीं सकती और आप लोगों का प्रेम पारस्परिक है, इसमें शंका को स्थान ही नहीं है।'

'तब यदि इस प्रेमसूत्र में विवाहबंधन की गाँठ न पड़ सकी तो यह क्या टूट सकेगा, सोमो ?'

'नहीं, गाँठ पड़े या न पड़े, यह सूत्र कभी टूट न सकेगा। यह दोनों हृदयों के साथ साथ ही मिट सकेगा। पर यह तो कहिए, आप ब्राह्मण हैं और कुमारी क्षत्रिय-कन्या हैं तब विवाह में क्या रुकावट है। सुनते हैं कि पहिले तो ऋषियों से राजकन्याओं का परिणय होता था।'

'सोमी, तुम्हारा कहाँ ध्यान है, भारत का वह स्वर्ण समय कहाँ है, अब तो इस जाति-बंधन में पड़ कर हम लोग अपनी हानि ही करते हैं, लाभ नहीं उठाते। कितनी कोमल कलिकाएँ कंटकों का कंठहार कर दी जाती हैं और इसी जाति रूपी झगड़े पर वे बलिदान हो जाती हैं। मेरा तात्पर्य तुमसे यह सब कहने का यही है कि इरा के पिता भी इस झगड़े पर उसे बलिदान कर देंगे। ऐसी अवस्था में मैं यह अपना धर्म समझता हूँ कि इरा से दूर हो जाऊँ, जिसमें वह मुझे भूल सके और ईश्वर से यही प्रार्थना करता रहूँगा कि वह उसे उसके योग्य ऐसा वर दे, जिससे वह मुझे भूल कर भी स्मरण न करे। मेरा पत्थर का हृदय सब सह लेगा पर यदि उसे मेरी स्मृति से कुछ कष्ट पहुँचा तो वही असह्य हो जायगा। क्यों, सोमी, क्या यह संभव है, इरा

मुझे भूल जायगी। मौन क्यों हो गईं, अरे तुम रो रही हो, क्षमा करो सोमी, तुम्हें हमने कष्ट ही दिया।'

'(सिसकती हुई) नहीं, कुछ कष्ट नहीं। मैं अब तक यही समझती थी कि इस प्रेममार्ग में कोई वाधा नहीं है पर यह क्या सुन रही हूँ। कुमारी आपको भूल जाएँगी, क्या आप उन्हें भूल सकते हैं? आपको स्त्रियों का अपमान करने का रत्ती भर भी अधिकार नहीं है। आप भूल सकते हैं, वह नहीं भूल सकतीं।'

'(उसकी तेजस्विता पर चकित होकर) सोमी, तुम लोगों का यह अपमान नहीं कर रहा हूँ, मार्ग भूला हुआ जिस प्रकार भटक भटक कर राह खोजता है उसी प्रकार मैंने यह एक मार्ग बतलाया था। मैं तो तुमसे स्वयं मार्ग पूछ रहा हूँ पर भई अब तो तुमसे कुछ पूछने में डर लगता है, पहिले सिसकने लगोगी और तब बिगड़ने। कुछ बतलाओगी नहीं।'

'(कुछ मुस्किराते हुए) नहीं, नहीं, यह आप क्या कहते हैं। आपसे वीर मुझ सी नीच जाति की अबला से भय करे।'

'(देखते हुए) नहीं सोमी, तुम्हारे मुख पर इस समय कारुण्य, स्नेह, तेजस्विता तथा विनोद का जो मिश्रण दीख रहा है, उसे देख कर जो तुम्हें नीच कहे वही नीच है। देखते ही बनता है।'

'क्या कुमारी को भूलने का यह दूसरा मार्ग ढूँढ़ निकाला है?'

यह कह कर वह खिलखिला कर हँस पड़ी और उठ खड़ी हुई। गोपाल ने दुःखित स्वर में कहा, 'तो तुम स्वयं कुछ न बतलाओगी, केवल हँस कर हमारी बातों की हँसी उड़ाओगी। ठीक है, जाओ। अपना कष्ट किसी अन्य से कह कर इससे अधिक की आशा रखना वृथा है पर तुमसे मुझे ऐसी आशा नहीं थी।'

'(हँसती हुई) ऐसा न कहिए, मैं तो आप दोनों की दासी

१६२

इरा
तो
हो

उ
।

हूँ। आप अपनी आशा बनाए रखिए, वह कभी वृथा न होगी। आप यहीं ठहरिए, सम्मति समझ बूझ कर दी जाती है। मैं अभी आती हूँ।'

सोमी के चले जाने पर गोपाल उठ कर वहाँ टहलने लगे। सोचने लगे कि उनका क्या कर्तव्य है। यह तो निश्चय है कि ब्राह्मण से क्षत्रिय हो नहीं सकता और यह भी निश्चित है कि सामंत क्षत्रियेतर को कन्यादान करेंगे नहीं। इरा से भेंट कर इस विषय में बात करूँ या न करूँ। बात करने से बात बढ़ने की आशंका है। सोमी बड़ी चतुरा है और इरा पर उसका अत्यंत स्नेह है। कितना दर्प उसमें है पर उसका हृदय स्नेहार्द्र भी खूब है। इरा के कारण हो या यों ही उसका मुझ पर भी अवश्य स्नेह है। उच्चपदस्थ घराने की स्त्रियों के समान लज्जा, शील आदि गुणों से युक्त है पर इसे लोग नीच कहेंगे। वह इरा से बात करने गई है या लिवाने चली गई है, उसने स्वतः कुछ कहना उचित नहीं समझा। पर इरा से क्या कहूँगा।

यह इतना सोच पाए थे कि सामने से इरा तथा सोमी आती दीख पड़ीं। यह फिर उसी कुंज में जा बैठे। इरावती तथा सोमी दोनों उसी कुंज में आ पहुँचीं और इरा के बैठ जाने पर भी सोमी कुछ हट कर खड़ी रही। इरा ने यह देख कर उसे हाथ पकड़ कर अपने पास ही बैठा लिया और मुस्किराती हुई बोली, 'कहिए, आपने सोमी को क्यों एकांत में रोक रखा था? बेचारी किसी प्रकार छूट कर हमारे पास पहुँच पाई।'

'इरा, तुम्हारे लिए तो सब विनोद मात्र है पर हमारे हृदय पर क्या बीत रही है, यह तो हम न समझ रहे हैं।'

'तब हृदय है किस लिए और यदि इस सब से बचना चाहें तो हृदयहीन हो जाइए, फिर कुछ कष्ट न होगा।'

'चुप सोमी, यह क्या बकती है। आप इसकी बातों पर ध्यान न दीजिए।'

'नहीं इरा, इसे बोलने दो, रोको मत। तुम्हारे स्नेह के फेर में पड़ कर यह जो चाहे कहे हम सुनने को तैयार हैं। इसका स्नेह सच्चा है और इसीसे जरा सी बात पूछने पर यह हमें खरा खोटा कब से सुना रही है और हम भी आदर से सुन रहे हैं। क्यों सोमी सारा स्नेह इरा ही के लिए है, हमारे लिए कुछ भी नहीं ? (मुस्किरा कर) इरा कुछ न कहेगी, बतलाओ।'

'(लज्जा के साथ इरा के पीछे मुख छिपा कर) चलिए, मैं अब कुछ न बोलूँगी।'

'लो, अब कुछ न बोलेंगी। अच्छा, इरा जो बातें हमने सोमी से कही थीं वह तुमने सुन ली होंगी। तुमसे कहने का साहस नहीं पड़ रहा था और तुमसे बिना कुछ कहे चल देना भी अशक्य था, इसीसे सोमी को सामने पाकर तथा तुम्हारी सच्ची सखी समझ कर ही इससे सम्मति लेना चाहा था पर यह क्यों दे। मुझे तो यों ही रूखा सा उत्तर देकर चल दी और तुम्हें लिवा लाई। अब तुम भी वैसा ही बर्ताव न करना।'

'(हँस कर) यह आप क्या कह रहे हैं, सोमी ने स्वतः कुछ सम्मति दे देना उचित नहीं समझा, इसीसे मुझे लिवा लाई।'

'हाँ, पर समझ बूझ कर भी तो वह कुछ सम्मति नहीं दे रही है, कहती है अब बोलूँगी नहीं।'

'मैं तो कहती हूँ न, उसने मुझसे अपनी राय बतला दी है; यह बड़ी शरारती है, मुझे तो कभी-कभी दिक कर डालती है। अभी तो आपसे पहिले ही पहिल बातचीत हुई है।'

'हमारा ऐसा भाग्य होगा तब न फिर अवसर मिलेगा। जब

तुम्हीं को पाने की आशा नहीं है तब तुम्हारी सखी की कटूक्तियाँ सुनने का अवसर क्यों मिलेगा।'

'उँह, ऐसे निराश क्यों होते हैं? कष्ट होगा तो सभी को और सभी को सहन करना पड़ेगा। पहिले निश्चय तो हो जाने दीजिए। सबलसिंह बड़े दूरदर्शी हैं, मुझ पर पुत्री से बढ़ कर स्नेह रखते हैं और आप पर भी उनका बहुत स्नेह हो गया है। वह जब तक आपके रहस्य का उद्घाटन न कर लें तब तक आप एकाएक अपनी राय से कहीं चल न दीजिएगा।'

'(इरा के कान में पर जोर से) इन पर विश्वास मत करिए, इन्हें कैद में रखिए तभी ठीक होगा नहीं तो भाग जाएँगे।'

'चुप, पगली। इन पर विश्वास न करूँगी तो किस पर करूँगी।'

'सोमी, इनका तो मैं मनसा कैदी हो चुका हूँ, शरीर को कैद करना यह नहीं चाहतीं, तुम उसे भी कैद कर लो पर एक साथ दो को कैद कर सकोगी?'

'(लज्जित सी) मैं क्या-क्या कर सकती हूँ, समय पर बतलाऊँगी। दो को कैद करना कठिन नहीं है।'

'अच्छा अच्छा, आप कल ही जाएँगे?'

'हाँ यही निश्चय हुआ है।'

'लौटेंगे कब?'

'इरा, कह नहीं सकता। यदि सबलसिंह की बात ठीक निकली, जिसकी मुझे आशा नहीं, तब तो मैं दौड़ता आऊँगा पर यदि ठीक न निकली तब......'

'तब कच्चा प्रेम वायु में विलीन हो जायगा और नए की खोज में निकल पड़िएगा।'

'ऐसा नहीं है सोमी।'

'तब आप बाध्य हो कर आइएगा।'

'(दृढ़ता से) तुम्हारी ही राय ठीक है। यही होगा।'

इसके बाद कुछ देर तक इधर उधर की बातें करने और बाग में टहलने के बाद इरा सोमी के साथ महल में चली गई और गोपाल अपने कमरे में लौट आए।

अष्टादश परिच्छेद

धारानगरी प्रसिद्ध राजा भोज की राजधानी थी। इसीके फूल चौक में ज्योतिर्विद् बटुकनाथजी का विशाल प्रासाद था, जिसमें दो-एक दिन से गोपाल तथा सबलसिंह कुछ अनुभवी अनुचरों के साथ आकर निवास करने लगे थे। सबलसिंह शांत बैठनेवाले पुरुष न थे और यह वहाँ पहुँचते ही गोपाल को लेकर दिवंगत पंडितजी का सारा पुस्तकालय तथा अन्य पत्र आदि देखने में दत्तचित्त हो गए। इसके साथ साथ उक्त पंडितजी के पुराने मित्रों तथा परिचितों से, जिनसे सबलसिंह का परिचय था या जिन्हें केवल गोपाल जानता था, सबलसिंह ने पूछताछ जारी रखा। पाँच छ दिन के परिश्रम में इतना निश्चय हो गया कि गोपाल ज्योतिषी जी का औरस पुत्र न होकर केवल पोष्य पुत्र है पर वह उन्हें कहाँ मिला, किस जाति या गोत्र का वह है और किस कारण उन्होंने इसे पाला, यह सब कुछ भी ज्ञात न हो सका। इतने वृत्तांत से सबलसिंह को कुछ आशा हुई पर गोपाल और भी निराश हो गया। अब तक तो वह अपने को ब्राह्मण ही मानता था पर अब उसकी जातिपाँति का भी पता न रह गया, वह किसी का औरस है या पाप से उत्पन्न है इसका भी पता नहीं था। उसका यौवन-दर्प मिट सा गया। सबलसिंह ने उसकी नैराश्यपूर्ण बातों पर उसे बहुत डाँटा तथा समझा कर प्रोत्साहित भी किया कि यत्न से सब कुछ हो सकता है तथा सभी रहस्य खुल सकते हैं। इसी के दूसरे दिन गृह ही में एक पुरानी

पेटी मिली, जिसे लोगों ने बेकार समझ कर सबलसिंह को दिखलाया भी न था। इसमें ताला न था प्रत्युत् कील काँटों से वह एक दम बंद थी। लकड़ी सड़ सी गई थी, इसलिए दो तीन बार पटकने पर वह टूट गई। इसमें केवल प्रायः पाँच वर्ष के बालक के पहिरने योग्य एक वस्त्र, एक छोटा कपड़े का गेंद तथा एक छोटी सी छड़ी थी।

सबलसिंह ने इन तीनों वस्तुओं को बड़े यत्न से उठा लिया और कुछ देर तक अच्छी प्रकार निरीक्षण कर उसे अपने पास रख लिया। अब वह गोपाल से बोले—

'युवकगण सभी बातों में जल्दी करते हैं, जरा सी बात में बड़ा उत्साह दिखलाने लगते हैं, बढ़ बढ़ कर बातें करने लगते हैं और वैसी ही जरा सी बात में आशा छोड़ बैठते हैं। तुम्हारे नैराश्य का अंत इन्हीं जरा-जरा सी तीन वस्तुओं में हो जाता है। हमने तुमसे कहा था कि ज्योतिषीजी ने तुम्हें पाँच वर्ष की अवस्था में पाया होगा, इसका समर्थन यह वस्त्र कर रहा है और उस समय तुम्हारे पास यह दोनों खेल की वस्तुएँ थीं। ये तीनों मूल्यवान हैं, अतः तुम किसी अच्छे धनी वंश ही के हो सकते हो। ये उस घटना के चिह्न रूप में सुरक्षित रखे गए हैं और इनसे यह भी ज्ञात हो रहा है कि वह पंडितजी तुम्हारे विषय में कुछ नहीं जानते थे, नहीं तो इन्हें इस प्रकार सुरक्षित रखने की आवश्यकता न होती। हमारा यह कथन कि तुम क्षत्रिय हो, यही ठीक निकलेगा और तुम किसी उच्च वंश ही के होगे। अच्छा, उस वृद्ध मल्लाह के विषय में कुछ ज्ञात हुआ?

'जी हाँ, वह बहुत वृद्ध हो गया है और कुछ बीमार भी है। वह अपने गृह पर है और उसका ग्राम यहाँ से कई दिन की राह पर है। उसका पुत्र, जो अब यहाँ नौकर है और छुट्टी पर था,

आज ही संदेश पाकर आया है, उसीसे यह सब ज्ञात हुआ है।'

'तब हम लोगों को शीघ्रता से उस तक पहुँचना चाहिए। कौन जाने वार्द्धक्य तथा रोग के कारण उसकी शीघ्र ही मृत्यु न हो जाय। कल प्रातःकाल ही हम लोग यहाँ से चल देंगे।'

'कौन कौन लोग चलेंगे।'

'वही दल जो साथ आया है और उस वृद्ध मल्लाह का पुत्र।'

'सामंत जी के यहाँ से कोई समाचार आया है ?'

'वहाँ सब कुशल मंगल है और अभी त्रिपुरी से किसी प्रकार की आशंका भी नहीं है। यहाँ का वृत्तांत भी सब लिखकर भेज दिया है। (मुस्किरा कर) क्या तुम्हें भी किसी को पत्र लिखना है।'

'(मुस्किराकर) आप तो हँसी करते हैं। (गंभीरता से) पहिले जब मैं स्वयं अपने को कुमारी इरा के योग्य समझ लूँगा तभी पत्र लिखूँगा या वहाँ जाऊँगा, नहीं तो फिर मुझे संसार न देख सकेगा।'

'हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा। देखा जायगा पर याद रखो कि तुम्हें जो कुछ करना हो वह हमी से पूछ कर करना, चाहे तुम कोई भी हो। इसके लिए वचनबद्ध होना होगा। कहो क्या कहते हो ?'

'हमें आपकी सब आज्ञा शिरोधार्य है क्योंकि मुझे इतना विश्वास है कि आप ऐसी बात कहेंगे ही नहीं, जिससे हमारे आत्मसम्मान को धक्का पहुँचे।'

'ठीक है, कल की यात्रा का प्रबंध कीजिए।'

'इस विषय में भी आप ही के इच्छानुसार प्रबंध होगा। आप जो चाहें आज्ञा दें।'

दूसरे दिन ये लोग चल दिए और तीन दिन बाद शीघ्रता से यात्रा करते हुए उस वृद्ध नाविक के ग्राम में पहुँच गए। सबलसिंह ने पहुँचते ही उस वृद्ध से बातचीत आरंभ कर दी, जो अत्यंत

निर्बल हो रहा था। उसने गोपाल को देख कर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की, धीरे से हाथ उठा कर अभिवादन किया और साथ ही आशीर्वाद सा भी दिया—

'भगवान आपको हमारी सी आयुष्य दे। आपके आने से इस दीन सेवक की कुटी आज पवित्र हो गई। अंतिम समय आपके दर्शन भी हो गए।'

'शिबू, बहुत दिनों के बाद तुम्हें देख कर मुझे बचपन के सब खेल याद आ रहे हैं। अभी क्यों घबड़ाते हो, रोग है निकल जायगा। शंभू को तुम्हारी देखभाल के लिए छोड़ जाएँगे। अच्छा (सबलसिंह की ओर संकेत कर) ये जो पूछें और तुम जानते हो वह सब इन्हें बतला दो।'

'पूछिए अन्नदाता, जो हम जानते हैं हम अवश्य बतला देंगे।'

'बटुकनाथ जी को कोई अपनी संतान नहीं थी और उन्होंने पाँच वर्ष के जिस बालक का पालन कर अपना पुत्र बनाया था, क्या वह यही गोपाल हैं ?'

'जी हाँ। जिस समय पंडितजी यात्रा में भ्रमण करते हुए इस ग्राम में आए थे तब यहाँ कुछ दिन ठहरे थे। वह नित्य प्रातःकाल नाव पर सवार होकर कभी इस ओर और कभी उस ओर दूर तक जाते थे तथा स्नान संध्या आदि कार्य से निवृत्त होकर दोपहर होते होते लौट आते थे। इसी प्रकार एक दिन मैंने नाव एक स्थान पर लगाई, जो किसी पुराने बाग का घाट था। यहाँ से वह स्थान कोई दो कोस पर होगा। ज्योतिषीजी संध्यावंदन कर रहे थे कि पाँच वर्ष का एक बालक घाट से उतर कर उनके पास आया। उससे पूजा निपटने पर पंडितजी ने बातचीत किया और वह लौट कर ऊपर जा रहा था। उसके हाथ में एक गेंद तथा छड़ी थी। एकाएक गेंद उसके हाथ से छूट कर नीचे गिरा और उसे लेने को

लपकते ही वह बालक भी पैर फिसलने से नीचे आ गिरा। उसे ऐसी चोट लगी कि दूसरे दिन उसे होश आया। बाग में जाकर मैंने बहुत खोजा पर कोई न मिला। अंत में पंडितजी उसे गृह लिवा गए और उसका पालन पोषण किया। वही बालक अब हमारे स्वामी यह हैं।

'तुम्हें कुछ ज्ञात है कि वह बाग किसका था और वे लोग कौन थे ?'

'वहाँ कोई मिला ही नहीं जिससे उस स्थान के विषय में कुछ पूछा जा सके। आसपास में भी कुछ पता न मिला। बाद में भी दो तीन बार पंडितजी ने वहाँ मुझे भेजा था पर कुछ पता न चला।'

'पंडितजी इनके विषय में कभी कुछ कहते थे।'

'वह यह कह रहे थे कि इस बालक के हाथ की रेखाओं से ज्ञात होता है कि यह किसी उच्च वंश का है और इसमें राजयोग के लक्षण हैं। इससे अधिक वह कुछ बतला भी नहीं सकते थे।'

'ठीक है, अब उस स्थान की क्या दशा है ?'

'पहिले तो वह बहुत दिनों तक बिल्कुल जनशून्य रहा पर अब पता लगा है कि कुछ दिनों से उसमें कुछ लोग आए हैं। वे कौन हैं, कैसे आए हैं, इसका कुछ भी हमें पता नहीं है।'

'देखा जायगा। वह स्थान तुम्हारे पुत्र का देखा है ?'

'जी हाँ, (पुत्र से) यहाँ से दो कोस दक्षिण बाएँ तीर पर जो बाग और प्रासाद है, वहीं लिवा जाना।

'अच्छा, बहुत कष्ट हुआ होगा, क्षमा करना भाई।'

'नहीं सरकार, स्वामी का भला हो, अच्छा हुआ कि मैं यह कहने को जीवित बच रहा था।'

इसके अनंतर सबलसिंह नाव पर जा पहुँचे और गोपाल तथा

अन्य चार अनुचरों को साथ लेकर शंभू को आज्ञा दी कि उस स्थान की ओर शीघ्र चले। जल के चढ़ाव के कारण प्रायः डेढ़ घंटे में ये लोग उस घाट पर पहुँच गए और तब सब लोग सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर बाग में पहुँचे। बाग में घूमते हुए ये लोग उस अट्टालिका के द्वार पर आए, जहाँ एक वृद्ध द्वाररक्षक बैठा हुआ था। वह इन लोगों को देख कर उठ खड़ा हुआ और अभिवादन कर पूछा—क्या आज्ञा है? आप लोग यहाँ किसे खोज रहे हैं? सबलसिंह ने उत्तर दिया—

'हम लोग इस अट्टालिका के स्वामी से मिलने तथा कुछ पूछने के लिए आए हैं। उन्हें हमारे आने की सूचना दे दो।'

'जैसी आज्ञा, आप लोग भीतर आकर इस कमरे में बैठें और उचित समझें तो इन लोगों को यहीं ठहरने की आज्ञा दें।'

'ठीक है।'

यह कहकर सबलसिंह गोपाल के साथ भीतर जाकर एक कमरे में वहाँ पड़े हुए एक आसन पर बैठ गए और गोपाल दूसरे पर। वह वृद्ध इन लोगों के बैठ जाने पर चला गया। सबलसिंह चारों ओर देखते हुए गोपाल से बोले—

'यद्यपि यह स्थान इस समय गिरी हुई दशा में है पर है यह किसी प्रभूत ऐश्वर्यशाली का बनवाया हुआ। यदि इस प्रासाद में तुम्हारा जन्म हुआ था और पाँच वर्ष तक यहाँ रहे तो अवश्य ही किसी धनाढ्य वंश के होगे।'

'जो कुछ हो, पर यह गृह मुझे कुछ परिचित सा अवश्य लग रहा है। कब देखा है, यह स्मरण नहीं आ रहा है। शिबू कहता था कि उस समय यहाँ कोई न था और अब यहाँ कुछ रहनेवाले दिखलाई पड़ते हैं। यदि ये दूसरे हुए तो क्या पता लगेगा।'

'घबड़ाते क्यों हो? जो कुछ होगा अभी पता लग जायगा।'

इसी समय एक अत्यंत वृद्ध संन्यासी उस द्वाररक्षक के साथ उस कमरे में आए, जिन्हें देख कर ये दोनों भी उठ खड़े हुए। बाबाजी के गौर मुख पर गंभीरतापूर्ण तेज झलक रहा था और उनका भव्य तथा दिव्य स्वरूप बरबस दर्शकों में श्रद्धा उत्पन्न कर रहा था। इन दोनों ने उनके पैरों को छूकर प्रणाम किया तथा उन्होंने भी आशीर्वाद देकर बैठने को कहा और स्वयं एक कुशासन पर बैठ गए।

'कहिए, आप क्या पूछना चाहते हैं ?'

'पहिले मैं आपसे यह निवेदन कर देना चाहता हूँ कि मैं क्यों आपसे इस स्थान तथा इसके स्वामी के विषय में कुछ बातें जानना चाहता हूँ। प्रायः पंद्रह वर्ष हुए कि इस स्थान से एक पंचवर्षीय बालक को एक पंडितजी ले गए थे और अब तक उन्हें उसके विषय में कुछ भी ज्ञात न हो सका कि वह बालक किसका है, किस वर्ण का है इत्यादि। उसी का पता लगाने का भार मुझे मिला है। क्या आप मेरी इस विषय में कुछ सहायता कर सकेंगे।'

'(प्रसन्नता तथा आशंका के साथ) क्या वह बालक जीवित है, अब युवक हुआ होगा। वह कहाँ है ?'

'(प्रसन्नता से) तो आप उसके विषय में जानते हैं। वह जीवित है, सुंदर वीर युवक है पर अब आप मेरी जिज्ञासा का भी उत्तर दें, जिससे मेरा परिश्रम सफल हो।'

'नहीं, पहिले यह बतलाओ कि उसे हम कब देख सकेंगे ?'

'भगवन्, आपसे कोई आशंका नहीं हो सकती पर समय ऐसा है, स्थिति ऐसी है कि इससे अधिक बतलाने की इच्छा नहीं होती, भय मालूम होता है, आगे आप जैसा कहें।'

'ठीक है, तुम चतुर, दूरदर्शी तथा सुपुरुष हो। शंका तुम्हारी

उचित है। अच्छा, कुछ ठहरो। हम थोड़ी देर में आते हैं। इतना अवश्य है कि तुम उस बालक के शुभैषी हो।'

यह कह कर वह बाबाजी उठकर बाहर चले गए। गोपाल ने धीरे से पूछा कि आपने मेरा परिचय क्यों छिपा लिया?

'तुम अभी निरे बालक हो और वह भी अति चंचल। चुप-चाप देखते रहो और सुनते रहो।'

'आखिर को आपने कुछ समझ कर ही न छिपाया है। बतलाइएगा नहीं तो मैं क्या समझूँगा?'

'भई बात यह है कि तुम्हारे जीवन के विषय में कुछ गुप्त रहस्य अवश्य है और इसी कारण तुम छिपा कर इस निर्जन स्थान में रखे गए थे। यहाँ से भाग्यवशात् तुम अन्यत्र चले गए और जिन्हें तुमसे भय रहा होगा वे ठीक पता न रखने से अब भी सशंकित होंगे। यदि ये लोग उनसे मिले हुए हों, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि पंद्रह वर्ष पहिले ये ही तुम्हारे रक्षक थे, तो तुम्हारा परिचय पाकर तुम्हें कष्ट देने का प्रयास करेंगे। इससे जब तक शंका दूर नहीं होती तब तक परिचय देना मूर्खता मात्र होगी।'

'ठीक है, समझ गया।'

ये लोग इसी प्रकार बातचीत कर रहे थे कि वही बाबाजी लौट कर आए तथा संकेत से इन दोनों को साथ आने को कहकर लौट पड़े। ये भी उनके पीछे हो लिए। दो तीन कमरे डाँककर ये एक बड़े कमरे में पहुँचे, जहाँ एक विधवा एक आसन पर बैठी हुई थी। यह एक प्रौढ़ा सुंदरी स्त्री थी, जिसके मुख पर कारुण्य की गहरी छाया के साथ साथ इस समय कुछ शंकामिश्रित प्रसन्नता भी झलक रही थी। उसके सामने कुछ पूजा का सामान तथा पाठ करने की पुस्तक छोटी छोटी चौकियों पर रखी हुई थीं। उसने इन

नवागंतुकों पर एक दृष्टि डाली और अपने नेत्रों को नीचा करना चाहा पर न जाने क्यों उसकी दृष्टि नीचे न झुकी। वह सबलसिंह की ओर एकटक देखती हुई उठ खड़ी हुई। सबलसिंह भी उसकी ओर देखकर एक बार ही चिहुँक उठे, नीचे दृष्टि की और फिर उसकी ओर देखते हुए आगे बढ़ने लगे। उसके पास पहुँच कर यह झुके और उसके पैरों की धूलि मानों उठाकर अपने माथे पर लगाते हुए बोले—

'भाभी, आप यहाँ कहाँ ?'

'(आँचल से आँसू पोंछते हुए) भैया, तुम कहाँ चले गए थे ? तुम्हारे न रहने से गृह में कितना उपद्रव मच गया, कितना कष्ट हम सब को उठाना पड़ा, यह तुम कुछ नहीं जानते और न जानने का स्यात् तुमने प्रयत्न किया।'

'भाभी, मूर्खता के कारण या पागलपन से जो मैंने किया था उसीका फल भोग रहा हूँ। भैया के तथा तुम्हारे स्नेह ने शीघ्र ही मेरी बुद्धि ठीक कर दी थी और मैं लौटा भी था पर यहाँ का कुसमाचार पाकर मैं जो फिर भागा तो बहुत दिनों तक स्वदेश न लौटा। पर क्या वह कुसमाचार सब झूठा था, तुम तो प्रत्यक्ष सामने हो, क्या बात है, क्या मैं उस समय भी ठगा गया था ?'

'हो सकता है, पहिले बैठो, सुस्ता लो तब बातचीत होगी।'

सबके आसीन हो जाने पर उस स्त्री ने रुद्ध कंठ से पूछा—

'भैया, पहिले यह तो बतलाओ कि वह बालक, मेरा लाल, कहाँ है, कैसा है, कुशल-पूर्वक है ?'

'कौन, क्या वह बालक तुम्हारा पुत्र है भाभी ?'

'हाँ, पाँच वर्ष का था, जब वह गुम हो गया। हम लोगों ने समझा कि वह नदी में गिर कर डूब मरा क्योंकि उसके पदचिह्न घाट पर मिले थे। और भी मनुष्यों के पदचिह्न मिले थे,

जिससे भी यही निश्चय हुआ कि शत्रुओं ने जानबूझ कर उसका घात किया होगा। मैं तो पागल हो गई थी। कुछ स्वस्थ होनेपर कई वर्ष तक इधर उधर इन्हीं पुरोहित जी के साथ यात्रा करती रही, अंत में पुनः यहीं आकर जीवन व्यतीत करने लगी। बतलाओ वह कहाँ है?'

'है, जीवित है, पर यह नहीं समझ में आता कि जिस समय वह बालक यहाँ से हटाया गया, उस समय यहाँ कोई भी नहीं था और अब कई आदमी यहाँ दिखला रहे हैं। यह कौन स्थान है, जहाँ आप रह रही हैं।'

'यह मेरे मायके का है और बहुत दिनों से यहाँ कोई नहीं रहता था, जिससे इसकी यह दशा हो गई है। जब मैं पहिले यहाँ छिप कर रहने आई थी, तब केवल यही पुरोहित जी साथ थे। किसी को कुछ ज्ञात न हो इसलिए यह भी यहाँ नहीं रहते थे, केवल सामान ला दिया करते थे। मैं एकाकिनी यहाँ रहा करती थी। यहीं वह बालक हुआ और पाँच वर्ष तक पला भी। किसी को हम लोगों का पता न लगे इसी से कोई सेविका, सेवक नहीं रखा पर अब अपने एकाकिनी के लिए कुछ भय का कारण न पाकर जब पुनः आई तब यह सब प्रबंध कर लिया है। मेरे भाई की तो मृत्यु हो गई है, भ्रातृपुत्र है वही ध्यान रखता है। तुम्हारा कहीं कुछ पता ही न था।'

'हम इसी योग्य हैं, किसी के भी काम न आए।'

'नहीं भैया, ऐसा न कहो, यह सब भाग्य का लिखा था, हो गया। अब तुम आ गए, अंतिम समय एक आश्रय तो मिल गया। अच्छा अब तो बतलाओ मेरा पुत्र कहाँ है?'

'भाभी, एकाएक प्रसन्नता के आधिक्य से कुछ अनिष्ट न हो जाय इसीलिए मैं नहीं कह रहा था।'

'(मुस्किरा कर) भला, अब इतने समझदार तो हो गए। तब तो हमारे पीछे पीछे दौड़ा करते, और यह क्या वह क्या पूछा करते, हमसे सम्मति लेते थे अब हमीं को सिखलाने लगे।'

'(मुस्किराते हुए) ठीक है भाभी, यह समझ भी टक्कर खाने ही पर आती है पर शोक है कि तुम्हारे स्नेह का कष्ट के समय अंश मात्र भी प्रतीकार न दे सके। माता मुझे छोटी अवस्था में छोड़कर मर गई थी और उसके अनंतर तुम्हीं में मैंने सारा स्नेह पाया पर समय पर तुम्हारे कुछ काम न आ सका। गोपाल, यही तुम्हारी माता हैं, इनका चरण स्पर्श करो।'

गोपाल उठकर माता का चरण स्पर्श करते करते उसकी गोद में खिंच गया।

'(उत्तेजित हो कर) कौन मेरे लाल, मेरी गोद में आ, बेटा, तू कहाँ चला गया था। देखूँ, मुख देखूँ, ठीक है यही मेरा लाडला है, यही अवस्था भी होनी चाहिए।

इस मिलन को देखकर सबलसिंह तथा वृद्ध पुरोधा दोनों के नेत्र सजल हो उठे। मातृ-हृदय पुत्र के मुख देखने, बारबार छाती में चिमटा लेने तथा प्यार करने से तुष्ट नहीं हो रहा था और आनंद से उसके नेत्रों से जल बहता जा रहा था तथा रोमांच भी हो रहा था। सबलसिंह ने कहा—

'भाभी, हम लोगों को आज ही लौट जाना है, अब पहिले सब वृत्तांत तो मुझे बतलाइए कि मेरे जाने के बाद क्या क्या घटनाएँ हुईं। आपको गृह छोड़ कर हटना क्यों पड़ा? बिना सब जाने आगे का क्या कर्तव्य है, कैसे निश्चित कर सकूँगा।'

'कहाँ लौट कर जाना है, नहीं, मैं अब नहीं जाने दूँगी? इतने दिनों पर खोए हुओं को पाया है, क्यों इतनी कठोरता दिखलाते हो, भैया?'

'इसीसे तो कह रहा हूँ कि अपना वृत्तांत बतलाइए और हम लोगों का सुनिए तब जैसी सम्मति होगी, वैसा ही आगे किया जायगा।'

'अच्छा, तो पहिले खाने-पीने का प्रबंध करना आवश्यक है, समय अधिक हो गया है, तुम लोग भूखे होगे। उसके बाद बातचीत होगी।'

'बस, भाभी को हम लोगों को खिलाने की चिंता लग गई। अब उसके पहिले कुछ नहीं हो सकता। आओ गोपाल, चलें तब से हम लोग स्नान आदि से निवृत्त हों। भाभी, हम लोगों के साथ चार अनुचर तथा दो मल्लाह भी हैं।'

इतना कहकर ये दोनों बाहर चले आए और अपने अनुचरों को भी आज्ञा दे दी कि आज यहीं ठहरना है। इसके अनंतर सब कार्य से निवृत्त हो जाने पर प्रायः तीन बजे सब लोग उसी बड़े कमरे में एकत्र हुए। इस बीच गोपाल ने सबलसिंह से बड़ी नम्रता से अनेक बार क्षमा माँगी और कहा कि अनजान में यदि उससे कोई शब्द अपमानजनक निकल गए हों तो उसके लिए वह उसे यथोचित दंड दें। सबलसिंह ने बड़े स्नेह के साथ उसके सिर तथा मुख पर हाथ फेरते हुए कहा—'इससे कड़ा दंड मैं तुम्हें दे ही नहीं सकता। तुम नहीं जानते कि भैया का हमारे पर कैसा स्नेह था और भाभी के स्नेह का तो तुमने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। तुम से जिस दिन से परिचय हुआ है, उसी दिन से हमारा तुम पर स्नेह बढ़ता गया पर उसका कारण आज ज्ञात हुआ। रक्त का आकर्षण स्वभावतः होता रहा। तुम्हारी किसी प्रकार की दुष्टता पितृव्य के हृदय में क्षोभ नहीं पैदा कर सकती। दुःख इतना ही है कि तुम्हें बाल्यकाल में खिला न पाया। (मुस्किराकर) संतोष यही है कि पुत्रवधू को बचपन से खिलाया

है, उसकी तोतली वाणी सुनी है और अब उस पर पुत्री के समान प्रेम है। यह क्या कम है गोपाल ?'

'(लज्जा से सिर नीचे किए हुए) चाचाजी, आप इतने दिनों से सामंतजी के यहाँ सेवा कार्य क्यों करते रहे ?

'समय पर सब ज्ञात हो जाएगा। यह मेरा निजी रहस्य है, तुम्हें भी बतला दूँगा पर समय आने पर।'

सब के पुनः उसी कमरे में आकर आसीन हो जाने पर गोपाल की माता ने सबलसिंह को संबोधन कर पूछा—

'भैया, हम लोगों के एकमात्र संतान को, क्योंकि तुमने आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा ही की है, कैसी शिक्षा मिली है ? क्या यह क्षत्रियोचित युद्धकला में दीक्षित हुआ है ?'

'भाभी, इतने ही से समझ लो कि इसने दो युद्धों में सेनापति रहकर विजय प्राप्त किया है और इस समय यह एक प्रकार कालिंजराधिप का प्रधान सेनापति है। इसके स्वर्गीय धर्मपिता ज्योतिषीजी ने धार राज्य के चुने हुए युद्धकला-विशारदों से इसे युद्धविद्या सिखलाकर उसके प्रत्येक अंग में दक्ष कर दिया है।'

'(आनंदातिरेक से) भगवान उनकी आत्मा को सदा शांति दे। जो मैं अपने पुत्र के लिए कभी न कर सकती वह उन्होंने दूसरे की संतान के लिए अपना मानकर कर दिखाया पर उन्होंने ब्राह्मण होकर क्षत्रियकर्म पर क्यों इतना जोर दिया ?'

'शास्त्रादि के अध्ययन कराने के साथ-साथ ऐसा किया था क्योंकि उन्होंने गोपाल के हाथ को देखकर जान लिया था कि इसमें अजेय वीर होने तथा राजयोग के लक्षण प्रस्तुत हैं। अब अपना वृत्तांत कहिए।'

'अच्छा तो तुम्हें वहाँ तक का वृत्तांत तो स्मरण ही होगा, जब तुम अपने प्रेम में निराश होकर गृह छोड़कर चले गए थे।

तुम्हारे भाई ने तुम्हें बहुत ढुँढ़वाया पर तुम्हारा कहीं पता न लगा। वे बड़े दु:खित रहते। जब तक मैं उनके शरण में रही उतने समय के बीच केवल तुम्हारे ही लिए उनके नेत्रों में अश्रु-जल आते देखा था। कभी-कभी बीमार भी हो जाते, कहते कि माता उसे मुझे सौंप गई थीं और अब न जाने वह कहाँ चला गया तथा किस दशा में है। मुझे भी तुम्हारे कारण जो कष्ट था, वह उन्हें देख-देख कर असह्य हो उठता पर भावी पर वश ही क्या था? इसी बीच तुम दोनों के चचेरे भाई मिलने आए और सान्त्वना देने के बहाने गढ़ी में रहने लगे। उन्होंने उसकी कुटिल चाल पर ध्यान न दिया। इन पुरोहित जी को उसके षड्यंत्र का जब पता लगा और मायके की दासी द्वारा कुल वृत्त मुझ से कह-लाया तब तक उसके निराकरण का समय बीत गया था। वह अहेर खेलने गए थे और वहाँ से जीवित लौटने न पाए। समा-चार मिला कि डाकुओं ने उनके दल पर आक्रमण कर इन्हें मार डाला है। उनका शव आया और सब संस्कार उसी चचेरे भाई ने किया। मैं गर्भवती थी अतः सती न हो सकी पर यह भेद दो एक दासी तथा पुरोहित जी को छोड़ कर किसी को मालूम न था। वही महाराज से लिखा-पढ़ी कर गढ़ी का स्वामी बन बैठा। जब मैंने देखा कि मेरा गर्भ छिपा नहीं रह सकता और जानने पर वह दुष्ट उसे रहने न देगा तब मैं इन्हीं पुरोहित जी की सम्मति तथा सहायता से गढ़ी छोड़कर भागी और इसी गृह में आकर छिपकर रहने लगी। यहीं इसका जन्म हुआ। बस यही मेरी कथा है। अब जो तुम उचित समझो वही करो।'

'(ईषत् क्रोध तथा दर्प से) अवश्य, क्षत्रियोचित ही कार्य करूँगा। भाई का बदला भाई ही लेगा। प्रसिद्ध वीर सोमल्लदेव का दस पाँच डाकू कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे, अवश्य इसमें

कपटाचरण हुआ है। मुझे धोखा दिया गया। मैंने उस समय अपने असफल प्रेम तथा अनुभवहीनता से झूठ को सच मान लिया और अज्ञातवास करने चल दिया। पर भाभी, तुमने ऐसी करुणा-पूर्ण घटना हो जाने पर भी भैया के परम मित्र वारेंद्रनारायण सिंह को समाचार तक न दिया और न उनसे सहायता माँगी। वहीं मैं अब तक अज्ञातवास करता आ रहा हूँ। अवश्य ही पहिले कुछ वर्ष तक इधर-उधर मारा फिरा पर बाद को बराबर वहीं रहा।'

'तुम्हारे ही कारण वह अपने मित्र से रुष्ट हो गए तथा फिर कभी उनसे न मिले और न उन्हें ही आने दिया। इसी कारण मैंने भी उनसे सहायता लेना अनुचित समझा।'

'उसमें सामंत का दोष न था, वे महाराज की आज्ञा तथा अनुनय विनय का उल्लंघन न कर सके। अवश्य ही महाराज भी उससे अत्यंत प्रेम करते थे पर वह पारस्परिक न था, इसी से मुझे कष्ट हुआ। अस्तु, जो होनी थी वह हो रही। उसमें हम लोगों का किसी का वश नहीं था।'

'अच्छा, तुम कहाँ-कहाँ घूमे फिरे।'

'उसके विवाह हो जाने पर, जिसमें हम लोगों को निमंत्रण नहीं आया था और जिसे हम सब से छिपाकर किया गया था, तथा समाचार मिलने पर मुझे संसार अंधकारमय ज्ञात होने लगा। मुझे शंका हुई और धारणा सी बन गई कि भुवन का भी उस विवाह होने में सहयोग था क्योंकि वह राजरानी बन रही थी। भाई से मैंने कुछ नहीं कहा क्योंकि मैं जानता था कि उन्हें भी इस व्यवहार से कष्ट हुआ होगा। वह हम दोनों के प्रेम को जानते थे और उन्हें निश्चय था कि सामंत उनकी बात को प्रसन्नता से स्वीकार कर लेंगे। हम लोग को जल्दी करना न था पर एका-

एक यह समाचार सुन कर हम दोनों ही सन्न रह गए। अस्तु, मैं उस कष्ट को सहन न कर सका और गृहत्यागी हो गया। इसके बाद प्रायः डेढ़ दो वर्ष पर मैं गृह लौटा और यहाँ का समाचार पाकर संसार-विरक्त हो गया। (लज्जा के साथ) पर भाभी, मैं उसे भूल न सका और न वह मुझे। जो प्रेम बाल्यकाल से आरंभ होकर हम लोगों में पूर्णतया व्याप्त हो रहा था, वह नहीं भूला जा सकता। भेंट हुई उसी वीर गढ़ी में और उसके प्रति जो मेरी शंका थी वह दूर हो गई। मैंने अज्ञात रूप में वहीं रहना निश्चय किया क्योंकि वहीं उस प्रेम का मेरे हृदय में बीजवपन हुआ था। कालिंजर दुर्ग में भी मैंने एक अड्डा बना लिया और उसके पति, पुत्र, उसके राज्य तथा स्वदेश की सेवा का व्रत ले लिया। इससे कभी-कभी उसका दर्शन भी हो जाता था। महाराज की मृत्यु हो जाने पर उसका पुत्र गद्दी पर बैठा पर शीघ्र ही वह महाप्रयाण कर गया और तब वर्तमान महाराज बैठे। सामंत जी पर शंका हुई और वह वहाँ से त्रिपुरी चले गए। मैं भी उनके साथ गया पर उसकी रक्षा के लिए, क्योंकि वह एकाकिनी हो गई थी, पूरा प्रबंध कर रखा था। त्रिपुरी ही में गोपाल से परिचय हुआ।'

'शीघ्रता न करो, त्रिपुरी में यह कैसे पहुँचा और किस प्रकार परिचय हुआ।'

इस पर सबलसिंह ने विस्तार के साथ कुल वृत्तांत कालिंजर के विजय तक का कह डाला और किस प्रकार गोपाल के परिचय का पता लगाते हुए वह यहाँ पहुँचा, इन सब से अवगत करा दिया। माता अपने पुत्र की वीरता, साहस, परोपकार-व्रत आदि गुणों की कथा सुन कर अत्यंत आल्हादित हुई। उसने कहा—

'अब मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम्हारा सा देवर तथा ऐसा होनहार पुत्र पाकर मेरे सब दुःखों का अंत हो गया। अब तुम्हीं

लोग जो उचित समझो करो। मुझसे जो सम्मति माँगोगे वह जैसा ठीक समझूँगी बतला दिया करूँगी।'

'ठीक है, इस समय मुझे केवल दो बातों में तुमसे सम्मति लेनी है। (मुस्किराकर) पहिला यह कि तुमसी स्नेहमयी भाभी को पाकर हम और ऐसी पुत्रवत्सला माता को पाकर गोपाल दोनों ही शीघ्र यहाँ से लौटना चाहते हैं।'

'(हँस कर) तुम्हारी इन्हीं सब बातों को स्मरण कर तो मैं दुःखित हुआ करती थी। हाँ तुम लोग का शीघ्र जाना आवश्यक है, यह मैं समझती हूँ पर दो तीन दिन अवश्य ठहर सकते हो। हाँ, दूसरी बात क्या है?'

'यही कि तुम्हारे योग्य पुत्रवधू ढूँढ़ रखा है और दोनों एक दूसरे से प्रेम भी रखते हैं, यह भी अच्छी प्रकार जानता हूँ। इसमें क्या राय है?'

'धन्य हो, वही इरावती न, मैं समझ गई थी। अच्छा संबंध है, मुझे स्वीकार है। मेरी ही पुत्रवधू होगी, तुम्हारी क्या होगी?'

'पुत्री तथा पुत्रवधू दोनों। मैंने तो उसे गोद में लेकर और कंधे पर चढ़ाकर पाला है। मेरा सारा वात्सल्य स्नेह अब तक उसी का था पर उसमें अब इसने साझा कर लिया है, अच्छा ही है।'

'इसका तो पूरा स्वत्व ही है।'

'ठीक है भाभो। तो हम लोगों को कब जाने को कहती हो।'

'परसों तक जा सकते हो, आज कल नहीं।'

इसके अनंतर सबलसिंह आदि उठकर बाहर आए। बाग में टहलते हुए सबलसिंह ने गोपाल से कहा—

'अब इस प्रकार भाभी को अरक्षित अवस्था में रहने देना उचित नहीं है, इसलिए अपने अनुचरों में से दस यहाँ तैनात कर देना चाहिए। दो तीन दासी तथा मालियों का भी प्रबंध

करना होगा तथा सब के खाने पीने योग्य सामान लाने ले जाने के लिए एक नाव तथा दो मल्लाहों को भी नियत करना होगा। एक उत्तरदायित्व समझनेवाला ऐसा कर्मचारी भी रखना होगा, जो सब प्रबंध देख सके क्योंकि वृद्ध पुरोहित जी को अब अधिक कष्ट देना उचित नहीं है।'

'ठीक है, पर अब मुझ से पूछते क्यों हैं, जो आज्ञा दीजिए करने को तैयार हूँ।'

'प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्' जानते न हो इसी से पूछता हूँ। प्रबंध तो मैं करूँगा ही, मेरे रहते तुम्हें कोई चिंता न करनी होगी।'

उनविंश परिच्छेद

उक्त घटना के प्रायः एक सप्ताह बाद सबलसिंह तथा गोपाल वीरगढ़ी के पास के जंगल में प्रायः दोपहर को पहुँचे थे कि सबलसिंह का एक चर मिला, जिसने सूचना दी कि त्रिपुरी से समाचार मिला है कि वहाँ युद्ध की तैयारी विशेष पर गुप्त रूप से की जा रही है और अभी यह ठीक नहीं पता लग रहा है कि किस ओर आक्रमण होगा। यह संभावना की जा रही है कि कालिंजर ही पर चढ़ाई होगी पर सेना का पड़ाव त्रिपुरी के पश्चिम ओर पड़ा हुआ है। यह समाचार पाकर भी सबलसिंह शांति के साथ वीरगढ़ी की ओर चलते हुए। गोपाल ने पूछा—

'यह नहीं ज्ञात हुआ कि महाराज कर्णदेव दक्षिण के विद्रोह को शांत कर चुके या नहीं। हो सकता है कि साथ ही इधर भी चढ़ाई करने का प्रबंध किया हो।'

'यदि शांत न हुआ होगा, तब भी उसकी शक्ति टूट गई होगी और तभी उन्होंने अन्यत्र सेना भेजने का प्रबंध किया है। बिना सामंत से मिले उधर पता लेने के लिए जाना उचित नहीं समझता पर शीघ्र ही एक बार वहाँ जाना अत्यंत आवश्यक है।'

'आप किसी कुशल चर को भेज दें, अब इस प्रकार अकेले शत्रु के राज्य में जाना उचित नहीं ज्ञात होता।'

'(मुस्किरा कर) क्यों, अब तुम्हें हमारी चिंता लग गई। सामंतजी से तुम्हें सकुशल लिवा लाने का वचन दे चुका हूँ, इसीलिए गढ़ी पर चल रहा हूँ नहीं तो इसी ओर से वहाँ समाचार

भेज कर त्रिपुरी चल देता। कल तो चला जाऊँगा ही आज विवश होकर एक रात्रि आलस्य में काटना होगा।'

इसी बीच भील सरदार कई भीलों के साथ किसी कार्य से लौटते हुए इन लोगों को मिला। सभी एक दूसरे को बहुत दिनों के बाद देख कर अत्यंत प्रसन्नता से मिले तथा कुशल मंगल पूछने के बाद सबलसिंह ने गढ़ी के लोगों का भी कुशल-प्रश्न किया। भील सरदार ने कहा 'सब कोई प्रसन्न हैं। इधर सामंतजी ने महाराज के साथ राज्य भर में दौरा किया है और सभी सामंत तथा सरदारों को अपनी अपनी सेनाएँ हर प्रकार से सुसज्जित रखने को आदेश दिया है। कालिंजर दुर्ग में भी युद्धीय सामान इधर बराबर संचय किया गया है और त्रिपुरी से आने वाले मार्ग पर वन में कई सैनिक थाने भी नियत किए गए हैं। उनके साथ साथ हर थाने पर भील गण भी रखे गए हैं, जिसमें वन में उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।'

'तब तो सभी थानों का वृत्तांत तुम्हें ज्ञात होगा।'

'जी हाँ, हमारे सभी मनुष्य हर एक स्थान को जानते हैं।'

'कुछ जानते हो कि यह सब तैयारी क्यों की जा रही है? क्या त्रिपुरी की ओर से चढ़ाई होने का कुछ समाचार मिला है?'

'जी हाँ, कुछ ऐसी ही बात है। यह पता चला है कि त्रिपुरी में युद्ध की तैयारी हो रही है और इस वृत्त को जान कर ही सामंत जी कालिंजर गए थे तथा महाराज से मिल कर यह दौरा किया था। घोषणा यही की गई थी कि प्रजा की दशा जानने के लिए महाराज स्वयं निरीक्षण करते हुए राज्य में भ्रमण करेंगे। यह सब मुझे उसीसे मालूम हुआ था और वह कुमारी जी से सुन आई थी।'

'ठीक है, क्यों गोपाल, यदि हम इसी ओर से त्रिपुरी को

चले जायँ तो क्या हर्ज है ? अब तो हम लोग सामंतजी ही की सीमा में आ गए हैं। इधर से जाने में एक दिन की बचत हो जाती है और युद्धकाल में एक दिन का बहुत मूल्य है। उधर का पूरा पता लेकर शीघ्र लौटने से अनेक लाभ हो सकते हैं।'

'उचित है पर आप इन सैनिकों को साथ लिवाते जायँ।'

'अवश्य, पर सबको लिवा जाना ठीक न होगा। कुछ तुम्हारे साथ रहेंगे और कुछ हमारे साथ।'

'आधे तो यों ही रह गए हैं, उनमें भी बाँट दीजिएगा तो आपके साथ कितने सैनिक रह जाएँगे और आपको शत्रु के देश में जाना है। हम तो अपने ही देश में हैं और हमारे साथ (भीलों की ओर इंगित कर) तो इतने सैनिक आप ही हैं।'

'(मुस्किरा कर) ठीक कहते हो। अच्छी बात है तो हम जाते हैं पर तुम भी शीघ्र गढ़ी पर चले जाना। (भील सरदार से) गोपाल को गढ़ी पर पहुँचा देना।'

'(उसी प्रकार मुस्किराता हुआ) चिंता न करें मैं शीघ्र ही गढ़ी पर चला जाऊँगा पर एक प्रार्थना है कि (धीरे से) अभी वह रहस्य युद्ध के पहिले किसी से न कहें।'

'नहीं, अभी अवसर नहीं है क्योंकि अभी तो पूरा भेद खुल भी नहीं पाया है। लौटने पर इस विषय में बात करेंगे।'

सबलसिंह अपने कुल सैनिकों तथा एक भील को साथ लेकर चले गए और गोपाल भीलों के साथ गढ़ी की ओर रवाना हुए। कुछ दूर आगे बढ़ने पर गोपाल घोड़े पर से उतर पड़े और उसे एक भील को सौंप दिया। स्वयं उस सरदार के साथ साथ बात करते हुए चलने लगे। ये दोनों भीलों की टोली से कुछ दूर पर चल रहे थे। गोपाल ने पूछा—

'क्यों अनंत, सोमी गढ़ी में बराबर आती जाती है ?'

'जी हाँ, बराबर। प्रायः आधे दिनों तक वह वहीं रही।'

'क्या तुम्हें इससे कुछ कष्ट तो नहीं होता? कुमारी इरा का उस पर स्नेह बहुत बढ़ गया है और सोमी भी उन्हें बहुत चाहती है, इसी से दोनों को साथ रहने में आनंद आता है।'

'यह तो मैं भी अच्छी तरह जान गया हूँ। कुमारीजी का स्वभाव ही ऐसा है। (लज्जा तथा संकोच से) मुझे कष्ट कैसा? वह बराबर कुमारीजी की प्रशंसा किया करती है और आपकी भी।'

'(मुस्किरा कर) तब तो तुम मुझसे ईर्ष्या भी करने लगे होगे, क्यों?'

'नहीं, नहीं, यह क्या आप कहते हैं? आपकी प्रशंसा तो सभी करते हैं, छोटे बड़े, स्त्री पुरुष सभी।'

'हो सकता है पर यदि सोमी मेरी प्रशंसा करती है और तुम से तब उसका मूल्य और है। वह तो इरा का पक्ष लेकर मुझसे लड़ने को तैयार हो जाती है। देखो उससे कहना मत।'

'वह बड़ी दुष्टा है, उसे आपसे लड़ने-झगड़ने का क्या अधिकार है। मना तो कर ही दूँगा कि ऐसा न किया करे।'

'नहीं अनंत, यह बात नहीं है। इरा के स्नेह के कारण ही वह ऐसा करती है और उससे मुझे आनंद ही मिलता है। तुम-से वह मेरी प्रशंसा करती थी इससे हमारी ही बात ठीक है। वह हृदय से मेरा आदर ही करती है।'

'जैसी आज्ञा, पर वह गढ़ी में जाने के लिए विशेष उत्सुक रहती है। संदेश आया कि बस चल देती है। झोपड़ी से महल में रहना सभी को अधिक रुचिकर होता है।'

'तुम भूलते हो अनंत, सोमी इस ओछे विचार की स्त्री नहीं है। पहिली बात तो यह है कि तुम्हारी बस्ती में उसकी-सी

परिष्कृत विचारों वाली समवयस्का कोई भी नहीं है, जिससे उसका मन लगे और वहाँ इरा के साथ बातचीत करने तथा खेलकूद में दोनों का मन लगता है। वह भी अभी वहाँ अकेली है, रामेंद्र का विवाह हुआ नहीं है इसलिए इसे आने को वाध्य करती होगी। स्नेह दोनों में हो गया है और यही आकर्षण है। आज वह यहीं है या गढ़ी में।'

'नहीं आज तो यहीं है।'

'तब आज तो मैं अवश्य लिवा जाऊँगा। आवश्यक कार्य है।'

'जैसी इच्छा, मुझसे इसमें पूछना कैसा ?'

'क्यों, रुष्ट हो गए। तुम्हारी स्त्री है, तुमसे न पूछें तब किससे पूछें।'

'जी, मुझसे पूछ कर मेरी ही स्त्री को लिवा जायँगे। क्यों नहीं, आपकी निराली बातें हैं।'

'(हँस कर) तुम तो हँसी करने लगे। भई, बात यह है कि इतने दिनों पर आने पर कुमारी इरा से मिलने की उत्कट इच्छा हो रही है और कुछ रहस्य की बातों का पता लगा है, जिसे कहना भी आवश्यक है। यह सब किसी दूसरे को बतलाना नहीं चाहता इसलिए यदि सोमी वहाँ रहेगी तो सब प्रबंध कर लेगी। इसी लिए कहता था, समझे।'

'अच्छी तरह से। पर क्या वह यह सब बातें जानती है।'

'जी हाँ, पर उससे पूछिएगा मत। वह हम लोगों की अंतरंग सखी है। लो, तुम्हारी बस्ती तो आ गई।'

'कुछ आतिथ्य स्वीकार करने की कृपा करें तो अति उत्तम है।'

'इस समय रहने दो तो अच्छा है, क्योंकि संध्या होती आ रही है और अभी गढ़ी तक जाना है।'

'जी हाँ और आतिथ्य-स्वीकार करने में कुछ समय व्यर्थ ही बीत जाएगा। (मुस्किराता हुआ) मन तो और जगह लगा है।'

'(मुस्किरा कर) समझ गए।'

ये लोग बस्ती के बड़े झोपड़े के पास पहुँचे ही थे कि दो तीन स्त्रियाँ उसमें से निकलीं। अनंत ने उनमें से एक से पूछा कि 'सोमी कहाँ है ?'

'कुछ ही देर हुए कि वह उस जलाशय की ओर गई हैं। स्यात् उधर ही से गढ़ी को जाने का विचार है। एक सवार संदेश लेकर आया था।'

'तो अनंत हम चलते हैं, यदि मार्ग में मिल गई तो लिवाते जाएँगे और यदि वहाँ पहुँच गई होगी तब भी हमारा काम निकल जाएगा।'

'जैसी इच्छा, पर ठाकुर जी की आज्ञा थी कि आपको गढ़ी पर पहुँचा दूँ।'

'(हँसकर) तुम भी क्या बातें कर रहे हो, क्या मार्ग भूल जाऊँगा, वही न गढ़ी है। हाँ, किसी और विचार से कहते हो, तो तुम भी आओ, हम लोगों को पहुँचा देना।'

'(मुस्किराता हुआ) जी नहीं, वैसा विचार और आपके तथा उसके प्रति, कभी मेरे हृदय में आ ही नहीं सकता। यह कहकर आप मेरे साथ अन्याय करते हैं।'

'ठीक कहा तुमने, हमने भी विनोद ही में कहा है। अच्छा, चलते हैं।'

यह कहकर गोपाल घोड़े पर सवार हो गए और उसी जलाशय की ओर चले। जलाशय के प्रायः पास पहुँचने पर इन्होंने घोड़े को धीमा किया और उस पर से उतर पड़े। टहलते हुए वह सोमी की आहट ले रहे थे कि कुछ दूर से गाने का सा शब्द

आने लगा। यह कुछ आगे बढ़े तो गाना स्पष्ट होने लगा। इन्होंने तुरंत समझ लिया कि वह सोमी ही है और इरा के एक प्रिय गान को दुहरा रही है। सोमी भी इरा के साथ रहकर गायन सीख रही है, यह इन्हें आज मालूम हुआ, इसलिये इन्होंने घोड़े को एक वृक्ष से बाँध दिया और उसी ओर पैर दबाते हुए चले। सोमी एक चट्टान पर बैठी पैर से जल हिलाती हुई धीरे धीरे गा रही थी। उसने कई कमल तोड़कर अपने पास चट्टान पर रख लिए थे तथा एक हाथ में लिए सुगंध भी ले रही थी। यद्यपि सोमी का रंग श्यामता लिए हुए था पर उसका सुगठित शरीर, आकर्षक सौंदर्य तथा यौवन का चांचल्य ऐसी स्थिति में किसके मन को बरबस नहीं खींच लेता। गोपाल मंत्रमुग्ध के समान देखते तथा सुनते रहे और जब गाना समाप्त हुआ तब उन्होंने आगे बढ़कर कहा—

'सोमी, एकांत में आज किस भाग्यवान का स्मरण कर रही हो।'

सोमी चिहुँक कर तथा गोपाल को देख फुर्ती से उठ खड़ी हुई और इठलाती हुई गोपाल के पास आकर बोली—

'जो यहाँ नहीं था, उसीका स्मरण कर रही थी।

'तब तो हमारा ही दोष है, अनंत तो आ रहा था पर हमीं ने रोक कर कह दिया था कि सोमी को आज हम लिवा जाएँगे। बुला लाऊँ।'

'ठीक है, मैं फालतू न हूँ, जिसने माँगा, उसीको दे दिया। तब बुलाने की क्या आवश्यकता है, अब आप तो हैं न। मैं भी उन्हें नहीं स्मरण कर रही थी प्रत्युत् उन महापुरुष को स्मरण कर रही थी, जो महीनों से यात्रा का आनंद ले रहे थे और अपनी प्रेयसी को भूल रहे थे।'

'(दृढ़ता से) नहीं सोमी, ऐसा होना संभव नहीं। इस वज्र सी कठोर छाती के भीतर जिसका प्रेम सुरक्षित हो चुका है, वह तब तक भूला नहीं जा सकता जब तक यह नष्ट भ्रष्ट न हो जाय। उस पर तुम्हारी सी रक्षिका भी जो हर समय उस पर दृष्टि रखे हुए है।'

'क्षमा कीजिएगा, मेरा तात्पर्य यह न था कि आप कुमारी को भूल जाएँगे पर आपने इतने दिन बिता दिए, न कुछ समाचार भेजा और यह भी अब तक न बतलाया कि आप अपने जन्म के रहस्य को समझने में कहाँ तक सफल हुए।'

'वाह, अरे अभी तो तुमसे भेंट हुई है, तुम्हीं को पहिले इतने दिनों के बाद देखकर इतना मन प्रसन्न हो गया था कि तुम्हारे छेड़ने पर इरा की ओर ध्यान गया। पहिले हमने तुम्हारा गाना सुना तब तुम्हारी मीठी बातें सुनीं और अब मधुर व्यंग्य भी सुन लिया। अब यदि चाहो तो कुछ दंड भी दो कि क्यों इतनी देर की।'

'आप तो रुष्ट हो गए, मैं तो आप दोनों की दासी हूँ। अब कुछ नहीं कहूँगी।'

'नहीं नहीं सोमी, तुम-सी निष्काम स्नेह रखनेवाली सखी पर ऐसा कौन अभागा है, जो क्रुद्ध होगा। तुम अपने को जो चाहो समझो पर मैं तो तुम्हें इरा की बहिन के समान मानता हूँ और इसीसे तुमसे हँसी विनोद करने का अपना स्वत्व समझता हूँ। तुम्हारा हम दोनों पर कितना स्नेह हो गया है, इसे हम लोग अच्छी प्रकार समझ गए हैं।'

'कुमारी जी इस गाने को प्रायः गाती रहती हैं, इसीसे मैंने भी याद कर लिया है।'

'बात बदलने में तुम बड़ी कुशल हो। अच्छा, तुम्हारी सखी कुशल मंगल से हैं।'

'हाँ, यों तो सब ठीक है पर आपके चले जाने के कारण उनका मन मुर्झाया सा रहता है। क्या करूँ, बराबर साथ रह नहीं सकती, जिससे मन बहलाती रहूँ।

'अच्छा, आओ चलें। मार्ग में बातचीत करते चलेंगे तथा जो कुछ अब तक अवगत हो चुका है, वह भी बतलावेंगे।'

यह कहकर गोपाल ने वृक्ष से घोड़े को खोल लिया और पैदल ही सोमी के साथ गढ़ी की ओर चल दिए। मार्ग में इन्होंने कुल वृत्तांत कह डाला और यह भी कह दिया कि वह यह वृत्त अभी किसीसे न कहे और इरा से वह स्वयं कह लेगा। अब ये दोनों बात समाप्त होते-होते गढ़ी पर पहुँच गए और सोमी अंतःपुर में चली गई। गोपाल पहिले अपने स्थान पर गए और आवश्यक नित्यकर्म से निपट कर सामंतजी से मिलने जा रहे थे कि रामेंद्र इनके आने का समाचार पाकर वहीं आ पहुँचे। दोनों मित्र बड़े आग्रह से मिले और एक दूसरे से कुशल मंगल पूछ लेने पर रामेंद्र ने प्रश्न किया—

'अब यह तो बतलाओ कि तुम्हारे जन्म के रहस्य के संबंध में क्या पता लगा? कुछ ठीक ज्ञात हो सका या नहीं।'

'नहीं, अभी स्पष्टतः कुल रहस्य नहीं ज्ञात हो सका है, कुछ बातें ज्ञात हुई हैं, कुछ का पता लगाना है। सबलसिंह ने यह कार्य अपने हाथ में लिया है और उनका कथन है कि जब तक पूर्णरूप से शंका न मिट जाय कुछ अधूरी बातें कहना, सफलता में बाधक-मात्र होता है। उनके आने पर पूरा वृत्तांत ज्ञात हो सकेगा।'

'वह चले कहाँ गए?'

'चलिए, आपके पिताजी के सामने ही यह सब वृत्त बतला-ऊँगा, नहीं तो दो बार कहना पड़ेगा।'

यह कहकर गोपाल तथा रामेंद्र दोनों सामंतजी के एकांत कमरे में गए। वह बैठे हुए कोई ग्रंथ देख रहे थे। गोपाल ने अभिवादन किया और वह इसको देखकर अत्यंत प्रसन्न हो बोले—

'गोपाल, आओ आओ, कब आए, बैठो, कुशल से रहे।'

'अभी ही चला आ रहा हूँ। आपकी कृपा से सदा कुशल ही है। यहाँ के कुशल मंगल का समाचार तो बराबर सबलसिंह से मिलता रहता था।'

'सबलसिंह कहाँ हैं, अभी मिलने तक न आए।'

'वह तो मार्ग ही से त्रिपुरी चले गए और कह गए हैं कि उधर का ठीक-ठीक पूरा पता लेकर हम शीघ्र आवेंगे।'

'सबलसिंह भी विचित्र पुरुष हैं, काम सामने रहते हुए एक क्षण के लिए भी रुकना उन्हें स्यात् कष्टकर ज्ञात होता है। अपने उत्तरदायित्व को इस रूप में सदा समझते रहना विरले ही पुरुषों में दिखलाई पड़ता है। कीर्तिवम , म लोगों को राज्य के पुनरुद्धार का श्रेय देते हैं पर वास्तव में इसका सारा श्रेय सबलसिंह ही को मिलना चाहिए।'

'ऐसा ही है पर महाराज भी कुल बातों से अवगत न होने के कारण ही उनका नाम नहीं लेते।'

'अच्छा, तुम्हारे विषय में क्या ज्ञात हुआ, यह भी बतलाओ।'

'मैं तो यथाशक्ति तथा आदेशानुसार जो सहायता दे सकता था देता रहा पर वास्तव में सबलसिंह ने ही धारा में बड़ी खोज की, गृह पर सारा सामान ढूँढ़ डाला तथा गाँव देहात एक कर दिया। दो एक दिन के सिवा सुस्ताने का अवसर तक न दिया। मैं तो सब समझ भी न सका पर वही कहते थे कि थोड़ी सी

और जाँच रह गई है, जिससे कुल बातें स्पष्ट हो जाएँगी। इस युद्ध से निवृत्त होने पर इसके लिए प्रयत्न करने को कहा है।'

'यह तो निश्चय हुआ या नहीं कि तुम ज्योतिषीजी के दत्तक पुत्र हो।'

'हाँ एक प्रकार यह निश्चय हो गया कि मैं उनका पोष्य पुत्र हूँ।'

'तब तुम अवश्य क्षत्रिय हो, इसमें शंका नहीं है।'

'इस युद्ध के विषय में क्या निश्चय हुआ है ?'

'निश्चय क्या, अपनी ओर से पूर्णतया सतर्क तथा युद्ध के लिए सन्नद्ध रहना ही निश्चय किया गया है। इसीलिए राज्य भर में एक बार दौरा भी किया गया है और स्थान-स्थान की सेना का निरीक्षण कर उनकी त्रुटियों तथा अभावों को दूर करने की पूरी चेष्टा की गई है। हमारी सेना किसी भी समय युद्ध करने के लिए तैयार है। आशा भी है कि महाराज कर्णदेव शीघ्र ही कालिंजर पर आक्रमण करेंगे।'

'इसका भी पता जल्दी ही लग जायगा।'

'ठीक है पर अब तुम अपनी सेना की देखभाल में लग जाओ। न जाने किस समय आवश्यकता पड़ जाय।'

'जैसी आज्ञा।'

यह कहकर तथा आज्ञा लेकर गोपाल वहाँ से चल दिए और संध्या हो चली थी इसलिए वायु-सेवन के बहाने वह उसी अंतःपुर के बाग में घूमने-फिरने पहुँचे। यह घूमते-फिरते हुए एक कुंज के पास पहुँच कर रुके ही थे कि इन्हें सामने महल की ओर से सोमी इरा को लिवाकर आती हुई दिखलाई दी। दोनों ही अत्यंत प्रसन्न ज्ञात हो रही थीं। गोपाल शीघ्रता से उसी ओर बढ़े और इनके पास पहुँचते ही इरावती ने आनंदाश्रुपूर्ण विशाल नेत्रों से इन्हें एक बार आपादमस्तक देखकर हाथ जोड़ प्रणाम किया।

गोपाल ने उत्साह के साथ उसके दोनों हाथ पकड़कर अलग कर दिए और उसकी ओर एकटक देखते हुए कहा—

'इरा, तुम्हारे ही शुद्ध प्रेम की अग्नि में तपकर तुम्हारा प्रेमपात्र अब तुम्हारे योग्य हो सका है और उसे पूर्ण आशा है कि अब वह तुम्हारे पिता से तुम्हें माँगने में सफल हो सकेगा।'

'यह तो आप प्रेम की उलटी धारा बहा रहे हैं।'

सोमी ने टोक कर मुस्किराते हुए कहा—'ठीक कह रहे हैं। दो उल्टी धाराएँ ही बहकर मिलेंगी और तब एक होकर आगे बढ़ेंगी।'

'बड़ी पक्ष लेनेवाली बनी है, क्यों न कहेगी।'

'नहीं इरा, यह अपना अनुभव बतला रही है, इसकी तथा अनंत की प्रेम-धाराएँ सम्मिलित रूप में अब बह रही हैं। क्यों सोमी ठीक न है ?'

'जाइए, आप तो मेरी हँसी लेने लगे। ये सब बड़ी बातें बड़े लोगों को शोभा देती हैं। हम दास-दासियों को प्रेम ब्रेम से क्या मतलब ?'

'सच बतला सोमी, तू अनंत से प्रेम करती है न ?'

'कौन जाने यह सब प्रपंच, संसार चल रहा है, मैं भी साथ-साथ हूँ।'

'नहीं नहीं, ठीक बतलाओ न।'

'(हँसती हुई) अब आप दोनों एकांत चाहते हैं। इसीसे ऐसी बातें पूछ-पूछ कर मुझे भगाने का प्रयत्न हो रहा है। अच्छा तो अब आज्ञा है।'

'कभी नहीं, पहिले मेरे प्रश्न का उत्तर दे। जब तक उत्तर न दे लेगी तब तक यहाँ से जाने ही न दूँगी।'

'हम दोनों में प्रेम उत्पन्न होने के पहिले ही विवाह हो गया

था, इससे प्रेम का प्रश्न कभी उठा ही नहीं। अब उसकी आवश्यकता ही क्या, हो या न हो, विवाह-बंधन तो मान्य ही है।'

'इससे तो कुछ और ध्वनि निकल रही है, सोमी। क्या तू नहीं प्रेम करती या अनंत तुझसे प्रेम नहीं करता।'

'आपने यह अच्छा झगड़ा निकाला। यह कितनी दूर से ऐसा आनंदपूर्ण समाचार लेकर आए हैं, उनका तो कुछ आदर नहीं करतीं बस मेरे पीछे पड़ गईं।'

'हाँ, अवश्य, बतला तू किसे चाहती है?'

'(हँसती हुई) इन्हींको चाहती हूँ, दोगी।'

'चल, तू जाने या ये जानें। मैं कौन देनेवाली? न बतलावेगी तो न सही।'

'नहीं इरा, यह मेरे सामने न बतलावेगी। स्त्री अपना हृदय अन्य पुरुषों के सामने नहीं खोलती।'

'जी क्यों न कहिएगा, पर देखिए न, कुमारीजी ने कैसा कोरा उत्तर दे दिया। हम आप जानें तो इनका क्या निहोरा?'

'अच्छा तो मैं देने को तैयार हूँ, स्वीकार करोगी?'

'देवी, मैं तो आप दोनों की दासी हूँ, आप लोगों की कृपा इतनी है कि मैं उसीसे उऋण न हो सकूँगी, इससे अधिक और क्या चाहिए। पर अब चलने का समय हो रहा है अँधेरा हो चला।'

'सोमी, तुझे हम लोग कभी दूसरा समझ ही न सकेंगी, कृपा कैसी, तू हमारी सखी है।'

'अब अपने सर्वस्व से रात्रि भर के लिए विदा तो लीजिए।'

इसके अनंतर गोपाल ने सारा वृत्तांत यथातथ्य इरा से संक्षेप में कह दिया तब वह सोमी के साथ महल में चली गई और गोपाल भी बाग से निकल अपने कमरे की ओर चले गए।

विंश परिच्छेद

उक्त घटना को प्राय: एक सप्ताह हो गया। यद्यपि सबलसिंह अब तक नहीं लौटे थे पर गोपाल अपनी सेना के सुसज्जित करने में बराबर व्यस्त रहे। एक एक सैनिक की शिक्षा तथा त्रुटियों पर दृष्टि रखी और उनके अभावों की यथासाध्य पूर्ति करते रहे। गढ़ी में सामान भरवाने तथा उसको घेरे के लिए दृढ़ करने का भार रामेंद्र को मिला था पर उस पर भी इनकी दृष्टि रहती थी क्योंकि सामंतजी राजकीय सेना के प्रबंध में लगे हुए थे। धनुर्धारी भील सेना का प्रबंध सहकारी अनंत को सौंप रखा था पर उसे भी देखने को नित्य जाते थे। प्रत्येक भील के धनुष, तूणीर तथा शिक्षा की जाँच कर ली थी और उनकी भी टुकड़ियाँ बना कर उन्हीं में से नायक नियत किए थे। अनंत भी बराबर पूछताछ के लिए गढ़ी पर आता जाता था। एक दिन उसने गोपाल से एकांत में कहा—'सोमी ने आपसे मिलने को कहा है पर यहाँ नहीं, उसी जलाशय के पास।'

'कुछ कहती थी कि किसलिए ? आवश्यक कार्य होगा तभी कहलाया है।'

'वह चिंतित सी है पर ऊपर से कुछ लक्षित नहीं होने देती।'

'कुछ पूछताछ नहीं किया।'

'जो बात केवल आपसे कहने योग्य होगी, वह मुझसे क्यों कहने लगी। आप लोग ही जान सकते हैं।'

'(मुस्किरा कर) फिर वह डरी। पर चिंता की क्या बात है, वह इधर गढ़ी पर कई दिनों से आई ही नहीं।'

'स्यात् यही चिंता हो, पर आने में कोई रुकावट तो न थी।'

'यह तो तुमने एक आशंका की बात सुनाई। कब मिलने को कहा है?'

'(मुस्किरा कर) आज ही, इसी समय और वही संकेत-स्थान। मैं तो विट हो रहा हूँ।'

'इसके लिए कुछ पुरस्कार लोगे।'

'पुरस्कार तो उसी ओर से मिल जाता है।'

'(हँसकर) तुम्हें हर समय विनोद सूझता है। अच्छा चलो, आज्ञा माननी ही पड़ेगी, कई दिन मिले हो भी गए।'

इसके अनंतर गोपाल गढ़ी से उतर कर घोड़े पर सवार हो उसी जलाशय की ओर चल दिए और अनंत नदी पार हो कर उनसे छुट्टी ले अपनी बस्ती की ओर चल दिया। गोपाल ने जलाशय के पास पहुँच कर घोड़े को एक वृक्ष से बाँध दिया और उसी स्थान पर गया, जहाँ सोमी पहिले मिली थी। गोपाल ने देखा कि उस दिन की चंचला जलबालिका सी सोमी आज प्रस्तर निर्मित सुंदर मूर्ति सी एक हाथ पर सिर रखे हुए चिंतामग्न बैठी हुई है। कमलों के बदले उसके बगल में एक अति सुंदर दृढ़ धनुष तथा तीरों से भरा तरकश रखा हुआ है। वह इतनी सोच में पड़ी हुई थी कि उसे गोपाल के पास पहुँच जाने तक की आहट न मिली। गोपाल ने कहा कि 'सोम, क्या सोच रही हो, किसकी चिंता कर रही हो?'

सोमी चौंकी पर शब्द सुन कर घूम पड़ी और गोपाल की ओर देख कर उठ खड़ी हुई। उसने तरकस तथा धनुष उठा लिया और मुस्किरा कर बोली—'आजकल आप ही की चिंता मुझे सताए रहती है, और कौन है?'

'ऐसा, तो मैं सदा आज्ञा मानने को तैयार हूँ देखो न आज्ञा

मिलते ही दौड़ा आया पर सोम, यह युद्ध का सामान कैसा ? तुम्हें इसकी क्या आवश्यकता है' ?

'जी हाँ, मैं कुमारीजी की तरह तीर चलाने में निपुण नहीं न हूँ।

'नहीं, तुम लोगों का तीर कमान तो देखो, यह हर समय साथ रहता है।'

'रहे, रहने दीजिए, इस समय केवल विनोदार्थ नहीं बुलाया है, विशेष काम है। (धीरे से) पर यहाँ वह न हो सकेगा, खुलती जगह है, आइए यहाँ पास ही एक अत्यंत एकांत स्थल है।'

यह कह कर वह किनारे किनारे ही आगे बढ़ी और गोपाल भी उसके पीछे पीछे हो लिए। वह सोमी की बातचीत के फेर में पड़े थे कि इसका क्या तात्पर्य है और कौन सा काम है कि जिससे यह इतनी चिंतित है। उनका लक्ष्य उसी की गति पर था जो इधर उधर सतर्कता से देखती हुई अग्रसर हो रही थी। ये लोग पाँच मिनिट में ऐसे स्थान पर पहुँच गए, जहाँ तट एकदम ऊँचे टीले के समान हो जाने से आगे जाने योग्य न रह गया था पर सोमी और नीचे उतर एक चट्टान के सहारे उस टीले सी दीवाल के उस पार चली गई। गोपाल भी उसी प्रकार उस ओर जब पहुँचे तो उस स्थान को देखकर चकित हो गए। यहाँ वह ऊँचा टीला बीच में प्रायः पचीस तीस फुट घेरे की समतल भूमि छोड़ कर उसको तीनों ओर से घेरे हुए था और उसमें से झरने सी एक पतली धारा गिरती हुई तालाब में जा रही थी। उसीमें लगे हुए वृक्षों तथा पौधों की गुंजान शाखाएँ लटक कर सामने की ओर परदे का काम दे रही थीं। ऐसी रम्यस्थली देख कर गोपाल सोमी की ओर घूमे और तब तक उसने एक चट्टान साफ कर इनकी ओर देखा। गोपाल की आश्चर्य मुद्रा देखकर वह हँस पड़ी और इन्हें उसी चट्टान पर बैठने का संकेत कर बोली—'मुझे आप से भय हो सकता है,

आप को मुझ से नहीं। आप सबल पुरुष हैं, मैं अबला हूँ। अब पहिली प्रार्थना यह है कि मैं जो भेट दूँ उसे आप सहर्ष स्वीकार करें। कहिए, स्वीकार कीजिएगा ?'

'सोम, तुम पर मेरा इतना विश्वास है कि तुम जो कुछ कहोगी वह मुझे सब स्वीकार है, शंका क्यों किया करती हो।'

'तो यह धनुष और तूणीर सदा अपने पास मेरे चिह्न स्वरूप रखिएगा और जो रहस्य अभी कह रही हूँ उसके निपटने तक इसे अन्य शस्त्रों के साथ बराबर लगाए रहिएगा। इसे मेरे पिता को किसी नरेश ने पुरस्कार में दिया था और पिता ने मुझे दिया कि जिसे (रुकती हुई सी) तू चाहे, योग्य पात्र समझे, दे देना।'

यह कह कर उसने वह धनुष और तूणीर गोपाल को दे दिया और उसी के पास बैठ गई। गोपाल ने आग्रह के साथ उन्हें लेकर तूणीर अपने शरीर पर लगा लिया और धनुष को कुछ देर देख कर अपने पास ही रख लिया। सोमी धीमी आवाज तथा गंभीरता के साथ कहने लगी—'आपने अपने जीवन के जिस रहस्य की कथा मुझसे कही थी, उसीके संबंध की कुछ बातें मैंने भी सुनी हैं और वह कम से कम मेरे लिए अत्यंत भयप्रद है। मैं कल यहाँ से तीन कोस पर एक संबंधी के यहाँ गई हुई थी और संध्या को लौटते समय मैने मार्ग में कहीं से फुसफुसाहट की आवाज सुनी। मैं चल तो देती पर एक नाम, आपका नाम सुन कर, वह भी ऐसे घोर वन में और इस प्रकार फुसफुसाहट में सुन कर स्तंभित हो गई और शीघ्र ही वृक्षों का आड़ लेती हुई वहाँ पहुँच गई जहाँ से शब्द आ रहा था। मैं केवल इतना सुन पाई—'युद्धकाल में अवसर मिले या न मिले, वह राजसम्मानित प्रसिद्ध सेनानी हो गया है और वहाँ उसका घात करने में हम दोनों का प्राण लेकर बच निकलना असंभव है तब पुरस्कार कौन

लेगा, जिसके लोभ से हम यह कार्य करने जा रहे हैं। वह उस वन में भीलों के यहाँ प्रबंध देखने आता रहता है और यदि वहाँ अवसर खोज कर उसे आड़ से तीरों का निशाना बना लिया जाय तो काम भी हो जाय और पुरस्कार भी ले सकें।' दूसरे ने कहा कि 'ठीक कहते हो, जान खो कर कोई कार्य करना उचित नहीं। यों तो आधा पुरस्कार मिल ही चुका है पर भई बात क्या है, देश के परम मित्र तथा आशा ऐसे युवक वीर को मारने से अपने ठाकुर का क्या लाभ है ?' पहिले ने कहा कि 'तुम नहीं जानते, इनके पिता को मरवा कर ही यह गढ़ी के स्वामी बने थे और अब यह उनके मार्ग का कंटक हो रहा है। इसे दूर करना उनका धर्म हो रहा है। चलो, उसी नदी के पास कहीं अड्डा ठीक किया जाय।' इतना सुनकर मैं द्रुत गति से अपनी बस्ती की ओर भागी। प्रायः नौ बजे रात्रि को पहुँची और कुसमय समझ चुप रही। सुबह होते ही उन्हें आपके पास भेजा। स्वयं आती तो कुमारीजी से कहना पड़ता और उन्हें चिंता में डालना उचित नहीं समझा।'

'तुमने बहुत ठीक किया और ये घातक कहाँ से आए हैं यह भी तुमने ठीक समझ लिया है। (मुस्किरा कर) भय मत करो, यह सैनिक-शरीर दो चार तीरों से नष्ट होनेवाला नहीं है और न दो चार घातक इसका कुछ बिगाड़ सकते हैं। इसमें पूरी सेना से अकेले द्वंद्वयुद्ध करने का साहस है। अच्छा अब दूसरी प्रार्थना क्या है सो बतलाओ। ऐसी सुंदर संकेतस्थली क्या डराने ही के लिए है।'

'मैंने तो पहिले ही समझ रखा था कि आप मेरी बातों की हँसी उड़ावेंगे और मैं चिंता के मारे मरी जाती हूँ। वह बारबार पूछते रहे पर मैंने कुछ न बतलाया।'

'चिंता कर क्यों मुख धूमिल किए हो, अनंत ही बारबार

पूछता रहा, मैं भी तो कह रहा हूँ, तुम्हारी चिंता से जितना कष्ट हुआ उतना घातकों की बात से भय नहीं हुआ। क्यों सोमी, अनंत के साथ भी यहाँ आती थीं।'

'चलिए, मैं कुछ नहीं जानती, जो कहना था कह दिया, आप जानें आपका काम जानें।'

'रुष्ट हो गईं। यह स्थान मुझे बहुत पसंद है, इसीसे पूछा। अच्छा, युद्ध बीतने पर यहाँ आया करेंगे ?'

'(हँसती हुई) मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता है, कुमारीजी से पूछिएगा।'

'उन्हीं की ओर से प्रतिनिधि होकर बतलाओ न।'

'वास्तव में यह स्थान ऐसा ही है, प्रकृति ने बनाया है और इसी से इसकी सहज शोभा मन को मोहे लेती है।'

'पर तुम्हारे मन को तो नहीं मोह सकी, सोमी। याद रखो, मेरे कहने पर तुमने यह बात कही है।'

'आपका मन आपके पास है, वह मोहित हो सकता है। मेरा मेरे पास है नहीं, मोहित हो कौन ? वह कथन तो प्रतिध्वनिमात्र था। देखिएगा, कुमारीजी भी न मुग्ध होंगी, उनका मन भी कहीं अन्यत्र बसा हुआ है।'

'अनंत तो तुम्हारी इन बातों के फेर में फँस जाता होगा, स्यात् समझता भी न हो। तुमने इतनी बातें कहाँ सीखी हैं।'

'जी हाँ, क्यों न कहिएगा, इन सीधी सुगम बातों को आप तो समझ लेते हैं, यही मेरे लिए बहुत है। उनसे इस प्रकार की बातों का न कभी अवसर ही मिला और न उनसे ऐसी बातें करने की कभी इच्छा ही हुई। आपको बहुत देर हो गई, अब गढ़ी ही पर न जाइएगा।'

'(सोमी की ओर देखते हुए) स्त्री का हृदय रहस्यमय होता

है और तुमने तो स्वयं स्वीकार किया है कि तुम हृदयहीन हो। अच्छा, तुम अब कहाँ जाओगी ?'

'घर ही जाऊँगी पर आप बड़ी जल्दी रुष्ट हो जाते हैं, यह स्वभाव ठीक नहीं है, इसे बदलिए। (हँसती हुई) आपको यहीं बिठाए रहूँ, कुमारीजी याद कर रही होंगी, इसी से कहा था।'

गोपाल भी हँस पड़े और दोनों ऊपर आए। बिदा होकर गोपाल अपने घोड़े की ओर बढ़े और सोमी बस्ती की ओर कुछ दूर जाकर जंगल में दृष्टि के ओझल हो गई। गोपाल घोड़े की बागडोर खोल कर टहलते हुए गढ़ी की ओर जाने लगे और वह शिक्षित घोड़ा स्वामी के पीछे-पीछे चलने लगा। यह प्रायः नदी के किनारे पहुँच चुके थे कि इन्हें कुछ शंका सी हुई और घूमते ही इन्होंने प्रायः सौ कदम पर दो मनुष्यों को अपनी ही ओर धनुष पर तीर संधान करते हुए देखा। सोमी की बात तुरंत मस्तिष्क में दौड़ गई और इन्होंने उसीके दिए हुए धनुष पर चढ़ाने को तीर खींचा पर एकाएक सोमी बगल की आड़ से निकल कर गोपाल के आगे आ खड़ी हुई। गोपाल उसे देख कर कुछ चकित हुए पर तुरंत ही उसे एक हाथ से पकड़ कर घुमाते हुए अपनी आड़ में कर लिया क्योंकि शत्रु की तीरें छूट चुकी थीं। एक संयोग से इनके धनुष से टकराकर नीचे झुकती हुई इन्हींके जंघे में कई इंच धँस गई और दूसरी इनके हाथ के कलाई तथा कोहनी के बीच के माँस को छेदती हुई सोमी के बगल में लगभग दो इंच के घुस गई, जिससे उनका हाथ एक ही तीर द्वारा सोमी के शरीर में मानों जड़ दिया गया। उसने एक आह की और बेहोश हो गई। गोपाल का रक्त खौल उठा और उन्होंने तुरंत तीर को उसके शरीर से खींच लिया और उसे वहीं भूमि पर धीरे से सुला-कर शत्रु की ओर घूमे। पैतरा बदल कर पुनः आई हुई तीरों से

अपनी रक्षा कर इन्होंने धनुष सँभाला और दो ही तीर में दोनों शत्रुओं को ढेर कर दिया। उनके गिरते ही गोपाल ने अपना उत्तरीय फाड़ कर पहिले सोमी के घाव को कसकर बाँध दिया, जिससे रक्त निकलना कम हो गया और तब अपने हाथ और जंघे से तीरों को खींच कर उन पर पट्टी कसी। इसके अनंतर सोमी को बड़ी सतर्कता से उठा कर वह नदी की ओर चल दिए क्योंकि वह अचेत पड़ी हुई थी। किनारे पर पहुँचते ही उसकी तथा अपनी पट्टियों को घावों के पास तर किया और तब सोमी के सिर को अपनी जाँघ पर रख कर उसके मुख पर जल छिड़कने तथा सिर को सहलाने लगे। कुछ ही देर में उसे होश आ गया और उसने तुरंत पूछा—'आपको तो चोट नहीं लगी।'

'तुम कैसी हो, चित्त जरा ठिकाने करो, व्यग्र न हो। यदि घोड़े पर चढ़ सको तो शीघ्र गढ़ी पर पहुँच कर तुम्हारे औषधि का प्रबंध किया जाय। साहस करोगी, नहीं तो उठा कर ले चलें, देर करना ठीक नहीं है।'

'आपको दोनों ही हालत में कष्ट होगा। कृपया बस्ती में समाचार दे दें, वे लोग उठा ले जाएँगे।'

'नहीं, यह नहीं हो सकता। अकेले छोड़ कर जा ही नहीं सकता। तो हम तुम्हें उठा कर ले चलें।'

'नहीं, देखें उठ सकती हूँ, बड़ी दर्द हो रही है। जरा सहारा दीजिए।'

गोपाल ने घोड़े को पुचकार कर बुलाया और सोमी को पहिले उठा कर उस पर सवार करा दिया तथा स्वयं भी उस पर चढ़ कर एक हाथ से सोमी को सँभाला और दूसरे से घोड़े की बाग ढीली की। पुल पार कर यह शीघ्र ही गढ़ी के फाटक पर पहुँच गए और डोली का प्रबंध कर उसे ऊपर लिवा गए। जाते समय

इन्होंने एक सैनिक को अनंत को शीघ्र लिवा लाने को भेजा और दूसरे सैनिक को पता देकर भेजा कि उन दोनों शत्रुओं को उठा लावें। यदि वे जीवित हों तो दवा का भी प्रबंध करें। सैनिकों में अपने नायक को घायल देख कर बड़ी उत्तेजना फैली पर सबको शांत कर गोपाल ऊपर चले गए। डोली को अपने ही कमरे के पास रखवा कर वह उसे उठा कर क्योंकि वह फिर अचेत हो गई थी भीतर ले गए तथा गढ़ी के शस्त्रवैद्य को बुला भेजा। इसके अनंतर यह भी शिथिल हो पड़े और एक आसन पर बैठ कर तकिए के सहारे लुढ़क से गए। इसी समय समाचार पाते ही पहिले रामेंद्र तथा बाद को सामंतजी दौड़े आए। रामेंद्र ने पहिले गोपाल के शस्त्र आदि उतार कर अलग रखे और रक्त से सने अनावश्यक वस्त्र भी हटा दिए। सामंतजी कभी इनको कभी सोमी को देखते और शस्त्रवैद्य को बुलाने के लिए आदमी पर आदमी भेजने लगे। वह भी सामान लिए दिए आ पहुँचे और कुमारी इरा भी दौड़ती हुई आ गई। सभी के संकेत से शस्त्रवैद्य ने पहिले कुमारी की सहायता से सोमी की पट्टी खोली और जमा हुआ रक्त धोया। फिर कुछ और रक्त निकल जाने पर घाव में दवा डाल कर फाहा रखा तथा कोई लेप घाव के चारों ओर कुछ दूर तक लगाकर पट्टी बाँध दी। इसके बाद गर्म दूध में दवा खिलाने को बतला कर वह गोपाल के पास आए। इनमें कुछ चेतनता आ गई थी पर न बोलने का संकेत कर उन्हें उसी आसन पर लिटा दिया और तब दोनों घावों पर की पट्टी खोली। इसी समय जिन तीरों से वे लोग घायल हुए थे, वे सैनिकों द्वारा लाए गए और उसे एकदृष्टि देख-कर वैद्य जी ने गोपाल के घावों पर औषधि आदि लगाकर पट्टी बाँध दी। इनके लिए दूसरा पलंग मँगवाकर वहीं लगवा दिया

गया और वह उस पर सुला दिए गए। वैद्यजी ने कहा—

'ये दोनों इसी प्रकार बिना हिले डोले यदि आज रात्रि भर पड़े रहेंगे तो शीघ्र ही घाव भर जाएँगे। कोई भय की बात नहीं है। आश्चर्य है कि दो तीर से तीन घाव हुए हैं। एक से तो इस जंघे का घाव हुआ है पर किसी कड़ी वस्तु से टकरा कर ही तीर नीचे घूमा है क्योंकि चोट सीधी न होकर ऊपर से नीचे को घँसने से हुई है। हाथ का चोट हड्डी के नीचे से केवल मांस में है, इसलिए दूसरा तीर आर पार होकर निकल गया होगा पर नहीं, ठीक है इसी तीर से उस स्त्री को घाव लगा है। इनके हाथ को छेद कर वह तीर उसके बगल में धँसा है, दो तीर से तीन घाव होने का यही रहस्य है पर इसीसे उसकी प्राणरक्षा हुई है, नहीं तो अब तक वह सुकुमारी समाप्त हो गई होती। तीर कलेजे तक पहुँच जाता। घाव बराबर तर रखे जायँ। मैं बराबर बीच में आकर देखता रहूँगा।

इसके अनंतर वैद्यजी दोनों घातकों को देखने के लिए नीचे गए। अनंत भी आ पहुँचा था पर वह एक ओर चुपचाप खड़ा था। इरा से कुछ कहकर सामंतजी तथा रामेंद्र के चले जाने पर वहाँ एकांत हो गया तब इरा ने उसे संकेत से पास बुलाया। अनंत ने गोपाल तथा सोमी दोनों को अच्छी प्रकार देखा। उसने उन तीरों को भी उठाकर जाँच की दृष्टि से देखा और तब इरा से धीरे से बोला—

'कुमारीजी, परमेश्वर की इतनी ही कृपा है कि इनमें विष नहीं है।'

गोपाल को भी तंद्रा सी आ गई थी, घायल होने पर भी इतना परिश्रम करने से रक्त अधिक निकल गया था इससे वह

निर्बल हो गए थे। इस कारण इरा ने उन दोनों के पलंग से कुछ हटकर कमरे के दूसरे कोने के पास आकर पूछा—

'कैसे जानते हो कि इनमें विष नहीं है ?'

'यह तो पहिले नोक को देखकर ही ज्ञात हो जाता है और दूसरे इसकी सुगंध से भी कुछ ज्ञात हो जाता है।'

'कुछ कह सकते हो कि किसने और क्यों तीर से इन्हें घायल किया ? तुम कुछ जानते हो ?'

'कुछ भी नहीं। सैनिक से वृत्तांत पाकर दौड़ा चला आया। हाँ, इतना कह सकता हूँ कि आज सुबह मैं ही इनको बुला ले गया था और सोमी के कहने पर। उसके बाद का कुछ भी वृत्त नहीं जानता।'

'यह विचित्र रहस्य है। अच्छा, इस विषय में फिर सोमी से कुछ तुमने नहीं पूछा कि क्या काम है और वहीं जाकर क्यों नहीं कह आती।'

'(नीची दृष्टि कर) मैं इस योग्य नहीं समझा जाता कि कोई बात मुझसे कही जाय। स्वामी तथा स्वामिनी दोनों की वह सखी है, इससे वह भी मुझसे कुछ नहीं कहती, उपेक्षा करती है, इसलिए मैंने कुछ पूछने का साहस नहीं किया। कहीं ऐसा करने से आप लोगों के आदेश का उल्लंघन न हो जाय, इसकी शंका रहती है।'

'(मुस्किरा कर) ऐसी बात है, अच्छा इस समय अवसर नहीं है, रात्रि में तो तुम यहाँ इनकी सेवा-सुश्रूषा को रहोगे ही क्योंकि सोमी भी यहीं है इसलिए उसी समय जो कुछ तुम्हें ज्ञात है उसे सुनकर जो तुम न जानते होगे बतला दूँगी। मेरी वह सखी है, इसलिए तुमसे भी कुछ छिपाने की आवश्यकता नहीं है। देखो, किसीसे कहना मत कि मैंने रात्रि में यहाँ आने या रहने को कहा है।'

इसके अनंतर इरा पुनः उन दोनों को देखकर अंतःपुर में चली गई और थोड़ी देर में उसने अनंत के सोने के लिए उसी कमरे में प्रबंध करा दिया तथा रोगियों के लिए रात्रि भर के लिए आवश्यक सामान भी भेज दिया। संध्या के समय वैद्यजी को लिवाकर सामंतजी तथा रामेंद्र दोनों वहीं आए और सब देख भालकर वैद्यजी ने कहा—

'पट्टियाँ कल फिर खुलेंगी पर रात्रि भर इन्हें तर करने तथा दोनों को दो-दो घंटे पर दवा मिश्रित गर्म दुग्ध देने का प्रबंध होना चाहिए। यह अत्यंत आवश्यक है।'

अनंत ने आगे बढ़कर कहा कि 'इस सेवा के लिए मुझे आज्ञा दी जाय।'

रामेंद्र ने कहा—'यह कार्य तुमने अपने ऊपर लिया है, अनंत, इसमें अब मुझे कुछ नहीं कहना है, नहीं तो मैं किसी दूसरे का विश्वास न करता। इरा के साथ स्वयं इसे मैं अपने हाथ में लेता।'

सामंत ने कहा—'ठीक है भीलराज, पर यदि कोई सहायक चाहो तो ले सकते हो। रात्रि भर का जागरण है।'

'एक रात्रि देख लिया जाय।'

इसके अनंतर कुछ देर ठहर कर और सब लोग चले गए। रामेंद्र ने इरा को बुलवाया और तब अनंत को भोजनादि से निवृत्त होकर आने को छुट्टी दी। ये दोनों भी इसी रहस्य पर तर्क वितर्क करते रहे पर कुछ निश्चय न कर सके कि किस शत्रु का यह कार्य है। अनंत के आ आने पर वे दोनों भी चले गए।

प्रायः दस बजे होंगे और चारों ओर सन्नाटा हो चला था, तब इरा धीरे से उस कमरे में आई। पहिले उसने गोपाल तथा सोमी को देखकर अनंत से पूछा कि 'दवा दिए कितनी देर हुई।'

'अभी ही दिया है। पर किसी को इनमें अब तक होश नहीं है।'

'कैसे हो? इतना रक्त गया है। निर्बलता, दवा तथा रात्रि सब ने मिलकर इन्हें ऐसा कर रखा है। कुछ भय नहीं है, घबड़ाओ मत। यही कहो कि उनके हाथ से लग कर इसे तीर लगी है, नहीं तो, देखो, तीर हृदय तक पहुँच जाता। यह कभी न बचती। पर ऐसा संयोग कैसे पड़ा, क्या उनके हाथ से तीर निकल कर तब इसे लगी।'

'आप दुखी न हों और मुझे क्षमा करें तो कहूँ।'

'क्या, नहीं बतलाओ। दुःख और क्षमा का अभी यहाँ कुछ भी प्रयोजन नहीं।'

'स्वामी का हाथ इस प्रकार इसकी कमर में था और छुटी हुई तीर ने आकर दोनों को काँटे के समान एक में जड़ दिया। शत्रु के पास और भी तीर थे ही तथा उनसे अपनी रक्षा करने को शीघ्र ही हाथ छुड़ाना भी परम आवश्यक था, नहीं तो एक भी न बचते। इस कारण शीघ्रता से इस प्रकार हाथ खींचने पर ये दोनों घाव विशेष बड़े हो गए।

'ठीक निदान किया। (कुछ मुस्किरा कर) इससे मेरे दुःखी होने का तुम्हें ध्यान रहा पर मैं समझती हूँ कि हमसे अधिक तुम थे तभी वैसा कहते थे। न जानें क्या बात है, क्यों सोमी के कमर में उनका हाथ था, होश में आने हो पर ये लोग बतला सकेंगे। पहिले ही शंका कर क्यों दुखी होते हो।'

'शंका रत्ती भर नहीं है, मुझे दोनों ही पर विश्वास है पर एक बार मन कुछ वैसा हो जाता है।'

'अच्छा, आज सुबह क्या बात हुई थी, दोनों ही से।'

'पहिले आप बैठ जायँ तब कहूँ, यह पलंग बिछा हुआ है।'

'यह तो तुम्हारे लिए भेजा था।'

'हम दीन भीलों के लिए पलंग यही भूमि है। आप ने भेजा था और रात्रि में यहीं रहने को कहते हुए भी आपने आज्ञा दी थी कि किसी से कहना मत, इसलिए मैं चुप रहा। मुझे तो जागना ही है, दवा आदि के लिए और यह पलंग आपके काम आएगा। बिछावन आदि ठीक कर दिया है।'

'(मुस्किरा कर) मैंने अब तक समझा न था। तो तुम्हीं रात्रि भर जागोगे।'

'हम लोगों को कई रात्रि तक लगातार जागने का अभ्यास है, मुझे कोई कष्ट न होगा। स्वामी की सेवा के लिए स्वामिनी को कष्ट दूँ तो हम लोग कब काम आएँगे।'

'अच्छी बात है, जैसा कहो पर मुझे स्यात् ही नींद आए।'

इरा यह कह कर पलंग पर जा बैठी और अनंत भी पलंग के पास नीचे बैठ गया और उसने दोनों से जो बातचीत की थी वह सब दुहरा गया। इरा चुपचाप पहिले सुनती रही। इसके अनंतर वह बोली—

'यदि सोमी के हृदय में कुछ भी कपट होता तो वह तुमसे कभी उनके विषय में बात ही न करती, बुलाना या संदेश कहलाना तो दूर था। सोमी मेरे साथ बराबर रहती है, आती है, जाती है और मुझसे बड़ी होने के कारण स्नेह से मेरा पक्ष अधिक लेती है, इससे बोलने चालने में उनसे दबती नहीं और हँसी विनोद भी कर लेती है। वह अपने जन्म के रहस्य का जो कुछ भी पता लगता है, वह केवल मुझसे अभी कहना चाहते हैं पर इस कारण उससे कुछ छिप नहीं सकता। उसे उन्होंने मना कर रखा है कि किसीसे न कहेगी अतः वह तुमसे भी नहीं कहती। तुम्हें इससे दुःख होना स्वाभाविक है पर समझते ही हो इसमें

उसका कुछ दोष नहीं है। उन्होंने भी पिताजी से या भैया से नहीं कहा है क्योंकि जब तक कुल बातें स्पष्ट न हो जायँ कुछ कहना व्यर्थ है।'

'उचित ही है और (कुछ गंभीरता से) आप लोगों से न कहना प्रेम सहन न करता इसलिये वैसा होना सहज स्वाभाविक है।'

'समझ गई, जब तक तुम सब बातें न जान लोगे तुम्हें इसका दुःख बना रहेगा! हम आज ही सब बातें तुम्हें बतला देते हैं पर किसी से कहना मत। सोमी के साथ हम लोगों का जो स्नेह हो गया है, उसके कारण उसके पति का स्नेह उस पर कम हो जाय, यह हममें से कोई नहीं चाहेगा और जहाँ तक मैं समझती हूँ, वह तुमसे मित्रवत् ही व्यवहार करते हैं।'

'यह मैं हृदय से स्वीकार करता हूँ, मुझे कोई दुःख न था और न है, जो बात थी वह आपके पूछने पर स्पष्ट मैंने कह दिया। सोमी के विषय में भी मुझे कोई शंका न थी और न है, यह मैं पहिले ही कह चुका हूँ।'

'बात कुछ ऐसी है। तुम्हारे साथ सोमी का विवाह हुआ है पर यह तुम दोनों में प्रेमोत्पत्ति हो जाने के कारण नहीं हुआ था। अतः बाद में यदि वह किसी पुरुष को, तुमसे कई बातों में बढ़ कर पाने पर केवल शुद्ध प्रेम करे तो इसमें तुम्हें उसको ओर से मन मलान करना न चाहिए। तुम्हीं यदि सोमी से प्रेम न होने के कारण किसी अन्य स्त्री से, उसके गुणों से आकर्षित होकर, शुद्ध प्रेम करने लगो तो सोमी को भी बोलने का तब तक अधिकार नहीं है, जब तक तुम दोनों पति-पत्नी रूप में एक रस बने रहो।'

'ठीक है, उचित है और ऐसा ही है। वह मेरे स्वामी तथा स्वामिनी से प्रेम करे तो मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ कि उससे किसी

प्रकार से दुखी होऊ और यह वह जानती है। उसकी कमर में स्वामी का हाथ होना भी, मैं समझता हूँ, उसकी रक्षा के लिये ही था। वह स्वभावतः चंचल है और शत्रु को तीर चलाते देख कर स्नेह के कारण उन्हें बचाने को बीच में कूद पड़ी होगी पर रक्षा करना दूर स्वयं भी घायल हुई तथा उनके अपनी रक्षा करने में उसने बाधा ही डाली। हम लोग युद्ध-व्यवसायी तथा पुरुष हैं, इससे लोहे की चोट सहन करना ही हमारा सहज धर्म है।'

'ठीक है, अच्छा उस रहस्य की बात अब तुमसे कह दें।'

'नहीं, क्षमा कीजिएगा, स्वामी के रहस्य को इस प्रकार जान लेना उचित नहीं है और आपसे इतनी बात सुन कर ही हमारे मन में यदि कुछ मलिनता रही होगी तो वह मिट गई। आपका इतना ही कह देना हमारे लिए बहुत है।'

'(मुस्किरा कर) जैसी इच्छा, और मुझे इस बात से प्रसन्नता ही है। मेरी सखी को तुमसा पति मिला है, इसका मुझे भी गौरव है। सोमी को मैं बहिन के समान ही मानती हूँ।'

बात यहीं समाप्त हो गई और अनंत सुश्रूषा में लग गया। इरा लेट कर सोने का प्रयास करने लगी पर निद्रा आती न थी। उसने कुछ झपकी ली ही थी कि एकाएक पुकारने की आवाज से निद्रा खुल गई। उसने देखा कि अनंत पलंग से कुछ हट कर खड़ा उसीको जगा रहा था। उसने पूछा कि क्या है तब अनंत ने कहा कि स्वामी की निद्रा या तंद्रा खुल गई है और आपको बुला रहे हैं। इरा तुरंत पलंग पर से उतर कर उनके पास पहुँच गई और बगल में बिछे सोमी के पलंग पर बैठकर पूछा—

'कैसी तबीअत है ?'

'अच्छी है, तुमने क्यों इतना कष्ट उठाया ? घायल होने के बाद सोमी को यहाँ तक लाने के परिश्रम ही से थोड़ी देर के लिए

चेतनता लुप्त हो गई थी। अब सब ठीक है, घावों में अब कष्ट भी नहीं है, दो तीन दिन में सूख जायगा। व्यर्थ ही कष्ट—'

'(मुस्किरा कर) मुझे यदि चोट लगेगी तो मैं तो मन से यही चाहूँगी कि आप व्यर्थ कष्ट उठावें पर मुख से इसी प्रकार कहूँगी।'

'(मुस्किराकर) वाह, क्यों नहीं, ऐसा उत्तर तुम्ही लोग दे सकती हो और है भी ठीक।'

'अच्छा, यह तो बतलाइए कि यह घटना घटी कैसे, दोनों को एक साथ कैसे इस प्रकार चोट लगी कि आपका हाथ सोमी की बगल में जड़ दिया गया।'

'(इरा की ओर ध्यान से देखकर) ऐसा प्रश्न क्यों ? कुल बात सुन लो तब कुछ कहना। अनंत, तुम भी सुनते चलो क्योंकि स्यात् तुम्हारे मन में भी ऐसा ही प्रश्न उठा हो।'

इसके बाद गोपाल ने कुल घटना सविस्तर सुना दिया तब इरा ने अनंत की ओर देखकर कहा कि 'तुम्हारा अनुमान बिलकुल ठीक निकला।'

'वही संभव था ही। (गोपाल से) स्वामिन्, कुमारीजी के पूछने ही पर मैंने घावों तथा तीर को जाँचकर यह अनुमान लगाया था। न मुझे किसी प्रकार की शंका थी और न है, यह निश्चय जानिए। यही मैंने कुमारीजी से पहिले भी कहा था।'

'(मुस्किरा कर) यह तो मैं जानता ही हूँ अनंत। विश्वास भी पारस्परिक होता है, यह तो हो नहीं सकता कि हम तुम पर विश्वास करें और तुम हम पर न करो। हमने तुम्हें अपना मित्र मान लिया है तो यह संबंध अब यावज्जीवन का है। यदि एक दूसरे के प्रति किसी प्रकार की शंका मन में उठे तो उसे स्पष्ट कहकर समाधान करा लेना ही श्रेयस्कर है, इसके लिए संकोच

क्यों करते हो ? सोमी की कैसी अवस्था है, वैद्यजी ने क्या कहा है ?'

'ठीक है, दो तीन दिन में अच्छी हो जायगी, यही कहते थे।'

गोपाल उठ कर बैठ गए और पहिले सोमी की ओर देखा। इसके अनंतर इरा से बोले—'सोमी ने जो बात सुनी थी और जिसकी सचाई का प्रत्यक्ष प्रमाण हम लोगों को तुरंत ही मिल गया, उससे यह निश्चय हो गया है कि हम लोगों ने जिन बातों का पता लगाया है, वह पूर्णतः सत्य है। यदि इस युद्ध की आशंका न होती तो हम सब इस रहस्य को शीघ्र ही अंधकार से बाहर लाकर सुचित्त हो जाते। हमारे माता पिता का शत्रु सजग हो उठा है और उसने हमारा परिचय भी पा लिया है, अतः हमें युद्ध-काल में भी अपने ऊपर ऐसे ही कपट आक्रमण की शंका हो रही है। युद्ध से हट नहीं सकता और उस समय अपनी रक्षा का भी विशेष प्रबंध नहीं कर सकता। पितृव्य यहाँ हैं नहीं कि उनसे परामर्श लूँ। तुम क्या उचित समझती हो ?'

'मैं क्या सम्मति दूँ, यह समझ नहीं पाती। युद्ध से विमुख होने को कह नहीं सकती इसलिये आपको अपनी रक्षा का ही पूर्ण प्रबंध रखना चाहिए। अज्ञात रूप से यदि आपके साथ रह सकती तो—'

'यह तो संभव नहीं है। देखा जायगा, यथाशक्ति प्रबंध रखूँगा और फिर होनहार को कोई भी नहीं रोक सकता, इसकी चिंता कैसी ? एक चिंता और है और उसे तुम स्यात् समझ भी गई हो। सामंतजी, रामेंद्र तथा हम सभी प्रायः यहाँ की कुल सेना के साथ युद्ध के लिए चले जाएँगे, उस समय इस गढ़ी की तथा तुम्हारी रक्षा का भार किसी अत्यंत विश्वसनीय ही पर छोड़ा जा सकेगा। शत्रु सब बातों से अवगत ज्ञात होता है और वह

अवश्य अवसर पाकर आक्रमण करेगा। सामंतजी से अभी कुछ कहा नहीं गया है और न जा सकता है, ऐसी अवस्था में यहाँ का क्या प्रबंध किया जाय ?'

'यहाँ का प्रबंध मेरे पर छोड़ दीजिए, मैं देख लूँगी। कुछ तो सैनिक रहेंगे ही। गढ़ी पर अधिकार यों ही कोई न कर पाएगा। अनंत, तुम्हारी क्या सम्मति है ?'

'मेरी सम्मति क्या ? मुझे आज्ञा दीजिए, मैं दो में से किसी एक कार्य का भार अपने ऊपर ले सकता हूँ।'

'देखो, हम यह ठीक समझते हैं। तुम अपने दो सौ कुशल धनुर्धारियों के साथ गढ़ी की रक्षा का भार लो, जिसका किसी को पता न रहे। प्रायः तीन सौ सैनिक यहाँ छोड़े जाएँगे। पाँच सौ वीर गढ़ी की रक्षा काफी दिनों तक कर सकते हैं। अपनी रक्षा का प्रबंध हम कर लेंगे क्योंकि हम तो अपने ही सैनिकों के बीच में रहेंगे। यही ठीक होगा पर यह याद रखना कि गढ़ी की रक्षा से बढ़कर इन लोगों की रक्षा है।'

'जैसी आज्ञा।'

एकविंश परिच्छेद

त्रिपुरी राज्य की सीमा पर, जो कालिंजर की सीमा से मिली हुई है, महाराज कर्णदेव की तीस सहस्र वीरवाहिनी का पड़ाव पड़ा हुआ है। इसमें प्रायः पाँच सहस्र धनुर्धर और पाँच सहस्र घुड़सवार सेना है तथा बाकी कुल पदातिक हैं। यह सारी सेना विशेष रूप से सुसज्जित है तथा त्रिपुरी की समग्र सेना से चुन चुन कर इसमें वीर सैनिक भेजे गए हैं। इनके सेनापति दुर्द्धर्ष वीर, अनुभवी तथा अनेक युद्धों के विजयी संग्रामदेव हैं, जिन पर महाराज कर्णदेव का पूर्ण विश्वास है। इनके सहकारीगण भी योग्य सेनानायक तथा वीर योद्धा हैं। हूणराज भी अपने पाँच सौ चुने सवारों के साथ वारेंद्रनारायणसिंह तथा गोपाल से बदला लेने की तीव्र उत्कंठा से साथ ही आया हुआ है और इस आक्रमण को सफल बनाने की प्राणपण से चेष्टा कर रहा है। अब तक यह सेना अपने राज्य में यात्रा कर रही थी इसलिये विशेष सतर्कता की आवश्यकता न थी और वे समझते थे कि उनकी इस यात्रा का शत्रु को पता न होगा क्योंकि इस सेना के ध्येय वे ही हैं, इसकी शंका क्यों उन्हें होने लगी पर जब सेना शत्रु की सीमा पर पहुँच गई और उसके राज्य में घुसने को तैयार हुई तब वह स्थिति बदल गई। इस कारण प्रातःकाल सेनापति ने अपने खेमे में युद्धीय समिति बुलाई और किस प्रकार अब आगे बढ़ा जाय, इस पर सबकी सम्मति लेने लगे।

ये लोग प्रायः कुल बातें निश्चित कर चुके थे कि एक सैनिक ने खेमे के द्वार पर आकर भीतर आने की आज्ञा माँगी। आदेश

मिलने पर उसने सामने पहुँच कर अभिवादन किया और कहा कि कालिंजर राज्य की सीमा पर यहाँ के थाने का नायक आया हुआ है तथा सेनापति जी से मिलना चाहता है।

सेनापति संग्रामदेव ने उसे बुला लाने का आदेश दिया और जब वह सामने लाया गया तब उससे पूछा—

'कहिए, आपने किसलिए यहाँ आने का कष्ट किया है ?'

'श्रीमन्, मैं सीमांत के इस स्थान का नायक हूँ और त्रिपुरी की इस विशालवाहिनी को यहाँ एकाएक एकत्र देख कर इस शंका को दूर करने के लिए आया हूँ कि क्या यह तैयारी हमारे महाराज के राज्य पर चढ़ाई करने के लिये तो नहीं है।'

'पहिले तो इस प्रकार सीमा पर थाने नहीं बिठाए जाते थे। क्या यह नया प्रबंध किया गया है ?'

'जी श्रीमान्। जब से इस बार धोखा हुआ तभी से यह प्रबंध सर्वत्र सीमा पर किया गया है।'

'अच्छा तो ये थाने कितनी कितनी दूर पर रखे गए हैं ?'

'(कुछ रुकता सा) यही इतनी दूरी है कि शीघ्र से शीघ्र एक थाने से दूसरे थाने तक समाचार भेजा जा सके तथा एक दूसरे को आवश्यकता पड़ने पर सहायता पहुँचा सके।'

'प्रत्येक थाने पर कितने सैनिक रखे जाते हैं।'

'आवश्यतानुसार तथा स्थान की नैतिक दृष्टि की विशेषता के अनुसार प्रबंध है। अब श्रीमन् मेरी शंका दूर करें।'

'ठहरो, हम अभी आते हैं तो बतलाते हैं।'

यह कह कर सेनापतिजी खेमे के पिछले द्वार से बाहर निकल गए और एक नायक को बुला कर आज्ञा दी कि जिस स्थान से यह शत्रु-नायक आया है, वहाँ कुछ सेना लेकर जाओ और जितने

सैनिक या अन्य आदमी हों उन्हें घेर कर पकड़ लाओ, कोई भाग न जाने पावे।'

इस आज्ञा देने के प्रायः आध घंटे बाद सेनापति उसी खेमे में आए और तब उस शत्रुपक्ष के नायक से बोले—

'यह सेना कालिंजर पर चढ़ाई करने ही के लिये आई है और मुझे दृढ़ आशा है कि पहिली ही चढ़ाई के समान इस बार भी हम लोगों को सफलता मिलेगी'।'

'आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पांडवान्', अब मुझे आज्ञा है।'

'(ईषत् क्रोध तथा हास्य के साथ) जा सकते हो।'

नायक खेमे के बाहर आते ही देखता है कि उसके स्थान के सभी आदमी कैद कर लिवा लाए गए हैं और वह भी एक प्रकार कैदी ही है। वह मुस्किरा कर चुप हो रहा और शत्रु सैनिकों के संकेत पर जहाँ वे लिवा गए वह सबके साथ चला गया।

त्रिपुरी राज्य की सेना अब सतर्कता से आगे बढ़ी। सेनापति को यद्यपि निश्चय हो गया था कि इस चढ़ाई का उसके शत्रु को पता नहीं है और उक्त थाने के सभी आदमी कैद कर लिए गए हैं, जो समाचार भेज सकते थे पर तब भी उसने पूरी सावधानता रखी। उसने प्रायः आठ कोस यात्रा कर दोपहर होते होते पड़ाव डाल दिया और कुछ सवार सेना आगे भेज दी कि मार्ग का तथा शत्रु के कहीं आसपास होने का पता लगावें। शत्रु-राज्य में आ पहुँचने के कारण शीघ्रता भी आवश्यक हो गई थी, इसलिये रात्रि में भी यात्रा करने की आज्ञा प्रचारित कर दी। यह यात्रा प्रायः दस बजे रात्रि को आरंभ हुई और सेना सात आठ कोस आगे बढ़ी होगी की अग्गल की भेजी सवार सेना के कुछ अश्वा-रोही घोड़े भगाते हुए आ पहुँचे और समाचार दिया कि शत्रु की

सेना कुछ ही दूर पर मार्ग रोके हुए युद्ध के लिए तैयार डटी हुई है। दोनों पक्ष की अगल सेनाओं में मुठभेड़ भी हो चुकी है। यह समाचार पाते ही आश्चर्य में पड़कर भी सेनापति ने सेना को वहीं रोक कर पड़ाव डाल दिया और रक्षा के लिए कई सहस्र सवारों को चारों ओर नियुक्त भी कर दिया।

जहाँ त्रिपुरी की सेना ने पड़ाव डाला था, उसके तीन कोस उत्तर कालिंजर की सेना सहित महाराज कीर्तिवर्मा तथा वारेंद्र-नारायणसिंह शत्रु का मार्ग रोकने तथा उसे परास्त कर लौटा देने के लिए आ डटे थे। यह स्थान छोटी छोटी पहाड़ियों के सिल-सिले के नीचे ही था, जिसके बीच के खुलते जगह से उत्तर जाने का चौड़ा मार्ग सा था। सबलसिंह की सम्मति से यही स्थान शत्रु को रोकने के लिए निश्चित किया गया क्योंकि पहाड़ियों का आड़ लेकर धनुर्धारी सेना शत्रु पर तीरों की बौछार कर सकती थी और शत्रु को उन पहाड़ियों पर अधिकार करने में भारी हानि उठानी पड़ेगी। यह सेना प्रायः बीस सहस्र थी और यद्यपि सेना-पतित्व वारेंद्रनारायणसिंह ही कर रहे थे तथा महाराज कीर्तिवर्मा भी उपस्थित थे पर वास्तव में सेना को यथास्थान नियत करने का कार्य गोपाल और सबलसिंह ही कर रहे थे। शत्रु की सेना के पहुँ-चने का समय इन लोगों को पहिले ही से ज्ञात था और अब दूसरे ही दिन युद्ध होने का निश्चय भी हो गया। इस कारण दोनों पक्ष ने एक दिन तथा रात्रि भर में युद्ध की पूरी तैयारी कर ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही सेनापति संग्रामदेव ने शत्रु पर आक्रमण करने के लिये अपनी अश्वारोही सेना आगे भेजी और धनुर्धारी सेना के दो विभाग कर उस सेना के दोनों ओर नियत किया कि उनकी रक्षा करते हुए वे शत्रु पर वाणवर्षा करते रहें। सबके पीछे पदाति सेना के भी दो भाग कर बराबर-बराबर

कूच करने की आज्ञा दी। स्वयं मध्य में रहकर कुछ चुने हुए अश्वारोहियों के साथ पूरी सेना पर दृष्टि रखते हुए आगे बढ़ने लगे। हूणराज अपनी सवार सेना सहित मुख्य अश्वारोही दल के साथ-साथ बढ़ रहा था। प्रायः एक ही घंटे बाद ये लोग शत्रुसेना के सामने पहुंच गए और घुड़सवारों ने वेग से उन पर धावा कर दिया। मार के भीतर आते ही इस सेना पर तीरों की वर्षा इतनी तेजी से होने लगी कि कितने घोड़े तथा सवार घायल हो होकर गिर गए और धावे के वेग में एक बार कमी आ गई और साथ ही कालिंजर की घुड़सवार सेना भी इन पर आ टूटी। अब दोनों पक्ष की सेनाओं में घोर युद्ध होने लगा और खड्गों तथा भालों की झनझनाहट, गिरे व घायलों की चीत्कार तथा वीर प्रति-द्वंद्वियों की ललकार से युद्धस्थल भयानक हो उठा। त्रिपुरी की पैदल सेना भी आ पहुँची पर पहाड़ी टीलों के कारण तथा सामने के सवारों के युद्ध के कारण वह रुक सी गई। संग्रामदेव ने पैदल सेना को पहाड़ियों की ढाल पर चढ़कर आगे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं आगे बढ़े पर अब पहाड़ियों की वृक्षावली तथा घने पौधों की आड़ से दोनों ही ओर से तीरों की विकट मार के एका-एक पड़ने से ये लोग कुछ क्षण के लिए रुक से गए पर फिर ठहर कर दृढ़ता से ढालों की आड़ लेते हुए वीरों ने पहाड़ियों पर धावा कर दिया। स्थान-स्थान पर दोनों ओर के वीर घोर युद्ध करते हुए आगे पीछे हटने लगे। अंत में संख्याधिक्य से त्रिपुरी की सेना ने कई पहाड़ियों पर बहुत हानि उठाते हुए भी अधिकार कर लिया और आगे बढ़ती चली।

सवार सेनाओं में घोर युद्ध हो रहा था और त्रिपुरी पक्ष को भीलों के कठोर बाणों से बहुत हानि उठानी पड़ी। इनके सहयोगी धनुर्धरों ने बहुत प्रयत्न किए और उन्हें पहाड़ियों की ओट से

हटाने को बहुत जोर मारा तथा अपनी तूणीरों को उन पर खाली करते हुए वे पहाड़ियों पर बहुत दूर तक चढ़ गए पर उन भीलों तक न पहुँच पाए। वे अपने बड़े बड़े धनुषों पर पैरों की सहायता से तीरों को रखे कड़ी मार मारते हुए शत्रु के पास पहुँचते ही झट दूर हट जाते और फिर वाण वर्षा करने लगते। भील अकेला हो या समूह में हो शत्रु की संख्या पर दृष्टि न डालता हुआ तब तक अपना एकमात्र कार्य तीर मारना करता चलता, जब तक उसके हाथ पैर चोट खाकर बेकार नहीं हो जाते थे और इस प्रकार भील सेना शत्रु को बड़ी क्षति पहुँचा रहा था। हूणराज यह दृश्य देखकर अत्यंत क्रुद्ध हो उठा और उसने अपने वीर सैनिकों को ललकार कर सामूहिक रूप से बड़े वेग से धावा किया। उसकी लंबी तीखी तलवार के आगे कितने सैनिक छिन्न मस्तक होकर इधर-उधर गिरने लगे और वह कालिंजर की सेना के बीच में मार्ग बनाकर घुसने लगा। शत्रु पक्ष के अश्वारोहीगण उत्साहित होकर उस मार्ग को प्रशस्त करने लगे। कालिंजर के कई वीरों ने मिलकर हूणराज पर आक्रमण किया और कुछ देर के लिए उसके बढ़ाव को रोक भी दिया पर अंत में उनमें कई घायल होकर हट गए और कई मारे भी गए। कालिंजर की अश्वारोही सेना के सहकारी नायक रामेंद्रनारायण ने यह देख कर उसका सामना किया और दोनों में द्वंद्वयुद्ध चलने लगा।

अब युद्धस्थल शत्रु के आगे बढ़ते आने से प्रशस्त होता गया था और दोनों पक्ष की पैदल सेनाएँ भी मैदान पाकर जम कर लड़ने लगीं। संग्रामदेव तथा वारेंद्रनारायणसिंह का सामना हो गया और दोनों वीर युद्धस्थल के मध्य में द्वंद्वयुद्ध में अपनी-अपनी वीरता दिखलाने लगे। इसी समय हूणराज के आक्रमण का तथा

रामेंद्र के द्वंद्वयुद्ध का समाचार पाकर गोपाल, जो बाएँ भाग की पैदल सेना का प्रबंध देख रहा था, सबलसिंह से कुछ कह कर फुर्ती से सवार सेना की ओर मुड़ा और वेग से घोड़ा बढ़ाकर अपनी सवार सेना में होता रामेंद्र के प्रायः पास जा पहुँचा तथा अपनी सेना को प्रोत्साहित करता हुआ शत्रु पर टूट पड़ा। इसका ध्येय हूणराज तथा हूण सवार थे। द्वंद्वयुद्ध देखने में लिप्त सवार सेनाओं में एकाएक हलचल सी मच गई और गोपाल ने पहिली ही टक्कर में कई हूणों को मार गिराया। खूब घमासान युद्ध मचा और इसी रेल-पेल में गोपाल ने हूण-राज के सामने से रामेंद्र को हटाकर उसे ललकारा। अब ये दोनों वीर अपनी सारी शक्ति, युद्ध कौशल और वीरता एक दूसरे पर प्रकट करने लगे। हूणराज तथा उसकी सेना इस प्रकार आगे बढ़ने से रोक दी गई तथा जब शत्रु पक्ष उसकी सेना को दबाकर आगे बढ़ने लगा तब यह देख कर वह हूण क्रोधांध हो उठा और कई बार अपने कार्यों में बाधा डालने वाले गोपाल को सम्मुख पाकर वह क्रोधाग्नि में भस्म सा हो गया। वह गोपाल पर फुर्ती से कठोर आघात करने लग गया और उसे शीघ्र ही समाप्त करने की चेष्टा में प्राणपण से लग गया। गोपाल उसकी निरंतर चलती चोटों का बचाव करता हुआ अवसर देख रहा था। हूणराज ने इसे निर्बल पड़ता हुआ समझ कर अपने घोड़े को एड़ दी और उसे गोपाल के घोड़े से टकराते हुए अपनी लंबी तलवार का पूरा हाथ जमाया। सतर्क गोपाल ने भी उसकी तलवार को अपनी तलवार पर रोकते हुए अपनी ढाल की चोट हूणराज के मुख पर इतने वेग से की कि वह सँभल न सका तथा अलफ होते घोड़े सहित भूमि पर गिर गया। ढाल के आगे की लगी हुई अनी ने उसके मुख

पर पूरा घाव कर दिया और घोड़ों के पैर तथा बोझ से रौंदा जाने से वह ऐसा घायल हो गया कि कुछ ही देर में उसके प्राण पखेरू उड़ गए। हूण तथा शत्रु पक्ष की सवार सेना यह देख कर अत्यंत क्षुब्ध हो वेग से गोपाल पर टूटी पर इस ओर की सेना भी उत्साह से दौड़ पड़ी और घोर युद्ध होने लगा। गोपाल तथा रामेंद्र की न रुकती तलवारें शत्रु को बहुत हानि पहुँचा रही थीं और इस प्रकार अपने पक्ष को युद्ध में प्रबल होते देख कर गोपाल अवसर मिलते ही वहाँ से हट अपने अधीनस्थ बाएँ भाग की ओर पहुँच गया।

इस प्रकार यह युद्ध प्रायः दोपहर तक बड़े जोर शोर से चलता रहा पर अंत में शत्रु की सेना संख्याधिक्य के कारण प्रबल हो पड़ी। दोनों पक्ष के कई सहस्र वीर हताहत हो चुके थे और सूर्य भगवान सीधे सिरों पर तप रहे थे। ठीक इसी समय गोपाल गढ़ी की अपनी ताजी पाँच सहस्र सेना लेकर दाईं ओर की दो पहाड़ियों के बीच से आ पहुँचा और स्वयं एक सहस्र सवार सेना के साथ शत्रु के वाम भाग पर बड़े वेग से टूट पड़ा तथा उसे छिन्नभिन्न करता हुआ शत्रु के सवार सेना पर जा पड़ा। इसकी पैदल सेना ने पहुँच कर शत्रु के बाएँ भाग को एक दम परास्त कर भगा दिया और मध्य भाग पर धावा कर दिया। शत्रु की सवार सेना इस आक्रमण के वेग को सहन न कर सकी और दृढ़ता से लड़ते हुए पीछे हटने लगी। गोपाल की भयंकर मार के आगे शत्रु पक्ष के वीर टिक नहीं रहे थे और कितने ही वीर उसके हाथ से कटते, घायल होते दोनों ओर गिर रहे थे। कालिंजर की थकी हुई सेना भी इस प्रकार गोपल के एकाएक आक्रमण से ऐसी उत्सा-हित हुई कि वह बड़े जोर से सिंहनाद करती हुई शत्रु पर टूट पड़ी। संग्रामदेव तथा अन्यान्य सेनाध्यक्षों के बहुत कुछ प्रयास

करने पर भी उनकी सेना के पैर सर्वत्र उखड़ने लगे और वह शत्रु की मार सहने में अक्षम होकर पीछे हटने लगी। भील धनुर्धरों ने भी जोर मारा और हटती हुई सेना पर तीरों की वर्षा करने लगे। अंत में संग्रामदेव के घायल हो गिरते ही त्रिपुरी की सेना भाग खड़ी हुई और कई कोस तक पीछा कर गोपाल युद्ध में विजयी हो लौट आया। शत्रु का सारा युद्धीय सामान आदि इनके हाथ लगा।

गोपाल के लौटते ही राजा कीर्तिवर्मा, वारेंद्रनारायणसिंह तथा अन्य सर्दारों ने इनकी बड़ी प्रशंसा की और अंत में सभी ने मुक्तकंठ होकर कहा कि आज की विजय श्री गोपाल ही के कारण मिली है। अब सब सेना क्रमशः अपने पड़ावों में गई और सबलसिंह कई सर्दारों के साथ घायलों का प्रबंध करने लग गए।

द्वाविंश परिच्छेद

कालिंजर से प्रायः तीस कोस पूर्व एक छोटी नदी के किनारे एक पार्वत्यशृंग पर एक दृढ़ गढ़ी बनी हुई है, जिसके नीचे कुछ हटकर नदी के तट पर एक अच्छी बस्ती बसी हुई है। यह गढ़ी रामगढ़ी के नाम से प्रसिद्ध है और इसी नाम से वह बस्ती भी पुकारी जाती है। यहाँ के वर्तमान ठाकुर जाजल्लदेव हैं, जो लंबे कद के सशक्त पुरुष हैं। दर्शनीय हैं तथा मुख पर क्षात्र तेज भी है पर उस पर क्रूरता तथा नीचाशयता भी टपक रही है। इस समय वह अपने कमरे में कुछ उदासी तथा कुछ व्यग्रता के साथ टहल रहे हैं और कभी-कभी द्वार की ओर भी देख लेते हैं। ज्ञात होता है कि वह किसीके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसी समय दो आदमी उस कमरे के द्वार पर आ पहुँचे और संकेत पाकर भीतर चले आए। अब वे सब आसीन होकर बातें करने लगे। जाजल्लदेव ने पूछा—

'क्योंजी रामसिंह, अब तुम्हें निश्चय हो गया या नहीं कि वह युवक कौन है? जाँच कर लेने पर क्या निश्चय किया?'

'नहीं कह सकता कि यह कैसे संभव हो गया पर बात तो ठीक है और इसमें शंका करने को स्थान नहीं है।'

'हम यही समझ रहे हैं कि उनके मारे जाने के बाद जब उनकी पत्नी एकाएक गायब हो गई तभी वह गुर्विणी थी और उसे अवश्य ही इसकी शंका हो गई होगी कि उसका पति हमारे षड्यंत्र से मारा गया है। इस कारण अपने गर्भ को छिपाने तथा संतान की रक्षा के लिए वह निकल भागी होगी। उस समय हम

लोगों की उधर दृष्टि नहीं गई और यह आपत्ति खड़ी हो गई। जिस दिन मैंने दरबार में एकाएक गोपाल को देखा, मुझे ऐसा भान होने लगा कि वही मृत सोमल्ल फिर सजीव होकर बैठा हुआ है। बार-बार उसे देखता, शंका मिटाने का प्रयत्न करता पर चित्त में धैर्य न पड़ता। अवश्य ही यह अवस्था में कम है पर फिर भी ठीक उसीका चित्र सा है। अंत में जी घबड़ाने लगा और वहाँ से लौटते ही उसके बारे में जाँच आरंभ की। जाँच से शंका बढ़ी। वह न जाने कहाँ से वारेंद्रनारायणसिंह के यहाँ पहुँच गया है, जो सोमल्ल का मित्र तथा हमारा शत्रु है।'

'साथ ही महाराज की भी उस पर अत्यधिक कृपा हो गई है और सुना है कि वह अत्यंत रणकुशल वीर है। आपकी आज्ञा पाकर मैंने भी उसका पीछा किया और कई अन्य कुशल चर भी साथ लगाए। वह तथा वारेंद्रनारायणसिंह का सबलसिंह नामक कुशल चर दोनों धारा गए थे और वहाँ से वे सब सोमल्लदेव के श्वसुरालय के एक प्रासाद तक भी गए, जहाँ उन्हें इस गोपाल के जन्म आदि का ठीक-ठीक पता लग गया। अब वह आपसे अपनी पैतृक संपत्ति के लिए अवश्य झगड़ा करेगा, यह निश्चय है।

'कैसे पता लगा, किसने पता दिया ?'

'सोमल्लदेव की स्त्री जीवित है और उसी प्रासाद में रहती है, उसीसे यह सब वृत्त इन्हें ज्ञात हुआ। उसी प्रासाद में इस गोपाल का जन्म हुआ, वहीं से पाँच वर्ष की अवस्था में गुम हुआ और धार राज्य के एक ज्योतिषी ने उसे पालन-पोषण कर युवा बनाया। इस प्रकार जन्म आदि का वृत्त जानकर अब वह आपका पूरा शत्रु हो गया है।'

'देखो, उस समय की जरा सी ढिलाई का ऐसा परिणाम हो गया।'

'पर उस समय यह शंका भी न थी कि सोमल्लदेव की पत्नी गर्भ से है, नहीं तो वह कैसे निकल जा पाती। हाँ भागने पर अवश्य शंका होनी चाहिए थी पर भाग्य का लेख अमिट है। उस समय जो सहज में हो जाता वह अब कठिन कार्य हो गया है।'

'पर उस कंटक को भी मार्ग से दूर करना ही होगा।'

'क्या कहूँ, प्रयास तो किया था पर वह निष्फल गया और दो कुशल चर भी हाथ से खोए।'

'क्या क्या, कैसा प्रयास ?'

'यही कि कुल पता लेकर जब लौटा तो वीरगढ़ी के पास युद्ध की तैयारी में व्यस्त गोपाल को नित्य जंगल में आते-जाते देखकर मैंने दो कुशल चरों को उसे मारने के लिए ठीक किया। आधा पुरस्कार नगद देकर आधा कार्य होने पर देने का वचन दिया। उनमें से एक तो वही था, जो उस घटना के समय भी साथ था पर वे कुछ न कर पाए और मारने जाकर स्वयं मारे गए। यह समाचार लेकर मैं आपके पास चला आया।'

'तब तो यह युवक भयंकर शत्रु हो उठा है और अब शीघ्र ही इसको समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।'

'और साथ-साथ वारेंद्रनारायणसिंह को भी शत्रु समझ लीजिए। वह उसकी प्राणपण से सहायता करेंगे। उसकी पुत्री सुंदरी इरा गोपाल से प्रेम करती है और गोपाल का वंश जाति आदि जानते ही वारेंद्रनारायणसिंह दोनों का विवाह कर आपसे युद्ध ठान देंगे।'

'क्या उनकी पुत्री अत्यंत सुंदरी है ?'

'सहस्रों में एक और अश्वचालन तथा शस्त्रविद्या में भी कुशल है। मैंने उसे देखा है। इस समय वह वीरगढ़ी में अकेली ही है क्योंकि वारेंद्रनारायणसिंह, उनके पुत्र तथा गोपाल सभी अपनो

सेना के साथ दो ही एक दिन हुए युद्ध के लिए चले गए हैं। महाराज भी नाम के लिए साथ हैं पर सेना का कुल अधिकार इन्हीं लोगों के हाथ में है।'

'हाँ, हमें भी आज्ञा मिली है कि अपनी सेना के साथ तुरंत चले आओ पर अब तो अपना कार्य देखना है, कुछ न कुछ बहाना कर दिया जायगा। अभी तक तो केवल एक ही से भय है, विवाह हो जाने पर उसके शक्तिसंपन्न श्वशुर उसके पूर्ण सहायक हो जाएँगे तथा दुर्बल शत्रु प्रबल हो जायगा। अतः उस कन्या को हटा देना ही पहिले आवश्यक है और साथ ही ऐसा भी प्रबंध करना चाहिए कि युद्ध के अवसर में गोपाल को समाप्त कर दिया जाय, जिससे शंका एकदम मिट जाय।'

'यह उपाय तो बहुत ठीक है। (अपने साथी को लक्ष्य कर) अच्छा शिवसिंह आप चार पाँच साथियों के साथ राज सेना में जाकर मिल जायँ और अवसर देखते रहें। यदि गोपाल युद्ध में मारा जाय तो आप से आप काम निपट जायगा और यदि वैसा न हो तो आप किसी न किसी प्रकार उसका अंत कर दें। ठाकुर साहब आपको प्रसन्न कर देंगे।'

'ठाकुर साहब तो अन्नदाता ही हैं, इनके कार्य में शरीर काम आ जाय तो इनसे उऋण ही हो जाऊँ। हाँ, साथियों के लिए कुछ व्यय करना होगा।'

'आप चल कर तैयारी करें, आकर सब प्रबंध किए देता हूँ।'

शिवसिंह के जाने के बाद जाजल्लदेव ने रामसिंह से कहा कि 'अब गढ़ी पर चढ़ाई करने का प्रबंध होना चाहिए।'

'यदि गोपाल वहीं समाप्त हो जाय तो इस व्यर्थ की चढ़ाई से क्या लाभ? आपको बाद में इसके कारण कष्ट न उठाना पड़े।

अकारण कालिंजर के प्रधान सेनापति की गढ़ी पर चढ़ाई करने का क्या फल होगा, यह आप स्वयं समझ लीजिए।'

'यदि वह समाप्त न हो सका तब आते ही अपने को प्रकट कर अपनी पैतृक संपत्ति लौटाने का प्रयत्न करेगा और उस समय यही प्रधान सेनापति उसका प्रधान सहायक बन जायगा। नहीं, चढ़ाई करना आवश्यक है, फल बाद को सोचा जायगा।'

'(मुस्किराकर) आपके कुछ और भी विचार हैं। जैसी आज्ञा, पर कम से कम पाँच सौ सैनिक ले चलना होगा। वहाँ गढ़ी में तीन सौ सेना है, इसलिए यह चढ़ाई भी अत्यंत गुप्त रूप से ही होनी चाहिए।'

'यह सब प्रबंध तुम्हीं करो, हम साथ रहेंगे। इस समय यहाँ सात सौ सैनिक हैं, कुछ छोड़ कर बाकी सब साथ ले लो। कुछ ज्ञात है कि राज सेना कहाँ होगी।'

'राज सेना प्रायः त्रिपुरी की सीमा के पास पहुँच गई है और गोपाल भी गढ़ी की सेना के साथ परसों चला गया है। वह भी आज वहाँ पहुँच जायगा।'

'तो बस कल ही यहाँ से यात्रा आरंभ कर देनी चाहिए।'

'जैसी आज्ञा, तो मैं चलता हूँ प्रबंध ठीक कर दर्शन करूँगा।'

इधर इस प्रकार वीरगढ़ी पर चढ़ाई करने तथा इरा का अपहरण करने का प्रबंध हो रहा था और उधर वीरगढ़ी में गोपाल के बिदा होने के चौथे दिन संध्या के समय उसी बाग में कुमारी इरा तथा सोमी टहलती हुई बातें कर रही थीं। सोमी का घाव भर आया था और वह इस योग्य हो गई थी कि टहल सके तथा वैद्यराज ने इसके लिए आज्ञा भी दे रखी थी। वे किसी बात पर खिलखिला कर हँस रही थीं कि एकाएक अनंत दौड़ता हुआ आता दिखलाई पड़ा। ये दोनों सन्न होकर उसकी ओर देखने

लगीं। उसने पहुँचते ही कहा कि 'शत्रु आ पहुँचे और यहाँ से दो तीन कोस पूर्व जंगल में ठहरे हुए हैं।'

'अनंत, कुछ पता लगा कि कितने शत्रु हैं?'

'नहीं, अभी तक नहीं पता लगा है। समाचार पाते ही सूचना देने चला आया। हाँ, कई मनुष्यों को पता लगाने को भेज दिया है और यहाँ भी ठाकुरों से सतर्क रहने को कहता आया हूँ। गढ़ी पर सर्वत्र पहरे का प्रबंध हो गया है और फाटक पर भी दूने सैनिक दल बाँध कर पहरा दे रहे हैं।'

'अच्छी बात है, कोई भय नहीं है। आवें, सिंह की यह माँद खाली नहीं है। अनंत, कब तक वे आक्रमण करेंगे, तुम क्या समझते हो?'

'सुबह तक, पौ फटते-फटते वे अवश्य आक्रमण करेंगे।'

'तब तुम भी सन्नद्ध हो जाओ और शीघ्र पता लेकर सूचित करो कि कितनी सेना शत्रु के पास है।'

'जैसी आज्ञा।'

अनंत के जाते ही इरा सोमी को लिवाकर अंत:पुर में चली गई। उसने दासियों द्वारा सब कमरों आदि को दृढ़ता से बंद करवा दिया और उन सबको एकत्र कर ऊपर के कमरे में रखा, जहाँ सोमी को भी रहने की आज्ञा दी। वह बहुत चाहती थी कि साथ चले पर इरा ने नहीं माना। केवल बाहर आने जाने के मार्ग में दृढ़ हृदय पहरेवाली दासियों को सशस्त्र रक्षार्थ नियत कर दिया। इसके अनंतर उसने स्वयं शस्त्र धारण किया, साड़ी को अच्छी प्रकार ठीक कर पटुका कस लिया और उसमें तलवार लगाई, तूणीर को पीठ पर बाँध लिया तथा हाथ में धनुष लेकर वह बाग में होती बाहर आई। अपने पिता के कमरे आदि को पहरेदारों को बुला कर सब ठीक तौर से

दृढ़ता से बंद करवा दिया। इसके अनंतर दुर्ग सेना के अध्यक्ष को बुलवाकर आज्ञा दी कि 'यद्यपि रात्रि में आक्रमण की आशंका नहीं के बराबर है तब भी सावधानी रखना उचित है, अतः अपनी सेना को तीन भाग कर एक एक को चार चार घंटे के पहरे पर नियत कीजिए, जिसमें किसी प्रकार का धोखा न हो।'

सिर झुकाए हुए नायक ने कहा—'जैसी आज्ञा।'

'सैनिकों से कह दीजिएगा कि मैं रात्रि में भी बराबर निरीक्षण करूँगी, कोई भी असावधान न रहे। आराम करता दल भी शस्त्र अपने साथ रखे, समय पर खोजना न पड़े।'

'ठीक है, पर यदि आप ही कष्ट करेंगी तो हम तीन सौ स्वामिभक्त सेवक किसलिए हैं।'

'(मुस्किराकर) उचित ही कहते हैं पर हमें तो तीन सौ स्वामिभक्तों की रक्षा का ध्यान रखना है और आप तीन सौ को केवल एक व्यक्ति का। बहुत विभिन्नता है न, हम अपना कर्त्तव्य करेंगी। यदि पिताजी या भाई होते तो आपको यह राय भी न देनी होती।'

'जैसी आज्ञा।

अध्यक्ष के जाने के बाद ही अनंत आ पहुँचा। इस समय वह अपने युद्धीय शस्त्रास्त्र से खूब सजा हुआ था। कमर में छोटी तलवार लटक रही थी, पीठ पर भाथा बँधा हुआ था, बाईं ओर कंधे से धनुष लटका हुआ था और हाथ में वह एक भारी परशु लिए हुए था। उसने आते ही कहा कि 'प्रायः छ सौ सेना है और कुछ भील भी साथ में हैं। रामगढ़ी के ठाकुर की सेना है और वह स्वयं साथ में हैं।'

'अब तुम क्या करोगे? सोमी को यहाँ रखना उचित है या तुम्हारी बस्ती में भेज दिया जाय।'

'मेरी सम्मति तो यह है कि आप और सोमी दोनों ही वहाँ चली चलें। शत्रु आपको ही हरण करने आया है और यदि वह किसी प्रकार गढ़ी पर अधिकार भी कर पाएगा, जैसा संभव नहीं है, तब भी वह असफल लौट जायगा। वह भीलों की बस्ती में कभी ढूँढ़ने न जायगा, जहाँ आपकी उपस्थिति की उसे शंका भी न होगी। मेरी यही प्रार्थना है।'

'(तेजी से) तुम्हारी मूर्खतापूर्ण प्रार्थना नहीं सुनी जाएगी। एक क्षत्रिय-कन्या, जो युद्धकला को जानती है, शत्रु के भय से कहीं भागकर अपने को छिपा नहीं सकती। देखूँगी कि मेरे रहते मेरी गढ़ी पर कैसे कोई अधिकार कर लेता है। हाँ, तो सोमी के बारे में क्या कहते हो ?'

'(उसी प्रकार से) भील-कन्या भी अपनी स्वामिनी को छोड़ कर आपत्तिकाल में कहीं नहीं जा सकती।'

'(मुस्किराकर) ठीक है, यही होगा। अच्छा भील सेना का क्या प्रबंध होगा।'

'डेढ़ सौ भील गढ़ी में आ गए हैं और अध्यक्षजी के आज्ञानुसार यथास्थान नियत कर दिए गए हैं। पचास भील गढ़ी के बाहर फैले हुए हैं। अध्यक्ष ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं आपका शरीररक्षक बनूँ क्योंकि आपने रात्रि में निरीक्षण करने को उनसे कहा है।'

'इस व्यर्थ के कार्य में सेना के एक नायक को क्यों फँसा दिया ?'

'मैंने अपना नायकत्व दूसरों को सौंप दिया है और केवल आपकी रक्षा का भार अपने ऊपर लिया है।'

'और सोमी की रक्षा का भार किसको सौंप आए ?'

'वह आपकी छाया है, आपकी रक्षा में उसकी भी रक्षा है।'

'अच्छा, तो आओ एक बार चारों ओर घूम आएँ ।'

यह कह कर कुमारी इरा ने गढ़ी की एक परिक्रमा कर डाली और तब महल के एक ऊँचे कमरे की छत पर चढ़ कर गढ़ी के चारों ओर देखने लगी। घोर अंधकार छाया हुआ था, जिससे कहीं कुछ नहीं मालूम पड़ रहा था। उसने अनंत की ओर देखा तो वह भी अस्पष्ट सा दिखला रहा था। बोली—

'अनंत, इस घोर अंधकार में शत्रु या मित्र का पहिचानना भी कठिन मालूम होता है, युद्ध में इससे बहुत हानि होने की संभावना है।'

'दो घंटे बाद चंद्रमा निकल आएँगे तब यह बाधा न रह जायगी ।'

'प्राय: दस बजे होंगे और अर्द्धरात्रि के पहिले तो आक्रमण होता भी नहीं दीखता। हाँ, यह तो बतलाओ तुम संध्या के पहिले ही से दौड़ रहे हो, कुछ खा पी लिया है कि रात्रि भर उपवास करोगे।'

'ठीक, ऐसे समय में आपने भी अच्छी खाने पीने की बात निकाली। शत्रु से निपट लेने पर उस सबकी फिक्र की जाएगी।'

'नहीं, यह ठीक नहीं। मैंने कुल सेना को पहिले भोजन कर लेने की आज्ञा दे रखी है और फिर पारी पारी आराम करने को भी कह दिया है ।'

'क्यों न हो, दुर्गा के साथ अन्नपूर्णा भी न आप हैं।'

'अच्छा अच्छा, आओ चलें। यहाँ से कुछ दिखलाता भी नहीं।'

इसके अनंतर इरा बाग में होती हुई अपने अंतःपुर में पहुँची और अनंत के खाने पीने का प्रबंध किया। इसके अनंतर वह स्वयं सोमी के पास गई और उससे सब वृत्त बतला कर तथा

कुछ सुस्ता कर अर्द्धरात्रि होते ही वह पुनः निकली। उसने फिर एक फेरा लगाया और तब एक स्थान पर बैठ गई। उसने कई आदमी नियत किए कि जिस समय शत्रु के आने की शंका भी हो उसी समय तुरंत उसे समाचार दिया जाय। वह कुछ ही देर बैठ पाई थी कि कई आदमी दौड़ते आए और कहा कि 'शत्रु आ पहुँचे हैं और चारों ओर से आक्रमण का प्रबंध कर रहे हैं।'

इरा यह सुनते ही उठ खड़ी हुई और शीघ्र फाटक पर पहिले पहुँची। वहाँ का सब प्रबंध देखा। नीचे फाटक तथा भीतरी आँगन की रक्षा के लिए एक सौ सैनिक तथा पचास भील तैनात थे और उस पर शत्रुओं के प्रायः दो सौ सैनिक अभी दूर से ही तीरों की वर्षा कर रहे थे। इधर से भी उसका जवाब दिया जा रहा था। चंद्रमा निकल आए थे इसलिए उसके प्रकाश में सब साफ दिखलाई दे रहा था। इधर इस प्रकार निरीक्षण कर तथा गढ़ी के ऊपरी फाटकों के सैनिकों को उत्साहित कर वह अन्य ओर के दीवालों की ओर गई। वह इसी प्रकार घूमती हुई और सर्वत्र सैनिकों को उत्साहित करती हुई गढ़ी के ठीक पीछे की ओर पहुँची। इस ओर गढ़ी के कारण ही कुछ ऊपर उठे हुए चंद्रमा का प्रकाश बहुत दूर तक बाहर नहीं पड़ रहा था प्रत्युत् छायाग्रस्त सा होने के कारण वहाँ घोर अंधकार सा था। दुर्ग के अध्यक्ष दूर पर निरीक्षण करते हुए जा रहे थे इसलिए इरा यहीं कुछ देर के लिए रुक सी गई। भीतर से गढ़ी की दीवाल चंद्र किरणों से प्रकाशित हो रही थी और उस पर से सिर उठा कर देखनेवाले को बाहरी शत्रु भली प्रकार से देख सकते थे पर वे शत्रु को न देख पाते थे। यह स्थिति कुछ भयानक थी और शत्रु इससे लाभ उठा सकता था। यहाँ ठहरते ही इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अनंत ने इरा से धीरे से कहा—

'कुमारीजी, यहाँ अभी शत्रु का आक्रमण नहीं हुआ है, जब कि और सब ओर हो चुका है। कोई कारण विशेष है, मुझे शंका हो रही है कि मुख्य आक्रमण कहीं यहीं न हो। शत्रु अंधकार का आड़ लेकर एकाएक दीवाल तक चुपचाप न आ जाय। अपने सैनिक दूर दूर पर खड़े हैं और प्रकाश में बाहर से दिखला रहे हैं पर वे शत्रु को अंधकार में होने के कारण नहीं देख सकते। पहिले इस ओर ध्यान नहीं गया। (चौंकता सा) अवश्य, शत्रु पास आ गए हैं।'

यह कह कर वह झट दीवाल के पास पहुँच गया और वहाँ पड़े हुए पाँच चार पत्थर उसने उठाकर दीवाल के उस ओर फेंक दिए। दीवाल इस ओर भीतर से बहुत अधिक ऊँची न थी, इसलिए पत्थरों के पड़ते ही उस ओर एकाएक शोर मच गया 'मारो, चढ़ जाओ, काट डालो'। शत्रु सैनिक जो चुपचाप दीवाल तक बढ़ते चले आ रहे थे, पत्थरों के पड़ने से यह समझ कर कि गढ़ीवालों को उनका पता लग गया है अब निर्द्वंद्व होकर वेग से चढ़ दौड़े। इधर के सैनिक भी शब्द को लक्ष्य कर तीरों की वर्षा करने लगे और उधर से भी तीरों की बौछार होने लगी। बाहर से दीवाल ऊँची पड़ती थी इसलिए कई सीढ़ियाँ लगा कर शत्रु के सैनिकगण चढ़ते थे पर तीर खाकर नीचे गिर जाते थे। इधर के भी सैनिक घायल हो रहे थे और कम भी थे। अनंत दीवाल पर चढ़ कर गौर से कुछ देख कर लौटा और एक घायल सैनिक को, जिसे अधिक चोट नहीं आई थी, दुर्गाध्यक्ष के पास यह कह कर दौड़ाया कि 'उनसे जाकर कह दो कि मुख्य आक्रमण यहीं हो रहा है और कुमारीजी भी यहीं है, अतः शीघ्र सहायता भेजें।'

इसके बाद एक स्थान पर इधर के कई सैनिकों के गिर जाने

से कुछ निराला सा पड़ गया, जिससे शत्रु बड़ी फुर्ती से वहाँ ऊपर चढ़ने लगे परंतु इरा तथा अनंत की तीरों ने बहुतों को मार गिराया, जिनमें कितने बाहर की ओर तथा कई भीतर की ओर गिरे पर शत्रु बराबर बढ़ते जा रहे थे और बहुत से भीतर भी आ गए। अब इधर के सैनिकों ने यह देखकर तलवार सँभाला और घोर युद्ध होने लगा। इरा तथा अनंत के धनुष बराबर चल रहे थे और प्रत्येक तीर शत्रु का रक्त पीकर ही शांत हो रहा था। इसी समय जाजल्लदेव दीवाल पर चढ़ आया और अपने सैनिकों को ललकार कर आगे बढ़ने की आज्ञा दी। गढ़ी के सैनिक एकत्र होकर अपनी स्वामिपुत्री की रक्षा के लिए जी तोड़कर लड़ रहे थे तथा एक-एक इंच भूमि कई शवों के फड़क जाने ही पर छोड़कर पीछे हटते थे। इरा तथा अनंत की कई तीरें जाजल्लदेव को लगीं पर उसके कवच के कारण निष्फल हो गईं। वह दीवाल फाँद कर भीतर कूद पड़ा और नए आए हुए सैनिकों के साथ बड़े वेग से इधर के सैनिकों पर टूटा पर ये थोड़े स्वामिभक्त सैनिक अटल दीवाल से डटे रहे और उन्हें भी रोक दिया। अनंत की सहायता की ओर भी दृष्टि थी कि वह आती ही होगी और वह प्रायः अपना भाथा खाली कर चुका था। इरा इस प्रकार अपने थोड़े सैनिकों को शत्रु द्वारा आक्रांत देखकर क्रुद्ध हो पड़ी और धनुष फेंक तलवार ले अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करती हुई उनकी पंक्ति में जा खड़ी हुई। यह देखकर अनंत ने भी अपना परशु सँभाला और इरा के आगे आकर शत्रु सैनिकों पर चोट करने लगा। परशु के खिलाड़ी फुर्तीले युवक ने देखते-देखते आठ दस शत्रुओं के रुंड-मुंड अलग कर दिए और रक्त का स्नान करने लगा। वह शीघ्र ही भयानक हो उठा और शत्रु सैनिक उसके आगे से हटने लगे। उसका भयंकर विशाल परशु

जिस पर गिरता था उसको शस्त्र-वस्त्र सहित काटता हुआ मार गिराता था। जाजल्लदेव ने यह देखकर उस पर आक्रमण किया पर इरा ने उसे मार्ग ही में रोक दिया। वह भी एकाएक इरा को अपने सामने पाकर सन्नाटे में आ गया पर इसकी चलती तलवार देखकर अपनी रक्षा करने लगा। इरा ने कहा—'नीच, सिंहों के रहते हुए तुझे इस गढ़ी की ओर आते भय लगता था। आज खाली समझ कर आया है पर नहीं समझा था कि आखिर यह सिंह की ही माँद है। बचा अपने को।'

वास्तव में जाजल्लदेव ने जब देखा कि यह क्षत्रियकन्या खड्गविद्या में निपुण है और गंभीरता से तथा सतर्कता से न युद्ध करने में हारने की आशंका है तब उसने जमकर लड़ना आरंभ किया। इस प्रकार जाजल्लदेव के रोके जाने और अनंत की दानवी मारकाट से उत्साहित होकर गढ़ी के सैनिकों ने शत्रु पर वेग से आक्रमण किया पर शत्रु की संख्या उनसे बहुत अधिक थी और नए सैनिक दीवाल फाँद फाँद कर चले ही आ रहे थे। इसी समय गढ़ी के प्रायः सौ सैनिक अध्यक्ष की अधीनता में शीघ्रता से आते हुए दिखलाई दिए। यह देखकर जाजल्लदेव तड़प उठा और अपने सैनिकों को ललकार कर उसने इरा पर वेग से आक्रमण किया। उसकी भारी तलवार ने इरा के खड्ग पर गिर-कर उसे दो टूक कर दिया और तब उसने तुरंत ही इरा को पकड़ कर उठा लिया तथा दीवाल की ओर दौड़ा। अपने सह-कारियों को गढ़ी पर अधिकार करने की आज्ञा देकर वह इरा को लिए हुए दीवाल के उस पार चला गया।

अनंत यह देख रहा था पर वह बेढब फँसा हुआ था, चारों ओर से शत्रु सैनिक उसपर टूटे पड़ रहे थे और बड़े धैर्य तथा साहस से अपनी रक्षा करता हुआ वह शत्रुओं को काट रहा था।

गढ़ी के इस ओर के बहुत से सैनिक मारे जा चुके थे और बचे हुए इसीकी सहायता करते हुए और स्वामिपुत्री के हरण से उन्मत्त होकर प्राण लेने देने पर तुल गए थे। दुर्गाध्यक्ष ने पहुँचते ही बड़े वेग से शत्रु पर आक्रमण कर दिया और अब घोर युद्ध होने लगा। अनंत अवसर पाते ही धीरे से पीछे हटता दीवाल के पास पहुंच गया और उसे टपकर दूसरी ओर उतर गया। अंधकार कम हो चला था, पर तब भी वह बहुत सँभलकर धीरे धीरे पहाड़ी के नीचे पहुंच गया और वेग से पर बड़ी सतर्कता से उस ओर दौड़ा, जिधर शत्रु के पड़ाव की उसे सूचना मिली थी।

वह प्रायः पड़ाव के पास पहुंचा था कि उसे जाजल्लदेव इरा को लिए, जो स्यात् होश में न थी, कई सैनिकों के साथ आता दिखलाई दिया। पड़ाव में साधारण अनुयायियों के सिवा सैनिक नहीं के समान थे, इसलिए वह आड़ देता हुआ पुनः गढ़ी की ओर दौड़ा। इसने थोड़ी ही दौड़ धूप में अपने पंद्रह बीस भील इकट्ठे कर लिए और उन्हें साथ लेकर फिर वेग से शत्रु के पड़ाव की ओर दौड़ता हुआ चला। ये सब वहाँ शीघ्र ही पहुंच गए और आड़ लेकर कई आए हुए सैनिकों को तीरों से मार डाला। शोर मचा कि शत्रु ने पड़ाव पर धावा कर दिया है और तीर बरसा रहे हैं। जाजल्लदेव तथा बचे हुए सैनिक शस्त्र लेकर निकल आए और उनकी अल्प संख्या देखकर भीलों ने तीर मारते हुए उन पर आक्रमण किया। जाजल्लदेव ने परशुधर अनंत के साथ बीसों भीलों को देख कर और यह समझकर कि और भी सेना आ रही होगी तथा अपने दो तीन सैनिकों को तीर खाकर गिरते देख प्राण बचाकर भागा। साथ ही उसके बचे सैनिक तथा अनुयायीगण भी भागे। अनंत अपने भीलों को तीर चलाते रहने को कह-कर बड़े खेमे में घुस गया, जहाँ उसने कुमारी इरा को घावों के

कारण बेहोश पड़े पाया। पहिले वह हिचकिचाया पर फिर उसने झट उसे उठा लिया और बाहर निकल आया तथा अपने भीलों को साथ लेकर अपनी बस्ती की ओर शीघ्रता से चला। वह एक घंटे में अपनी बस्ती में पहुँच गया तथा वहाँ कई भीलिनियों को कुमारी को सौंप कर और घाव आदि का उपचार करने को कहकर फिर भीलों के साथ गढ़ी की ओर दौड़ा।

गढ़ी में उस स्थान पर खूब युद्ध हो रहा था। शत्रु संख्या में अधिक होते भी अपने सर्दार के चले जाने से निरुत्साहित हो गए पर तब भी लड़ते रहे। अन्यत्र की भी गढ़ी की सेना इसी ओर चली आ रही थी और अपने दल को बढ़ा रही थी। दुर्गाध्यक्ष भी बड़ी वीरता दिखला रहे थे पर अंत में शत्रु प्रबल पड़ने लगा और इन्हें पीछे हटना पड़ा। गढ़ी की सेना पीछे हटते हटते फाटक की ओर आ पहुँची। शत्रु ने इमारतों पर अधिकार कर लिया और फाटक के पास के मैदान में फिर जम कर युद्ध होने लगा क्योंकि ऊपरी फाटक की सेना ने भी अपने साथियों का साथ दिया। इसी समय अनंत ने गढ़ी के पास पहुँच कर बाहर फैले हुए अपने कुल भीलों को एकत्र कर लिया और फाटक पर युद्ध करनेवाले शत्रुओं पर बाहरी ओर से तीरों की वर्षा करने लगा। उसने यह भी शोर मचा दिया कि जाजल्लदेव घायल होकर भाग गया, जिसे सुनते ही और पीछे से शत्रु द्वारा अपने को आक्रांत समझ कर रामगढ़ी की सेना का पैर उखड़ गया और वह भागी। कुछ दूर तक उसे खदेड़ कर अनंत फाटक पर आया और उसे खुलवा कर भीलों के साथ भीतर चला आया। इसके अनंतर वहाँ के नायक से कुछ बातें कर फाटक की रक्षा भीलों को सौंपी और कुल सैनिकों के साथ वह गढ़ी पर पहुँच गया। इस सहायता के आते ही ऊपर की सेना में उत्साह फैल गया और यह

सुन कर कि शत्रु सरदार घायल हो कर भाग गया है, वे बड़े वेग से शत्रु पर टूट पड़े। अनंत ने भी अपना परशु सँभाला पर शत्रु-सेना यह सब देख और सुन कर एकदम उत्साहहीन हो गई और लड़ती हुई पीछे हटने लगी। गढ़ी की सेना संख्या में भी अब अधिक हो गई थी और इस कारण शीघ्र ही उसने शत्रुओं को घेर सा लिया। शत्रु को भागने के लिए मैदान न था पर दीवाल तक पहुँचने पर बहुत से उसे लाँघ लाँघ कर भागे, बहुत से मारे गए और बचे हुए कैद हुए।

सुबह होते-होते गढ़ी शत्रु से खाली हो गई पर युद्ध ऐसा भयंकर हुआ था कि गढ़ी के केवल आधे सैनिक साबूत बचे थे। भीलों में भी प्रायः एक चौथाई मारे गए थे पर शत्रु की बहुत हानि हुई। केवल एक तिहाई सैनिक भागकर बच पाए, जिनमें अधिकतर वे ही थे, जिन्होंने गढ़ी में पैर नहीं रखा था।

त्रिविंश परिच्छेद

भीलिनियों के निजी उपचार से कुमारी इरावती की अचेतनता प्रातःकाल होते होते दूर हो गई और उसके घाव भी ओछे होने तथा जंगली दवा के कारण कष्टप्रद नहीं थे। चेतनता के लौटते ही उसे गढ़ी की चिंता हुई और उसने पूछताछ आरंभ किया पर कोई कुछ बता न सका। वह उद्विग्न हो बिछावन से उठ खड़ी हुई और झोपड़े से बाहर निकल आई। ठंडी हवा लगने से उसका चित्त कुछ शांत हुआ तब उसने अपने वहाँ पहुँचने का वृत्तांत पूछा। भीलिनियों ने, जो साथ साथ थीं, कुल वृत्तांत बतला दिया कि किस प्रकार उनके सर्दार उसे वहाँ पहुँचा कर पुनः गढ़ी की ओर चले गए थे। इरा टहलती हुई उस बस्ती से कुछ आगे बढ़ आई थी कि एकाएक उसे सामने से अनंत अकेला आता दिखलाई दिया, जो एकदम रक्त के कारण आपादमस्तक लाल हो रहा था। वह कुछ लड़खड़ाता हुआ परशु के सहारे चला आ रहा था और यह नहीं ज्ञात हो रहा था कि वह शत्रु ही के रक्त से सना है या उसके शरीर से निकला हुआ भी है। इरा भी उसकी ओर चली और शीघ्र पास पहुँचते ही पूछा कि 'गढ़ी का क्या हाल है ?'

'सब ठीक है, चिंता न कीजिए।' (भीलिनियों से) 'देखो, तुम लोग किसी से यह न कहना कि कुमारीजी यहाँ हैं और अन्य लोगों को भी मना कर देना, जिन्होंने इन्हें यहाँ देखा है। तुम रामी गढ़ी पर चली जाओ और वहाँ सोमी से भेंट कर उसीसे एकांत में कह देना कि कुमारीजी यहीं हैं पर वहाँ वह कुछ

किसीसे न कहे और अंत:पुर की पूरी रक्षा रखे। यह कह कर तुम लौट आना। अच्छा, जाती जाओ।'

इरा यह सब बातें सुन रही थी और विचित्र दृष्टि से अनंत की ओर देख रही थी। वह उसके प्रश्न का कुछ उत्तर न देकर और न उस से कुछ पूछ कर अपनी मनमानी आज्ञा दे रहा था। भीलिनियों के चले जाने पर उसने इरा की ओर देखा और नम्रता से कहा—

'क्षमा कीजिएगा। इन सबके सामने न आपसे कुछ कह सकता था और न कुछ पूछ सकता था। मैं तो स्वयं युद्ध समाप्त होते ही आपसे सब वृत्तांत कहने के लिए भागा आ रहा हूं पर अशक्त हो जाने के कारण जल्दी न आ सका। आप रुष्ट क्यों हो गईं? (मुस्किराकर) मुझे तो आपने उपदेश दिया था कि बिना समझे शंका मत किया करो और अब आप स्वयं।'

'(मुस्किराकर) अच्छा, अच्छा, अब तो बताओ पर (आशंका के साथ) पहिले यह कहो कि तुम्हें अधिक चोट तो नहीं आई है। सारा शरीर तो लाल हो रहा है, कुछ पता नहीं चलता।'

'नहीं अधिक घायल नहीं हुआ हूं पर थकावट बहुत मालूम होती है।'

'तब अभी कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। पहिले चलकर रक्त को धोकर घावों की पट्टी कर लो तब बातचीत होगी। नहीं, कुछ मत कहो, आओ।'

यह कहकर वह घूम पड़ी और बस्ती की ओर चली। अनंत ने पूछा—

'पर आपकी कैसी तबीयत है, विशेष चोट तो नहीं आई।'

'नहीं, यों तो पाँच छ स्थानों पर चोट आ गई हैपर है सब ओछी। मैं विशेष युद्ध ही कहाँ कर पाई, तुम जो हमारे आगे आगे

रहकर हमारी रक्षा कर रहे थे। उस सर्दार की भारी तलवार से मेरी तलवार ही टूट गई और मैं कुछ कर न सकी तथा घायल भी हो गई। वह दैत्य मुझे उठा ले भागा। उससे तो तुम्हीं ने मेरा उद्धार किया है, ऐसा सुनती हूँ क्योंकि मैं तो अचेत हो गई थी और थोड़ी देर हुई कि होश में आई।'

'(हँसता हुआ) वह तो आपको छोड़ कर ऐसा भागा कि क्या कहूँ?'

'(गंभीरता से) इस बार गढ़ी की और हमारी रक्षा तुम्हींने किया है, अनंत, यह हम सदा याद रखेंगी।'

'यह आपकी कृपा है जो आप ऐसा कहती हैं, मैं तो आपका दास हूँ, यथाशक्ति सेवा करता हूँ और यावज्जीवन करता रहूँगा।'

'(अनंत की ओर देख कर) तुम अपने को क्यों इतना छोटा समझते हो अनंत। तुम्हारे सामने युद्ध में तो क्षत्रिय वीरों का साहस डट कर लड़ने का न हो रहा था और जिधर तुम जाते थे वे काई की तरह फट कर भागते थे। मैं समझती हूँ कि इस युद्ध में तुम्हारे जोड़ का कोई भी वीर मुझे दिखलाई नहीं दिया और सबसे अधिक शत्रु तुम्हींने मारे। मैं तो तुम्हारा युद्ध देखने में लग गई। यह परशु भी तुम्हारा दूर से ही देखने योग्य है।'

'(लज्जित सा) आप तो अब मेरी हँसी ले रही हैं, मैं तो आपके साथ साथ बराबर रहा और जो कुछ किया होगा वह आपकी रक्षा के लिए ही किया होगा। मुझे कुछ भी याद नहीं।'

ये दोनों बस्ती में पहुँच गए और अनंत इरा को बड़े झोपड़े में छोड़ कर एक दूसरे झोपड़े में चला गया और वहाँ से प्रायः एक घंटे में अपना शरीर स्वच्छ कर तथा पट्टियाँ बँधवा कर एक लाठी के सहारे अपने बड़े झोपड़े में आया और इरा से आज्ञा

लेकर एक बिछावन पर लेट गया। वह काफी घायल हो चुका
था और युद्ध के उत्साह के शांत हो जाने पर निर्बलता तथा
थकान ने धर दबाया था। इसे बीस बाईस घाव लगे थे और
सारा शरीर पट्टियों से ढँक गया था पर थे सभी हलके क्योंकि
इसके शत्रुओं का साहस ही न पड़ा था कि पास पहुँच कर भर-
पूर चोट देते। इरा भी सचेत होते ही उतनी दूर जाने आने के
कारण तथा सुकुमार होने से फिर थक गई थी और एक ऊँचे
बिछावन पर पहिले ही से लेटी थी। अनंत को इस प्रकार घायल
देख कर वह अत्यंत चिंतित हो उठी और उसने कहा—

'मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने घायल हो गए हो, तुम तो
बिलकुल पट्टियों में छिप से गए हो।'

'इसमें के प्रायः सभी घाव दो तीन दिन में बिलकुल
अच्छे हो जाएँगे, केवल दो तीन ऐसे हैं कि कुछ अधिक समय
लेंगे। युद्धकाल में क्या घावों की गिनती की जाती है। स्वामी
जो कार्य सौंप गए थे, वह यथाशक्ति पूरा कर पाया यही बहुत है।
यह शरीर तो आपकी सेवा में अर्पित है, आप कुछ चिंता न करें ?
विशेष कष्ट नहीं है।'

'घावों के ठंढे होने पर कष्ट की आशंका है, अभी तो नहीं
मालूम हो रहा है तुम्हें और इसीसे मुझे चिंता हो रही है।'

'कुछ कष्ट न होगा और आप तो अभी यहाँ चार पाँच दिन
हुई हैं, जो कुछ होगा देखती रहिएगा।'

'क्यों, किसलिए हमें रोकते हो? गद्दी का प्रबंध कौन देखेगा ?'

'पहिले मैं सब वृत्तांत आपसे कहता हूँ उसे सुन लीजिए।
(कुछ मुस्किराकर) कहाँ तो मेरे लिए इतनी चिंता प्रगट कर रही
थीं और कहाँ अभी ही चली जाने को तैयार हो गईं। सोमी भी

यहाँ नहीं है और न अभी इतनी दूर आने योग्य है। आप लोग जो न कहें और न करें।'

'(हँसकर) तुम सोमी से कम बकवादी नहीं हो। अच्छा न जाऊँगी और मैं अभी ही जाने को कह भी नहीं रही थी। सोमी से कहूँगी कि तुम्हें जानबूझ कर अनंत ने गढ़ी में रोक दिया था और मुझे अपने यहाँ रोक रखा था। अच्छा, अब सब हाल बतलाओ।'

'(हँसता हुआ) पर वह दुःखी न होगी और न स्वामी ही सुनकर दुखी होंगे।'

इस बात पर गोपाल तथा सोमी के घायल होने के समय की बात के संकेत पर इरा खिलखिला कर हँस पड़ी। इसके बाद अनंत ने जाजल्लदेव के इरा को हरण कर भागने से लेकर शत्रु के भाग जाने तक का यथातथ्य पूरा वृत्तांत कह डाला। यह सब सुन कर इरा ने गंभीरता से कहा—'कृतज्ञता प्रकाश कर तुम्हारे इस स्नेह को खोना नहीं चाहती। तुम और सोमी हमलोगों के इतने निकट आ गए हो कि हमारी रक्षा के लिए जो कुछ तुमने किया है, उसे बार-बार करा पाने का मैं अपना स्वत्व समझती हूँ। अच्छा, अब तुम आराम करो, देखो इतनी बकवाद करने के कारण तुम्हारे मुख पर मुर्दनी सी छा रही है। क्या, यहाँ गर्म दूध मिल सकेगा।'

'आता ही होगा, कह आया था।'

इसी समय एक भीलिनी पत्थर के प्यालों में गर्म दूध लेकर आई और इरावती के सामने रख कर चली गई। इरा ने पहिले अनंत को एक प्याला दूध दिया और उसे सोने को कह कर तथा मुख फेर कर स्वयं भी एक प्याला दूध पी लिया। इसके बाद झोपड़े से बाहर आई। उसने बाद को आए हुए भीलों से एक भीलिनी द्वारा गढ़ी का हालचाल पुछवाया तथा लौट कर आई हुई रामी से सोमी का वृत्तांत पूछ कर उसी झोपड़े में लौट आई।

अनंत एक दम बेसुध सा सो रहा था इसलिए वह भी अपने बिछावन पर लेट रही। दोपहर होते ही उसने अनंत को, जो अब अचेत हो रहा था, पत्थर ही के चम्मच से दूध पिलाया और उसके घावों को दवा के पानी से तर कर दिया। इसके अनंतर वह अपने खाने पीने का कृत्य पूरा करने चली गई।

संध्या को एक वृद्ध भील ने आकर अनंत की सब पट्टियाँ बदलीं और दवा आदि रात्रि भर तर रखने के लिए देकर जाने लगा तब इरा ने पूछा—

'अनंत का चेहरा एकदम सफेद पड़ गया है और प्रायः सबेरे ही से वह बेहोश पड़ा है। कोई भय की बात तो नहीं है?'

'बेटी, रत्ती भर भय नहीं है। रक्त बहुत इनके शरीर से निकल गया है, इसीसे ऐसा हाल है। नहीं तो इतना बलवान युवक कभी होश न खोता और इसी कारण वह शीघ्र अच्छा हो जाएगा। मैं जानता हूँ, क्योंकि इन्हें बचपन से खिलाया है, इनका शरीर लोहे सा कड़ा है पर इतने घाव खा गए हैं कि निर्बलता ने दबा लिया है। दो तीन ही दिन में यह ठीक हो जाएँगे। रात्रि में स्यात् कुछ प्रलाप करें, क्योंकि तब निद्रा का दिन भर सोने से वेग कम हो जाएगा तो भय न कीजिएगा। दवा से पट्टी तर रहनी चाहिए और दूध मिलता रहना चाहिए। बस,'

बूढ़ा यह कह कर चला गया और इरा ने स्वयं सुश्रूषा करने का भार अपने ऊपर लिया। क्योंकि भीलिनियों पर उसका विश्वास नहीं पड़ता था। प्रायः अर्द्धरात्रि हो रही थी और इरा को कुछ झपकी आ रही थी कि उसने किसीको पुकारते सुना और वह चौंक कर उठ बैठी। उसने चारों ओर देखा पर वहाँ कोई नहीं था। उसने उठ कर अनंत का मुख देखा, जो बिल्कुल सफेद हो रहा था। उसके ओठ कुछ हिल रहे थे। वह ध्यान से देख

रही थी कि उसके मुख से कुछ शब्द धीरे धीरे निकलने लगे और रुक रुक कर वह प्रलाप सा करने लगा। इस प्रलाप में कुमारी इरा का तथा बीती घटनाओं का ही उल्लेख अधिक था। यह देख-सुन कर इरा के नेत्रों में आँसू आ गए। अनंत का विशाल फुर्तीला शरीर निश्चेष्ट सा पड़ा हुआ था। उसने तुरंत चम्मच से पहिले उसे दूध पिलाया और सब पट्टियाँ एक एक कर तर कीं और तब कुछ सोचती हुई अपने बिछावन पर आकर लेट गईं।

दो दिन और रात्रि इसी प्रकार व्यतीत हो गई और तीसरे दिन सुबह अनंत की अचेतनता दूर हो गई। उसने इरा की ओर देखा और बोला—'अरे, सुबह हो गई और मैं दिन रात सोया ही रह गया। आपको अत्यंद कष्ट हुआ होगा।'

'अब क्या हाल है, जी कुछ हलका हुआ।'

'बहुत अच्छा है। गढ़ी पर तो सब कुशल है।'

यह कहकर वह उठ बैठा और इरा ने मुस्किराते हुए कहा—'सोमी कुशलपूर्वक है और उसके सिवा वहाँ है कौन?'

'जी, यह तो आपने बतला दिया पर साथ ही यह भी बतला दें कि शत्रु का तो अब कोई भय नहीं रह गया।'

'तनिक भी नहीं, हाँ यह भी पता लगा है कि आज ही त्रिपुरी की सेना से युद्ध होने को है, स्यात् आरंभ भी हो गया हो। कल सुबह तक युद्ध का वृत्तांत अवश्य मिल जाएगा। बड़ी चिंता लगी है।'

'होनी ही चाहिए, स्वामी की रक्षा के लिए हम आप यहाँ ईश्वर की प्रार्थना करते रहेंगे।'

'बस, प्रत्युत्तर दे दिया। गढ़ी में सोमी के सिवा कौन था? वहाँ तो पिता, भाई सभी हैं और सबके ऊपर अपने देश की स्वतंत्रता तथा प्रतिष्ठा है।'

'रुष्ट क्यों होती हैं। मेरे हृदय में जो बात पहिले आई वही मैंने कह दिया। आप लोगों के लिए देश है, प्रतिष्ठा है, सभी कुछ है पर हम दासों के लिए तो स्वामी तथा स्वामिनी ही सब कुछ हैं।'

'सोमी ने अपनी ही तरह तुम्हें भी बातें करना सिखला दिया है। कल तक युद्ध के विषय में पता लग ही जायगा।'

'शत्रु की सेना अपने राज्य की सीमा के भीतर कब आई, यह कुछ ज्ञात हुआ। आज युद्ध किस प्रकार हो सकेगा ?'

'आप दो दिन-रात्रि यों ही पड़े थे, एक नहीं, आपको मालूम क्या ? बस कह दिया कि किस प्रकार हो सकेगा।'

'दो दिन और रात्रि ! आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ा ! मेरी मूर्खता थी कि उसे आने से रोक दिया। आपको अकेले ही रहना पड़ा, यहाँ कोई बोलनेवाला भी नहीं था।'

'उँह, इसकी चिंता न करो। तुम्हारी हालत देखकर बड़ा भय लगता था। एकदम अचेत पड़े थे, रात्रि में तो तुम्हारा प्रलाप सुनकर मेरी चिंता और भी बढ़ गई पर बूढ़े वैद्य की बातों से ढाढ़स बँधा हुआ था। बराबर दवा से पट्टियाँ तर करती रही। अब तुम्हारे होश आने से कुछ शांति मिली।'

'अरे, तो यहाँ किसी दासी को क्यों न रख लिया।'

'तुम जो पड़े-पड़े अंट-संट बका करते थे, दूसरा सुनता तो क्या न क्या अर्थ लगाता। किसीको अपनी अनुपस्थिति में यहाँ आने ही न दिया।'

'मैं बकता था ? क्या मेरा मुख ही आपको कष्ट देने के लिए होश में था। मुझे कुछ भी ध्यान नहीं कि क्या कहता था ?'

'जो बात मनुष्य के हृदय में छिपी रह जाना चाहती है, वही

प्रलाप में प्रकट होती है, इसलिए बकनेवाला नहीं प्रत्युत् सुनने-वाला ही जान पाता है।'

'हो सकता है, पर मैं क्या बकता था इसे पूछने की भी धृष्टता न करूंगा, केवल इतना कहूँगा कि यदि मेरे मुख से कोई अनुचित बात निकली हो तो आप क्षमा करेंगी।'

'नहीं, क्षमा कैसी, रुष्ट होने पर क्षमा की बात आती है और जो बात मैंने सुनी है उससे रुष्ट न होकर मैं तुम्हारा आदर ही करूँगी पर पूछने पर भी बतलाऊँगी नहीं। स्यात् तुम पूछोगे भी नहीं ?'

'आपने ठीक समझा है। (खिन्न स्वर से) मुझे तो इस बात का कष्ट हो रहा है कि आपकी रक्षा ही के लिए मैंने आपको यहाँ रोका और स्वयं दो दिन तक इस प्रकार अचेत पड़ा रह गया। यदि शत्रु किसी प्रकार पता लगाते यहाँ पहुँच जाते और कुछ हो जाता तो स्वामी को क्या मुख दिखलाता ? अवश्य ही हमारे एक-एक भील कट जाते तभी आप तक शत्रु पहुँच पाते। साथ ही स्वगृह में आपकी सेवा तथा आराम का प्रबंध तो कुछ न कर सका उलटे आपसे सेवा कराया।'

'यह सब क्या कह रहे हो, व्यर्थ का मनस्ताप क्यों बुलाते हो। स्वामी की सेवा सदा करना जिस प्रकार तुम्हारा धर्म है उसी प्रकार कष्ट के समय सेवक की सेवा करना स्वामी का धर्म है। हमारे लिए तो तुम इतने घायल हुए और क्या हमें उचित था कि तुम्हें उसी प्रकार छोड़कर अपने आराम की चिंता करती। पति-पत्नी, मित्र-मित्र, स्वामि-सेवक आदि पारस्परिक संबंध हैं और प्रत्येक को दूसरे के लिए अवसर पड़ने पर समान रूप से कार्य करना पड़ता है। इसकी चिंता मत करो।'

'आप इस प्रकार का उदार विचार रखती हैं, यह सुनकर

मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मेरी यह मानसिक व्यथा दूर हो गई। आज सोमी को इस समय बुलवा लेता हूँ, दिन भर रहेगी, जिसमें आपका भी मन बहलेगा और जो कुछ नया समाचार मिला होगा उसका भी पता लग जायगा।'

यह कहकर अनंत ने आवाज दी, जिससे एक भील भीतर आया। इसने उसे आज्ञा दी कि 'रामी को गढ़ी पर भेज दो कि सर्दारिन को इसी समय लिवा आवे और यदि कार्य होगा तो फिर चली जाएँगी।' यह सुनकर दरबान चला गया।

इसीके बाद वह वृद्ध भील आया और अनंत को चैतन्य देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। कहने लगा कि 'मैंने कुमारीजी से इस गढ़ी की चढ़ाई में तुम्हारे सब कार्यों को सुना है, ईश्वर करे कि तुम अपने स्वामी की इसी प्रकार सेवा करने के लिए चिरायु रहो। बेटा, सेवाकार्य ही सबसे बढ़ कर है और इसीसे चित्त को शांति मिलती है।' इसी प्रकार कहते हुए उसने सब पट्टियाँ बदलीं और कई साधारण घावों पर जो ठीक हो गए थे, केवल मलहम सी किसी वस्तु का फाहा मात्र रख कर छोड़ दिया। बूढ़े के जाने पर अनंत एक अन्य भील के सहारे नित्य कृत्य से निपटने चला गया।

इसीके बाद थोड़ी देर में सोमी आ पहुँची और दोनों बड़े प्रेम से मिलीं। आपस में एक दूसरे से बीती हुई सब बातें बतलाईं और तब सोमी ने कहा—

'गढ़ी में सब प्रबंध अब ठीक हो गया है और नायकजी ने रामगढ़ी की ओर कई थाने दूर तक बैठा दिए हैं कि पुनः इस प्रकार का अचानक आक्रमण न हो सके और कुछ चरों को आपका पता लगाने भेज दिया है। कैदी सभी कालिंजर भेज दिए गए हैं, क्योंकि यहाँ का कुल वृत्त वहाँ लिख भेजा गया था

और वहाँ से महारानी की ऐसी ही आज्ञा आई थी। उन्होंने आपको भी वहीं आने के लिए लिखा था। मैंने सबलसिंह के चर भीषम मिश्र से धीरे से कह दिया है कि आप सुरक्षित स्थान में हैं और महारानीजी से कह दीजिएगा जिसमें वह घबड़ाएँ नहीं। प्रकट रूप में आपके गढ़ी में न होने की सूचना भेज दी गई है।'

'युद्ध का कुछ समाचार मिला है।'

'अभी नहीं, पर आज अवश्य युद्ध होगा, जिसकी सूचना कल तक आवेगी।'

'अब क्या करना चाहिए, हमें यहीं रहना चाहिए कि गढ़ी पर चलना चाहिए।'

'वह कहाँ हैं, उनकी क्या सम्मति है ?'

'बस वह और उनकी के फेर में पड़ी, तू अपनी राय बता।'

'बात यह है कि अभी युद्ध समाप्त होने पर भी आपके पिता आदि को गढ़ी पहुँचने में कई दिन लग जायँगे और वहाँ पहुँचते ही सभी को, शत्रु को भी, आपकी उपस्थिति ज्ञात हो जाएगी। गढ़ी की सेना और भी कम हो गई है। शत्रु पुनः आक्रमण करे, इसकी संभावना है, यदि वह इस पराजय के बाद भी इस योग्य हो। कालिंजर चलना चाहें तो उसके लिए मेरी सम्मति अवश्य है।'

'नहीं, कालिंजर ही जाना होगा तो यही स्थान अच्छा है, गढ़ी के पास तो हूँ। क्षण क्षण का समाचार तो मिल सकता है। अनंत भी आ गए, देखें यह क्या कहते हैं।'

अनंत को देखते ही सोमी उठ खड़ी हुई और उसके मुख पर प्रसन्नता तथा व्यथा दोनों झलकने लगी। उसने बढ़ कर भील को बिदा कर दिया और अपने सहारे लिवा लाकर बिछावन पर

बिठाया। इसके बाद कुल वृत्तांत कह कर गढ़ी पर जाने या न जाने के बारे में उससे राय पूछी गई। अनंत ने कहा—

'अभी दो दिन और ठहरिए, तब तक विजय का भी समाचार आ जाएगा तथा तब जो कोई भी शत्रु होगा उसका पुनः गढ़ी पर आक्रमण करने का साहस न हो सकेगा। सोमी को भी अब गढ़ी ही में रहने की आवश्यकता नहीं रह गई है और आपका मन बहलाने को यहाँ रह सकती है। हम भी दो दिन में बहुत कुछ ठीक हो जाएँगे तथा साथ ही चलेंगे।'

'कुमारीजी, यह आपको अकेले अभी गढ़ी में नहीं जाने देना चाहते, इसलिए दो दिन और यहीं ठहरिए। हम सब साथ ही चलेंगे।'

अंत में यही राय निश्चित रही और दो दिन बाद इरा, सोमी तथा अनंत सभी गढ़ी पहुँच गए। विजय का समाचार भी आ पहुँचा था इसलिए गढ़ी तथा कालिंजर राज्य भर में आनंदोत्सव मनाया जा रहा था और बिजयी सेना के समारोह के साथ स्वागत करने का प्रबंध भी किया जा रहा था।

चतुर्विंश परिच्छेद

चार पाँच दिनों के अनंतर कालिंजर से बिदा होकर सामंत वारेंद्रनारायणसिंह, रामेंद्रनारायणसिंह तथा गोपाल गढ़ी आए, जिनका अच्छी प्रकार स्वागत किया गया। गढ़ी की सेना फाटक के दोनों ओर पंक्ति में सजकर खड़ी थी और फाटक पर स्वयं कुमारी इरावती पुरोहित तथा अन्य ब्राह्मणों के साथ स्वागत के लिए उपस्थित थी। सोमी भी उसके साथ में थी और अनंत तथा गढ़ी के नायक फाटक के दोनों ओर खड़े थे। इन लोगों के पहुँचते ही सेना ने सैनिक अभिवादन किया और इन लोगों का नाम ले लेकर उच्च स्वर से खूब जयजयकार मनाया। पुरोहितजी ने ब्राह्मणों के साथ मंगलपाठ करते आशीर्वाद दिया और तब ये लोग इरा आदि से यथा योग्य मिलते हुए साथ-साथ ऊपर गए। सामंतजी अपने कमरे में सबके साथ जाकर बैठे और ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर बिदा कर दिया। जब केवल मुख्य-मुख्य आदमी रह गए तब सामंतजी ने नायक की ओर देखा और उनसे गढ़ी के आक्रमण का कुल समाचार कहने की आज्ञा दी। उसने भी अनंत के आकर शत्रु के पहुँचने के समाचार देने से आरंभ कर कुल विवरण यथातथ्य कह डाला और अंत में कहा कि 'मैं नहीं कह सकता क्योंकि जानता ही नहीं कि जब शत्रु सरदार कुमारीजी को उठा ले गया तब वह कैसे छूटीं। मैं बराबर खोज ही कर रहा था कि चार पाँच दिन हुए कि यह एकाएक भीलराज के साथ यहाँ आ पहुँची। कुछ बातें मैंने इन लोगों से सुनी थीं पर

पूरा ठीक हाल कुमारीजी या (अनंत की ओर संकेत करते हुए) यही बतला सकते हैं।'

अनंत ने पूछे जाने पर सब हाल कहा पर यथाशक्ति अपने साहस, वीरता तथा धैर्य की बातों को दबाता चला गया, जिससे पूरा विवरण अस्पष्ट सा रह गया। इस पर जब रामेंद्र ने कहा कि 'इरा, तुम्हीं सब बातें फिर से कहो तब सब विवरण स्पष्ट होगा' तब उसने कुल वृत्तांत ब्योरेवार कह डाला। अनंत अपनी प्रशंसा सुन सुन कर मानों बोझ से दबा जाता था। वह वहाँ से हट जाना चाहता था पर उठकर चले जाने का उसका साहस न होता था। सामंतजी ने कुल बातें सुनकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से गद्गद स्वर में कहा कि 'अनंत, तुमसे जैसी आशा मुझे थी, उससे बढ़कर तुमने काम किया है। तुमने इरा की रक्षा में भाई के समान ही या उससे बढ़कर प्रयत्न किया है इसलिए आज से तुम हमारे पुत्र ही के समान हो गए।'

अनंत ने उठकर सामंतजी का चरणस्पर्श किया और उन्होंने भी बड़े स्नेह से उसके मस्तक पर हाथ फेरा। रामेंद्र तथा गोपाल बड़े प्रेम से उससे गले लगाकर मिले और तब ये लोग साथ ही बाहर चले आए। इरा अंतःपुर में चली गई और नायक को बिदा कर सामंतजी भी आराम करने चले गए।

संध्या का समय था कि गोपाल अंतःपुर के बाग में घूमते हुए इरा की प्रतीक्षा में टहल रहे थे कि इरा सोमी के साथ पुष्पों की क्यारियों का आड़ देती हुई एकाएक पास पहुँच गई और पूछ बैठी—'किसकी चिंता हो रही है ?'

'जिसका ध्यान कर रहा था, वह तो साक्षात् उपस्थित है, अब कैसी चिंता ?'

'हाँ, क्यों न कहिएगा। जीवित बच गई हूँ और कहीं कारागार में सड़ नहीं रही हूँ, इसीसे अब चिंता नहीं रह गई है।'

'इसका क्या अर्थ? तुम्हारे लिए अवश्य चिंता अब नहीं रह गई है और (दर्प से) जिसने वह अत्याचार किया है उसके लिए भी कोई चिंता नहीं है। उस कायर को केवल दंडमात्र देना है और शीघ्र ही दिया जायगा। दो तीन दिन की देर है, घबड़ाती क्यों हो।'

'पर सबलसिंह कहाँ हैं, वह आए ही नहीं।'

'कालिंजर पहुँच जाने पर वह बाहर ही बाहर सामंतजी से कुछ बातचीत कर उसी काम के लिए चले गए हैं और वह शीघ्र ही आने को हैं।'

'वह अब भी इस प्रकार अकेले अज्ञात स्थानों में, जहाँ शत्रु की प्रबलता है, चले जाया करते हैं। आपने रोका नहीं।'

'भला हमारे रोके रुकेंगे। हमारी बातें लड़कपन की कहकर उड़ा देते हैं पर सामंतजी के कहने पर अपने चर तथा कुछ चुने हुए वीर योद्धा साथ लेते गए हैं।'

सोमी ने पूछा—'युद्ध के अवसर पर इस गुप्त शत्रु ने तो आप पर किसी प्रकार का आक्रमण नहीं किया था।'

'(मुस्किराकर) हुआ तो था और सचमुच हमने लड़कपन ही किया था पर सदा सतर्क पितृव्य देव की दृष्टि न होती तथा एक ओर किसीकी स्नेह की छाया न होती तो स्यात् हम आज तुम लोगों से बातचीत करने को रहते भी नहीं और न इरा का उलाहना सुन पाते।'

एक साथ दोनों पूछने लगीं—'क्या हुआ, क्या हुआ?'

'विजय प्राप्त होने के तीसरे दिन हम लोगों ने कालिंजर की ओर यात्रा आरंभ की और दो दिन तक कुशलपूर्वक यात्रा होती

रही। तीसरे दिन वहीं पड़ाव पर ठहरने की आज्ञा हुई इसलिए घूमने के विचार से, क्योंकि पास के पहाड़ी दृश्य बहुत ही लुभावने थे, प्रातःकाल ही निकल पड़ा। मेरे साथ तीन सैनिक थे, जो इस गढ़ी के न थे पर कई दिनों से मेरी सेवा में लगे हुए थे। संयोग ही से इन नए सैनिकों को कालिंजर की सेना का समझ कर कुछ कहा भी नहीं था और न कभी इस बात की जाँच की थी। घूमता फिरता कई कोस तक चला गया और पहाड़ के एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ नीचे ही बड़ा विशाल खड्ड था तथा दूर तक का दृश्य दिखलाई देता था। यहाँ वृक्षों की छाया भी घनी थी। सुस्ताने तथा दृश्य देखने के विचार से वहीं रुक गया। एक ने एक बड़े पत्थर पर कंबल बिछा दिया और हम भी तलवार कमर से खोलकर वहीं रख बैठ गए। इधर-उधर दृश्य देख रहे थे कि कुछ दूर पर एक वृक्ष पर एक मनुष्य को अपने को छिपाकर चढ़ते हुए देखा। सैनिकों की दृष्टि उस ओर न थी और उन्हें संकेत करने का विचार कर ही रहा था कि रस्सी का एक घेरा सा हमारे पीछे की ओर से आकर सिर पर से होते हुए हमारे दोनों हाथों को कसकर बैठ गया। ऐसा उन तीनों में से किसी एक ने किया था और अन्य दो तुरंत हम पर टूट पड़े तथा हमारे पैरों को पकड़ कर दूसरी रस्सी से बाँधने लगे। हम एकदम बेकाबू हो पड़े और स्वभावतः हमारी दृष्टि उस वृक्ष की ओर गई कि जब ये शत्रु हैं तो स्यात् वह मित्र हो। मैंने देखा कि वह एक डाल पर खड़ा हो इसी ओर तीर संधान कर रहा था। साथ ही वह तीर छूटी और पीछे से रस्सी फेंकनेवाला चिल्लाकर गिरा, ऐसा मालूम हुआ। पैर बँध चुके थे इसलिए मैं तड़प कर उठा पर गिरता ही था कि उन दोनों ने मुझे थाम कर खड़ा रखा और आप हमारी आड़ में खड़े होकर जिधर से तीर आया था,

उधर ही देखने लगे। वह भी न जाने क्या देख कर वृक्ष के भीतर हो रहा। अब वे दोनों मुझे खींच कर खड्ड की ओर ले जाने लगे पर हाथ पैर बँधे होते भी यह उनके लिए सुगम न था। इसी समय एक ने कहा कि 'पहिले छूरा भोंक दो तब सहज में ले जाकर फेंक सकेंगे। अब यह बात छिप नहीं सकती, देर हो रही है, एक ने देख ही लिया।' यह बात समाप्त भी न हो पाई थी कि देखता हूँ कि एकाएक पितृव्य देव सामने खड़े हैं और रोष तथा क्षोभ से मेरी ओर देख रहे हैं। इसी समय मेरे हाथों से रस्सी हट गई और किसी ने मेरे पैरों के बंधन खोल दिए। मैं हाथ पैर फटकार कर लज्जा से सिर नीचा किए ही उनके सामने खड़ा रह गया। वह खेदपूर्ण स्वर में कहने लगे—इस प्रकार प्राणों से खिलवाड़ करना चाहिए। इतना समझा दिया था कि दुष्ट नीचाशय शत्रु सतर्क हो कर तुम्हारा प्राण लेने को तैयार है, इसलिए किसी अज्ञात मनुष्य पर विश्वास न करना, सेना से दूर न जाना पर कुछ भी ध्यान न रखा। तुम तो लड़कपन में निकल जाओगे। यदि कुछ हो जाता तो मैं तुम्हारी माता को या किसी को संसार में क्या मुख दिखा पाता। इन तीन अज्ञात किराए के भेड़ियों के साथ इतनी दूर निर्जन स्थान में आते हुए तुमने जरा भी विचार नहीं किया।

इतना सुनते ही एकबयक हमारे मुख से निकल पड़ा कि 'आप तो थे ही मुझे कैसी चिंता।' यह सुन कर वह एकाएक हँस पड़े प्रत्युत् कई आदमियों को हँसते सुन कर मैं चौंक पड़ा और पीछे देखा तो पाँच सैनिक तथा एक भील खड़े हँस रहे हैं और दोनों आततायी हाथ पैर बँधे हुए पड़े हैं। मैं लज्जा से गड़ गया। पितृव्य देव ने मुझे गले लगा कर कहा—वही लड़कपन, क्यों, खैर लड़के हई हो पर युवक को भी, जब वह खड्ग हाथ में

लेकर शत्रु से लड़ने निकले, तब बहुत सावधान रहना चाहिए। भला, हम रह कर ही तुम्हारी कैसे रक्षा कर सकते थे, हमें क्या मालूम था, क्या कह आए थे कि तुम किसके साथ कहाँ जा रहे हो। अस्तु, गतं न शोचामि, आओ अब चलें।

'तब आपको कैसे पता लगा' मैंने पूछा।

'जिन्हें तुम्हारे रक्षा की चिंता है और तुम्हारे अल्हड़पन को जानते हैं वे ही इसका पता लगाते रहते हैं। यह वृद्ध बीर जयगोविंदसिंह तुम्हारे पिता के सेवक तथा सखा थे। इन्हें कुल बातें बतला कर तुम्हारी रक्षा को नियत कर रखा था। इन्हीं से पता पाकर हम दौड़े हुए इधर आए।'

'यह भील कौन है?'

'इसे भी स्यात् अनंत या सोमी ने तुम्हारी रक्षा के लिए नियत किया था और तुम्हारी रक्षा यह कर भी लेता पर एक को मार कर दूसरों को मारने से इसीलिए रुक गया क्योंकि हम लोग पहुँच गए थे। क्योंजी रम्मन, ठीक न है?'

'जी सरकार, स्वामिनीजी की यही आज्ञा थी।'

मैंने पूछा—'स्वामिनी कौन, सोमी?'

'जी हाँ।'

'तुम क्या बराबर हमारे साथ रहते थे।'

'जिस दिन से आप गढ़ी से बिदा हुए उस दिन से अब तक तो बराबर अपनी दृष्टि में आपको रखता चला आया हूँ पर इस प्रकार कि आपको मालूम न हो पर आज की इस घटना से छिप न सका।'

इसके बाद उन दोनों जीवित आततायियों ने पिता की हत्या किस प्रकार की गई थी यह बतला दिया और किसने उन्हें हमारी हत्या करने भेजा था, यह भी सविस्तर कह डाला। इसके अनंतर

हम लोग पड़ाव पर लौट आए। वे दोनों कालिंजर दुर्ग के कारा-गार में बंद हैं।

'यह समाचार किसी को नहीं मिला, ऐसा क्यों ?'

'यह एकदम छिपा दिया गया। सिवा मुख्य-मुख्य आदमियों के किसी से नहीं कहा गया, क्योंकि उससे लाभ भी न था तथा सब पर अभी हमारा जीवन रहस्य खोलना भी नहीं था। (मुस्कि-राते हुए) पर सोमी, तुमने हम पर ऐसा विलक्षण चर क्यों छोड़ रखा था ?'

'इसी कारण कि वे यहीं रह गए और मैं साथ जा न सकती थी।'

'यह महाधूर्त पुरुष कौन था ?'

'यह मेरे मायके का है और स्वामिभक्त कुशल चर है।'

'बेचारी ने आपके लिए इतना प्रबंध किया और जिससे आपको लाभ भी पहुँचा उसके लिए कुछ न कह कर प्रश्न पर प्रश्न पूछने लगे।' इरा ने कहा।

'(हँसकर) कोरे मौखिक धन्यवाद से तुम काम निपटाना चाहती हो वैसा ही हमें भी सम्मति देती हो क्यों ? सुना नहीं था, जब अनंत की प्रशंसा का पुल बाँध रही थीं तब, सामंतजी ने उसे अपना पुत्र बना लिया है। अब तो हम लोगों का इन लोगों पर पूरा स्वत्व है, धन्यवाद कहाँ से बीच में कूद पड़ेगा।'

'चलो छुट्टी हुई, सुना न सोमी। हम तो मौखिक धन्यवाद ही सही कुछ दे रही थीं, यहाँ वह भी नदारद।'

'नहीं कुमारीजी, यह आप क्या कह रही हैं, (गद्गद् स्वर से) हम लोगों को सब कुछ यही देखकर मिल गया कि आप दोनों कुशलपूर्वक बैठे बातें कर रहे हैं। धन्यवाद सन्यवाद लेकर कहाँ गाँठ बाँधूगी ?'

'बस ठीक हुआ, वह कुछ न देकर तुम से और लेने ही की साध रखते हैं और तुम बिना कुछ पाए ही पुलकित हो रही हो। अच्छा है, देती चलो, उनका स्वत्व बढ़ता ही जायगा पर मैं यह सब नहीं मानती। जो प्राणों पर खेलकर दूसरों की, माना कि स्नेह के कारण, रक्षा करता फिरे उसका क्या कोई मूल्य नहीं ?'

'यह किसने कहा कि कोई मूल्य नहीं। वह तो अमूल्य हो गया, मोल तोल कैसा ? क्यों इरा, तुम पर हमारा प्रेम है और हमारा तुम पर, यह तो ठीक है न, फिर इसका मूल्य कैसे आँकोगी ? इसी प्रकार सोमा तथा अनंत का हम लोगों के प्रति जो प्रेम है, उसे मैं तो आँक नहीं सकता और न कभी जीवन भर चुका सकूँगा। हाँ तुम समर्थ हो, आँककर मूल्य चुका दो, जरा मैं भी देखूँ।'

'(सोमी के गले में दोनों हाथ डालकर) इस प्रकार इसके गले का हार बनकर नित्य चुकाती रहूँगी, चुके या न चुके। आप क्या देखते हैं, आप भी तो इसी प्रकार अनंत से गले मिल रहे थे।'

'क्यों न कहोगी ? विवाह हो जाने तो दो, तब तो सबको भूलकर चल दोगी।'

'चल, लगी हँसी लेने। तुझे तो साथ ले ही चलूँगी, नहीं तो वहाँ अकेले किसके साथ खेलूँगी।'

'भया, अकेली काहे को रहोगी ?'

'अरे, तो सीधे से क्यों नहीं कहती अनंत को भी लिवाती चलूँगी।'

'चलो !'

इस प्रकार कुछ देर तक और इधर उधर की बातें कर वे दोनों अंतःपुर में चली गईं और गोपाल भी बाहर चले आए।

उपसंहार

सबलसिंह जाजल्लदेव को कैद कर लिवा लाए और महाराज कीर्तिवर्मा के प्रधान न्यायालय में, जहाँ सर्दारों के विरुद्ध वाद सुने जा सकते थे, इनका विचार हुआ और इन पर सोमल्लदेव की हत्या तथा गोपाल की हत्या कराने की चेष्टा करने के दोष पूर्णरूपेण सिद्ध हो गए। इन्हें यावज्जीवन कारादंड मिला। गोपाल का सारा जीवनरहस्य सब पर प्रगट हो गया, सबलसिंह का परिचय सबको मिल गया और गोपाल की माता के जीवित रहने की भी सबको खबर हो गई। सबलसिंह तथा गोपाल ने आज्ञानुसार राजसेना की सहायता से पहुँचकर रामगढ़ी पर अधिकार कर लिया और इन लोगों के सुप्रबंध में कुछ ही समय में वहाँ की प्रजा में सुख शांति फैल गई। गोपाल की माता के आ जाने से वहाँ के अंतःपुर का भी प्रबंध ठीक हो गया और इन दोनों ने शीघ्र ही एक सहस्र निजी सेना तैयार कर ली तथा राज सेना को लौटा दिया। जाजल्लदेव के परिवारवालों के लिए कुछ भूमि देकर उन्हें भी वहीं भेज दिया।

इसके अनंतर गोपाल तथा इरावती का विवाह बड़े समारोह के साथ हुआ। राज्य के उद्धारकर्ता होने के कारण गोपाल के इस मंगल कार्य में सारे कालिंजर राज्य ने आनंदोत्सव मनाया। महाराज कीर्तिवर्मा कन्यापक्ष ही के थे पर गोपाल के अपना सेनापति होने के संबंध से उन्होंने उसकी बारात आदि सभी शुभ कार्यों में योग दिया। महारानी भुवनदेवी कन्यापक्ष के अंतःपुर

की स्वामिनी थीं, इसलिए इस ओर की शोभा तथा वैभव बहुत बढ़े चढ़े थे। सामंतजी ने दहेज अपनी शक्ति से बढ़ कर दिया और महारानी ने कई लक्ष के निजी बहुमूल्य आभूषण अपनी भ्रातुष्पुत्री को दिया। अनंत और सोमी भी बिदा के समय कुछ दिन के लिए साथ गए। इसी अवसर पर श्रीकृष्ण मिश्र द्वारा रचित प्रबोधचंद्रोदय नाटक खेला गया था।